दो शब्द ।

प्यारी भारतभूमि जो किसी समय संसार की मुकुट मणि थी, जो स्वर्गभूमि और रत्नगर्भा भूमि के नाम से प्रसिद्ध थी, जिसमें रामराज्य स्थापित था, आज उसी स्वर्गभूमि के निवासी अपनी शक्तियों के अज्ञानता से, आपस की फूट और व्यापार के नष्ट होजाने से पराधीन हैं। यह स्थिति क्यों हुई और अब इस स्थिति को बदलने के लिये क्या क्या उपाय हैं, इन्हीं सब बातों का ज्ञान कराना इस पुस्तक का मुख्य उद्देश है। आशा है कि इस पुस्तक के पाठकों को अपनी वर्तमान अवस्था का सच्चा ज्ञान होगा। हमारी हार्दिक इच्छा है कि इस ग्रन्थ का घरघर प्रचार हो और स्कूल और कालेजों के विद्यार्थियों को यह पढ़ाई जाय।

मैं श्रीमान् लाला लाजपतराय जी का अत्यन्त कृतज्ञ हूं कि आपने अपने महत्वपूर्ण समय में से कुछ अंश बचाकर इस पुस्तक की भूमिका लिख देने की कृपा की।

अन्त में मैं बाबू रामचन्द्रजी वर्म्मा जिन्हों ने कष्ट उठाकर इस पुस्तक के पांचवें फ़र्मे से पन्द्रहवें फ़र्मे तक का संशोधन किया और बाबू सम्पूर्णानन्दजी जिन्हों ने आदि के चार फ़र्मों का संशोधन किया बड़ा आभार मानता हूं।

निवेदक

जीतमल लूणिया

निवेदन।

हिन्दी भाषा में ऐसी पुस्तकों की बड़ी कमी है जिनमें भारत की अधोगति का सच्चा ऐतिहासिक वर्णन हो। इसी अभाव की कुछ पूर्ति के स्वरूपमें मैं पाठकों की सेवा में "भारत-दर्शन" नाम की यह पुस्तक भेट करता हूँ। यदि इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों के हृदय में अपने देश की स्वाधीनता के लिये लालसा उत्पन्न होगी और वे अत्यन्त शान्ति के साथ अहिंसात्मक उपायों से स्वराज्य प्राप्त करने के लिये तैय्यार होंगे तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

नीचे लिखे ग्रन्थों से मुझे इस पुस्तक के लिखने में बड़ी सहायता मिली है, इसलिये इन ग्रन्थों के लेखक महानुभावों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

(1) Prosperous British India by mr. Digby.
(2) England's debt to India by Lala Lajpatrai
(3) Young India by L. Lajpatrai.
(4) New India by Sir Henry Cotton.
(5) History of Aryan Rule by mr. Havell.
(6) Indian National Evolution by Majumdar.
(7) Congress Committees Report on Punjab Disturbances.

इसके अतिरिक्त और भी कई सामयिक पत्रों से सहायता मिली है अतएव उन पत्र सम्पादकों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

—लेखक

भूमिका

मैंने इस पुस्तक को सारा नहीं पढ़ा, सिर्फ़ वर्क़ उलट कर देखा है और उससे मैंने यह सम्मति क़ायम की है कि यह पुस्तक हमारे देश के उन भाइयों के वास्ते जो अंगरेज़ी नहीं जानते और अंगरेज़ी नहीं पढ़ते अत्यन्त लाभदायक होगी। ग्रन्थकर्ता ने निहायत मेहनत से इस किताब का मसाला इकट्ठा किया है और अच्छी अच्छी प्रामाणिक पुस्तकों से अपने पक्ष को पुष्टि दी है। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश यह है कि लोगों के ऐतिहासिक ज्ञान में वृद्धि हो और उनको यह मालूम होजाय कि किन किन कारणों से इस देश की आर्थिक और राजसिक अवस्था उस दशा को प्राप्त हुई जिस में इस समय हमको वह प्रतीत होती है। इस दशा से भारतवर्ष को निकालने के लिये इस ऐतिहासिक ज्ञान की बहुत आवश्यकता है। हर एक हिन्दुस्तानी को यह ज्ञान होना चाहिये। हमें यह शोक से कहना पड़ता है कि बहुत थोड़े भारतवासी ऐसे हैं जिनको अपने देश के इतिहास का ज्ञान हो। इस अज्ञान के कारण उनके अन्दर बहुत सा अज्ञान अपनी जाति और अपनी जाति की शक्तियों के विषय में फैला हुआ है। ऐतिहासिक ज्ञान से इस में परिवर्तन हो सकता है। हमारे लिये यह आवश्यक है कि हमको अपने जातीय गुण और अवगुण दोनों का ज्ञान हो।

यह तभी हो सकता है जब कि देश का इतिहास सही सही बालकों को पढ़ाया जाय और लोगों में उसका प्रचार किया जाय। इस समय जो इतिहास स्कूलों और कालेजों में पढ़ाया जाता है उसमें बहुत कुछ अनर्थ और असत्य मिला हुआ है। विदेशी जातियाँ अपनी हुकूमत को मज़बूत करने के लिये देशवासियों को उनके इतिहास का यथार्थ ज्ञान नहीं कराना चाहतीं। हमें यह चाहिये कि इस त्रुटि को दूर करें। जातीय शिक्षा का यह मुख्य उद्देश होना चाहिये। इस पुस्तक से बहुत करके यह उद्देश एक भाव में पूरा हो जायगा यानि इससे मनुष्यों को यह प्रतीत हो जायगा कि इस देशकी वर्तमान आर्थिक अवस्था के क्या कारण हुये, किस तरह से विदेशियों ने हमारे उद्योग धन्धों (Industries) को नष्ट किया और क्यों हम इस समय तक दुरुस्त नहीं कर सके। मैं अपनी कई पुस्तकों में इस इतिहास को वर्णन कर चुका हूं। इस पुस्तक में ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत से मेरे विचारों को और लेखों को वर्णन किया गया है। इसलिये मैं बड़े उत्साह से इस किताब की सिफ़ारिश कर सकता हूं। हमारे देश की भाषाओं में ऐसी पुस्तकों के प्रचारको अति आवश्यकता है। इस पुस्तक में ग्रन्थकर्ता ने अपने विचारों की पुष्टि में प्रसिद्ध लेखकों और इतिहास कर्ताओं के बहुत प्रमाण दिये हैं और कहीं कहीं अपने मत के विरोधियों के विचार भी दिये मालूम होते हैं जिससे पाठकों को दोनों पक्षों का ज्ञान हो जायगा और वह भली भाँति अपना स्वतंत्र निश्चय क़ायम कर सकेंगे।

मैं अपने देशवासियों को यह बात बताना चाहता हूँ कि जब तक वो अपने देश में आर्थिक और शिक्षा सम्बन्धी स्वतंत्रता प्राप्त न करलेंगे तो उनको यदि राजनैतिक स्वतंत्रता मिल भी गई तो निश्चय रूप से बहुत दिन तक नहीं रह सकेगी।

यह मेरा मत नहीं है कि पहले हम अपनी शिक्षा प्रणाली को उत्तम रीति से शुद्ध करलें और आर्थिक अवस्था को भी शुद्ध करलें या उसके पश्चात् राजनैतिक (Political) स्वतंत्रता के लिये यत्न करें; बल्कि मेरा यह मत है कि यह तीनों चीज़ें एक दूसरे के साथ बंधी हुई हैं। हमको आर्थिक स्वतंत्रता और शुद्ध राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार में कभी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि हमको राजनैतिक (Political) स्वतंत्रता न मिल जाय। राजनैतिक (Political) स्वतंत्रता के मिलतेही हमको पहला काम यह करना होगा कि हम अपनी आर्थिक अवस्था को और शिक्षा प्रणाली को शुद्ध करें। इस वास्ते हमें अभी से इस उद्योग में लग जाना चाहिये। अगर हम विदेशी कपड़ों का पूर्ण रीति से बायकाट (बहिष्कार) कर सकें तो यह बायकाट (बहिष्कार) हमारी राजनैतिक (Political) स्वतंत्रता के रास्ते में बहुत कुछ सुगमता पैदा कर देगी। और मैं समझता हूं कि यह पुस्तक इस समय हमारे लिये बहुत कुछ सहायता देगी। अच्छा होता इस किताब में पिछले बीस साल के निर्गत (Exp rt) और आयात (Import) के हिंदसे दर्ज हो जाते ताकि यह प्रतीत होता कि इस विदेशी व्यापार में हम को कितनी हानि हो रही है, हर साल हम कितना द्रव्य खोते हैं। तो भी कपड़े के आयात (Import) के हिन्दसे और अनाज आदि के निर्गत (Export) के हिन्दसे जो इस किताब में दिये हैं, उनसे पाठक यह मालूम कर सकेंगे कि वो किस तरह से इस मूल्य पर कितनी देश को हानि पहुंचाकर विदेशी कपड़ों का प्रचार कर रहे हैं। मनुष्य जीवन का पहला आधार अन्न है। हम अन्न बाहर भेजकर उसकी जगह कपड़ा और दूसरे ऐसे पदार्थ हासिल करते हैं जो केवल शोभा और ऐश के देनेवाले हैं। हमारे देश में खुराक कम होती जाती है।

न सिर्फ लोगो को काफी ख़ुराक ही नहीं मिलती बल्कि पुष्टि कारक ख़ुराक का भी अभाव होता जाता है। ख़ुराक लोग अच्छी खावें या न खावें परन्तु अच्छा कपड़ा पहनने का शौक बढ़ता जाता है। यह बात बड़े मूर्खता की है। पर इसका एक उपाय यह है कि अच्छे अच्छे भद्र पुरुष देश का बना हुआ गाढा कपड़ा पहनने लगें ताकि बारीक कपड़ों का जो प्रचार हो रहा है, उसमें कमी हो। यह एक बात मैंने बतौर दृष्टान्त के कह दी है। वरना मेरी राय में और भी कई प्रकार का लाभ इस पुस्तक के पाठकों को देश सेवा के काम में और देश मुक्ति के विचार में होगा।

लाहौर
२६ अगस्त १९२१

लाजपतराय
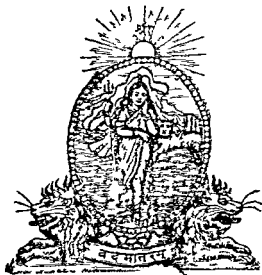
पहिले इसे अन्त तक ज़रूर पढ़ लीजिये।

राष्ट्रीय साहित्य ही देश में नया जीवन पैदा करता है। खेद है हिन्दी में इस समय इसकी बड़ी कमी है। इसी कमी की पूर्ति के लिये हमने **हिन्दी नवयुग ग्रन्थमाला** नामकी यह माला निकालना शुरू किया है। अब देशवासियों से यह प्रार्थना है कि वे इस कार्य्य में हमारा उत्साह बढ़ावें और 'एक एक बूंद से घड़ा भर जाता है' उसी प्रकार कम से कम इस माला के स्थाई ग्राहक होकर और अपने मित्रों को बनाकर हमारी सहायता करें। स्थाई ग्राहक होने के लिये केवल एक बार आपको आठ आने देनेपड़ेंगे।

स्थाई ग्राहक होने से अपूर्व लाभ।

(१) ग्रन्थमाला से प्रकाशित सब ग्रंथ पौनी कीमत में मिलेंगे। (२) प्रकाशित या प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों में से आप **जो चाहें लें, न पसन्द हो, न लें कोई बन्धन नहीं।** (३) हमारे यहां दूसरे स्थानों की हिन्दी की प्रायः सभी उत्तम पुस्तकें मिलती हैं। इन में से आप जो पुस्तकें हमारे यहां से मगावेंगे, प्राय उन सब पर एक आना रुपया कमीशन दिया जावेगा। (४) हमारे यहा जो पुस्तकें नई आवेंगी, उनकी सूचना बिना पोस्टेज लिये ही घर बैठे आपको देते रहेंगे।

क्या अब भी आप स्थाई ग्राहक न होंगे।

अब हमें पूर्ण आशा है कि आप शीघ्र ही स्थाई ग्राहक हो जावेंगे—माला में यह पुस्तकें निकली हैं। (१) दिव्य जीवन ॥) (२) शिवाजी की योग्यता ॥) (३) सरजगदीशचन्द्र बोस ।≈) (४) प्रे० विल्सन और समाज की स्वाधीनता ।≈) (५) चित्रांगदा (ले० कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ) ।≈) (६) नागपूर की कांग्रेस ॥)

(७) तिलक-दर्शन-(लो० तिलक के भिन्न भिन्न अवस्था के ११ सुन्दर चित्रों से सुसज्जित) बढ़िया कागज पर छपी हुई मूल्य २॥) इसमें लो० तिलक का स्फूर्तिकर चरित्र दिव्य राष्ट्रीय उपदेशों का अनूठा संग्रह, चुने हुए महत्त्वपूर्ण व्याख्यानों और लेखोंका अपूर्व संग्रह है। इसकी भूमिका श्रीमान् **पंडित मदन मोहन मालवीय जीने** दो पृष्ठों में लिखा है। भूमिका में वे लिखते हैं "मैंने इस चरित्र को आदि से अन्त तक पढ़ा है। इसके उत्साही और योग्य लेखक ने हमारे चिरस्मरणीय मित्र (लो० तिलक) के पवित्र और उपदेशमय जीवन का संक्षेप में ऐसा अच्छा चित्र खींचा है कि मुझको इसमें भूमिका की गोट लगाना अनावश्यक प्रतीत होता है। मुझे निश्चय है कि सहस्रों नर और नारी इस चरित्र को और लोकमान्य के चुने हुए इन लेखों और व्याख्यानों को उचित आदर के साथ पढ़ेंगे और उनसे लाभ उठावेंगे।"

(८) असहयोग-दर्शन—अर्थात् जीवन में नई जागृति पैदा करने वाले म० गांधी के मुक्ति मन्त्रों का उनके चुने हुए और असहयोग के मर्म बताने वाले लेखों और व्याख्यानों का अपूर्व संग्रह। इसकी भूमिका श्रीमान् **प० मोतीलालजी नहरू** ने लिखी है इसीसे आप समझ सकते हैं कि यह कितना अपूर्व ग्रन्थ है। कुछ मास में ही दो हजार कापियां समाप्त होगईं। अब यह दूसरी बार बढ़िया कागज पर छपा है। जल्दी मंगाइये नहीं तो तीसरी बार छपने तक ठहरना पड़ेगा। मू० १।)

(६) **बोल्शेविज़म**—इसकी भूमिका **हिन्दी संसार में प्रसिद्ध बाबू भगवानदास जी गुप्त ने लिखी है। भूमिका में वे लिखते हैं** इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ा और देखकर प्रसन्न हुआ। इसमें बाल्शेविज्म के आचार्य लेनिन के निर्भीक सिद्धान्तों का वर्णन वर्तमान समय में वहां की राज्य व्यवस्था समाज व्यवस्था का उत्तम वर्णन है। शुरू में वहां की राज्यक्रान्तिका इतिहास एकही सप्ताह में प्रजा के हाथ में राज्य का आना राज्य की फौजें और पुलिस का प्रजामें मिलना आदि अनेक जानने योग्य बातों का वर्णन है। **अन्त में बोल्शेविज्म भारत में आवेगा या नहीं** इस पर खूब विवेचन किया गया है जो पढ़ने योग्य है। अवश्य पढ़िये मू० १।०)

(१०) **हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय झण्डा**—(रचयिता म० गान्धी) इसमें भारत का राष्ट्रीय झण्डा कैसा होना चाहिये उसका खूब विस्तार से चित्र सहित वर्णन किया गया है। ऐसा झण्डा बनवाकर प्रत्येक भारतवासी को अपने घर पर लगाना चाहिये। इसके अलावा असहयोग सम्बन्धी म० गांधी जी के चुने हुए लेख और व्याख्यान आदि दिये गये हैं। यदि आप असहयोग के पूरे रहस्य जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को और असहयोग दर्शन को दोनों को मंगा लीजिये। मू० १)

(११) **नवयुवको! स्वाधीन बनो**—इसमें अंग्रेजों के अत्याचार को न सहने वाले और ७८ दिन तक जेल में उपवास कर मातृभूमि की स्वाधीनता के लिये प्राण त्यागने वाले आयरिश वीर टेरेन्स मेक्सविनी का संक्षिप्त जीवन तथा ला० तिलक म० गांधी ला० लाजपतराय मौ० शौकतअली आदि देश नेताओं के स्वाधीनता के भावों से भरे हुए और स्वराज्य का सीधा मार्ग बताने वाले उपदेश भी दिये गये हैं सचित्र मू० ।) यह पुस्तक प्रत्येक नवयुवक के हाथ में होना चाहिये।

(१२) **स्वतन्त्रता की झनकार**—यदि आप राष्ट्रीय कवियों की चुनी हुई स्वतन्त्रता से भरी हुई कविताओं को पढ़ना चाहते हैं तो इस तरन्त मंगाइये। सचित्र मू०।)

विषय-सूची ।

भारत-दर्शन

प्राचीन काल में भारत।

प्राचीन काल में इस आर्य्य-भूमि के गौरव की विजय-ध्वजा सारे संसार में फहरा रही थी। जिस प्रकार दर्शन शास्त्रों के गूढातिगूढ सिद्धान्तों के आविष्कार में आध्यात्मिक और आत्मिक रहस्यों के प्रकाशित करने में इसने संसार में सर्वोपरि आसन प्राप्त कर रक्खा था, उसी प्रकार विविध कलाओं की उन्नति में और व्यापार-विस्तार में भी इसका बड़ा नाम था। सारे संसार के बाजारों पर भारतीय माल का प्रभुत्व था और यहां का बना हुआ माल संसार में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। जिस प्रकार, आज कल, पाश्चात्य देश अपना पक्का माल भारत भेजकर मालामाल हो रहे हैं, उसी प्रकार पहले, भारत अपना पक्का माल विदेशों को भेज कर अटूट सम्पत्ति प्राप्त करता था। सुप्रसिद्ध डॉक्टर बूलर (*Buhler*) ने ऋग्वेद के कई मन्त्र उद्धृत कर के यह दिखलाने की चेष्टा की है कि वैदिक समय में भी आर्य्य लोग किस प्रकार अन्य राष्ट्रों के साथ अपना व्यापारिक सम्बन्ध कर के अगणित द्रव्य प्राप्त करते थे। नाव और जहाज़ बनाने का हुनर भी उस समय मोजूद था। ऋगमन्त्र १।११६।५ में अगाध समुद्र को चीरते हुये सो पतवारों से सज्जित जहाज

का वर्णन है। कई विदेशियों के ग्रन्थों में भारतवासिय
विस्तृत व्यापार के, उनके अतुलनीय वैभव के, उनके, व
उद्योग-धन्धों के उल्लेख मिलते हैं। इन ग्रन्थों से यह भी
चलता है कि पूरे तीन हज़ार वर्ष तक भारतवर्ष व्याप
संसार का शिरोमणि रहा था और फिनासियन्स,
असेरियन, यूनानी, मिसरानी और रोमन लोगों के
इसका व्यापारिक सम्बन्ध था। भारतवर्ष से कई प्रका
पका माल इन देशों को जाता था। बढ़िया बढ़िया रे
कपड़े, रुई की अत्यन्त वारीक और मुलायम मलमलें,
के वस्त्र, भिन्न भिन्न प्रकार के उत्कृष्ट सुगन्धित तेल, शकर
बनी हुई विविध प्रकार की चीजें, तरह तरह की औषधि
भाँति भाँति के रङ्ग, पिपरमेन्ट दालचीनी, सलमे सितारे
कसीदे के कपड़े, आदि कई प्रकार के पदार्थ यहाँ से र
आदि देशों को जाते थे। इन चीजों की वहाँ बड़ी क़दर ह
थी। लोग बड़े चाव से इन्हें ख़रीदते थे। हाँ, विदेशों
भी कुछ चीजें यहाँ अवश्य आती थीं। पर व्यापार
पलड़ा (*Balance*) सदा हमारे पक्ष में रहता था। आज
वह हमारे ही पक्ष में रहता है, पर उसमें और इसमें ज़म
आसमान का अन्तर है। आज विदेश हमसे वह अन्ना
सामग्री लेते हैं, जो मनुष्य जीवन के लिए परम आवश्यक
और इसके बदले में हमें विलास की अनावश्यक सामग्री दे
हैं, जिसके अभाव में भी हमारा जीवन सुखपूर्वक चल सकत
है। और इसमें भी जो रुपया बाकी (*balance*) का बचत
है वह भी होम चार्जेस आदि कई रूपों में विदेश चला जात
है, अर्थात् आजकल जिस तरह भारत का धन विदेशों
खींचा जा रहा है वैसा पहले नहीं खींचा [illegible]

प्रायः पक्का माल विदेशों को भेजते थे और विदेशों से भी पक्का ही माल पाते थे एवं इसमें हमारे व्यापार का पलड़ा बहुत भारी रहता था। हिन्दुस्तान बढ़िया बढ़िया पक्का माल तैयार कर विदेशों को भेजता था और उसके बदले में सोना, चाँदी आदि बहुमूल्य धातुयें तथा माणिक्य, रत्न इत्यादि जवाहिरात पाता था। इस प्रकार एक समय हिन्दुस्तान रत्नों की खान सा हो गया था। यहां की सम्पत्ति अतुलनीय हो गई थी। यहाँ के समान रत्नादिक कहीं न थे।

अनेक प्रमाणों का अन्वेषण कर के सुप्रसिद्ध डाक्टर साईस ने यह सिद्ध करने का सफल प्रयत्न किया है कि ईसवी सन् के तीन हज़ार वर्ष पहले हिन्दुस्तान और असीरिया के बीच अव्याहत रूप से व्यापारिक सम्बन्ध था। हिन्दुस्तान से बना हुआ पक्का और कच्चा माल उक्त देश को जाता था और इसके बदले में हिन्दुस्तान मूल्यवान् धातु के रूप में मूल्य प्राप्त करता था। साथही में डाक्टर साहब इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि कुछ माल असीरिया से भी हिन्दुस्तान को आता था। पर इस माल की तायदाद हिन्दुस्तान से जानेवाले माल की अपेक्षा बहुत ही कम थी। जेन्सन साहब ने बम्बई के गेजेटियर में सिद्ध किया है कि भड़ौच, सुपाराबन्दर और बेबीलोनियाके बीच, ईसवी सन् केसात सौ आठ सो वर्ष पहले भी, व्यापार होता था और हिन्दुस्तान इन देशों से खूब द्रव्य प्राप्त करता था। मिस्रऔर हिन्दुस्तान के बीच इससे पहले भी व्यापार प्रचलित था यह बात हिरडोट्स आदि युनानी ग्रन्थकारों के ग्रन्थों से पाई जाती है। अमेरिका के मेलविश्व-विद्यालय के प्रोफेसर मि० डे ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ *History of commerce* में अनेक प्रमाण देकर यह दिख

लाया है कि ईसा से ३५०० वर्ष पहिले हिन्दुस्तान और चीन के बीच ज़ोर-शोर से व्यापार जारी था। सुप्रसिद्ध जर्मन, पण्डित (*Von Bohlen*) ने बड़ी खोज और अध्ययन के बाद यह नतीजा निकाला कि मनुष्य जाति के बाल्यकाल ही से हिन्दुस्तान और अरब के बीच व्यापार-सम्बन्ध शुरू था। प्रोफ़ेसर व्हीवाल ने अपने "*A Geologists contribution to the History of ancient India*' नामक पुस्तक में यह सिद्ध किया है कि ईसा से १५०० वर्ष पहिले वैभव और सम्पत्ति हिन्दुस्तान सारे संसार का शिरोमणि था। यहाँ मूल्यवान रत्नों का अगाध भाण्डार था और दूर २ के देशों से इसका अव्याहत सम्बन्ध था। प्रोफ़ेसर विल्किसन ने अपने *Ancient Egyptians*' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि मिस्र के दो हज़ार वर्ष के पुराने मकबरों में हिंदुस्तानी नील और अन्य कुछ हिन्दुस्तानी चीजें मिलती हैं। इससे भारतवर्ष और मिस्र का अत्यन्त प्राचीन व्यापारिक सम्बन्ध ज्ञात होता है प्रोफ़ेसर मेकक्रिंडल ने अपने '*Ancient India as described in classical literature*" नामक ग्रन्थ में सुप्रसिद्ध भारतप्रवासी यूनानी पण्डित हिराडोट्स का वर्णन लिखा है। उसमें आपने हिराडोट्स के कई लेख उद्धृत किये हैं, जिनमें (एक जगह) हिराडोट्स का लिखा हुआ यह वाक्य भी उद्धृत है—' हिन्दुस्तान सोने से भरा पूरा और मालामाल है "। प्रोफ़ेसर वाल ने भी हिन्दुस्तान की अटूट सम्पत्ति के अस्तित्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। सम्राट अशोक के समय में भी विदेशों के साथ हिन्दुस्तान की अच्छी व्यापारिक गति विधि होने के उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में पाये जाते हैं। अशोक के बाद आन्ध्र और कुशाण (*Kushan*) काल में हिन्दुस्तान का वैदेशिक व्यापार बहुत

चढ़ा बढ़ा था। यह बात उस काल के विदेशी लेखकों के लेखों से स्पष्ट प्रगट होती है। इसके अतिरिक्त इसके सम्बन्ध में कई मुद्रा सम्बन्धी प्रमाण भी मिलते हैं। आन्ध्र काल का समय ईसा से २०० वर्ष पूर्व से लेकर ईसवी सन् २५० वर्ष तक है। दक्षिण हिन्दुस्तान के प्रमाणभूत इतिहासज्ञ मि० आर सेवेल (*R. Sewele*) लिखते हैं "आन्ध्र-युग, भारतवर्ष के लिए अत्यन्त समृद्धिशाली युग था। इस समय स्थल और समुद्र का व्यापार बेहद बढ़ हुआ था और पश्चिमी एशिया, यूनान, रोम, मिस्र, चीन और अन्य पूर्वी देशों के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध था।" प्लीनी नामक इतिहास लेखक लिखता है कि रोम से भी हिन्दुस्तान में कई प्रकार के धात्विक द्रव्य आते थे। आन्ध्रयुग के लिए डाक्टर भाण्डारकरने लिखा है:-

"*Trade and commerce must have been in a flourishing condition during this early period*" अर्थात् इस युग में (आन्ध्रयुग में) भारत का व्यवसाय और व्यापार अवश्य उन्नतावस्था में होना चाहिए। एक पाश्चात्य इतिहासज्ञ के मतानुसार इस काल में (आन्ध्रकाल में) रोम से हिंदुस्तान को ढेरों सोना आता था और इसके बदले यहाँ से रेशम के बढ़िया २ वस्त्र, जवाहिरात और कई प्रकार की धातु की बनी हुई चीजें जाती थीं।

रोम सम्राट आगस्टस से लगा कर सम्राट् निरो तक भारतवर्ष और पाश्चात्य देशों का व्यापार बड़ी ही उन्नत अवस्था में रहा। हिन्दुस्तान की बनी हुई विलास सामग्री के प्रति धनिक रोम लोगों की रुचि बढने लगी। यह रुचि इतनी बढ़ी कि इससे उस समय कई विचारवान् लोगों को यह डर होने लगा कि कहीं इससे रोम दिवालिया न हो जाय।

प्लीनी नामक ग्रन्थकार जो ईसवी सन ७७ में हुआ, इस बात पर बड़ा दुःख प्रगट करता है कि रोमन लोग फजूल-खर्च और विलास प्रिय होते जाते हैं। वे इत्र आदि सुगन्धित द्रव्यों तथा बढ़िया वस्त्र और जेवर आदि में इतना बेशुमार खर्च करते हैं कि कुछ पूछिए नहीं। कोई साल ऐसा नहीं जाता जिसमें हिन्दुस्तान रोम से करोड़ों रुपया न खींचता हो। मामसेन अपने "*Pro inces of the Roman Empire*" नामक ग्रन्थ में लिखता है कि हिन्दुस्तान से रोम को प्रति वर्ष ४०,००,०००) पौंएड मूल्य की विलास सामग्री आती थी। हिन्दुस्तान से रोम को प्रधानतः सुगन्धित द्रव्य, रेशमी वस्त्र बढ़िया मलमल आदि जाती थीं। इनके अतिरिक्त रोम में अदरक की माँग भी बहुत थी। प्लीनी लिखता है कि यह सोने और चाँदी की तरह तोलकर बेचा जाता था। मि० विन्सेन्ट स्मिथ दक्षिण भारत और रोम के बीच में होने वाले व्यापार के विषय में लिखते हैं —

"तामिल भूमि का यह सौभाग्य है कि वह तीन ऐसी मूल्यवान वस्तुयें उत्पन्न करती है जो अन्य स्थान में अप्राप्य हैं काली मिर्च मोती और पिरोजा (*beryls*)। कालीमिर्च यूरोप के बाजारों में बड़े दामों पर बिकती है। दक्षिण भारत में मोती निकालने का उद्योग हजारों वर्ष के पहले भी बड़ी सफलता के साथ चल रहा था। दक्षिण हिन्दुस्तान के पैंडिपुर ग्राम में पिरोजा की जो खान है, उसीमें प्राचीन संसार पिरोजा प्राप्त करता था। प्लीनी ने भारतवर्ष को जवाहिरात का केन्द्रस्थान कहा है। संसार का सबसे महान् और सबसे अधिक मूल्यवान हीरा 'कोहेनूर' जो संसारके अनेक देशों में घूमता हुआ कुछ वर्षों से लंदन पहुचा है, मूल में भारतवर्ष ही का था।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि० थार्नटन्स (*Thorntons*) ने अपने "*Description of Ancient India*" नामक ग्रन्थ में प्राचीन भारत के लिए इस आशय के वचन लिखे हैं:—

"यूरोपीय सभ्यता के मूलजनक यूनान और इटली जब निरी जंगली अवस्था में थे, उस समय भी भारतवर्ष वैभव और सम्पत्ति का केन्द्र-स्थान था। यहाँ चारों ओर बड़े बड़े उद्योग-धन्धे जारी थे। यहाँ की जनता दिन रात काम में लगी रहती थी। यहाँ की भूमि उर्वरा थी, जिससे यहाँ फ़सल खूब पैदा होती थी और किसानों को अपने परिश्रम का फल बहुत ही अच्छा मिलता था। वे धन धान्य-पूर्ण होते थे। यहां बड़े बड़े चतुर कारीगर थे, जो यहां के कच्चे माल से इतना नफ़ीस और उमदा पक्का माल तैयार करते थे जिसकी संसार भर में माँगहोती थी और कई पाश्चात्य और पौर्वात्य राष्ट्र इसे बड़े चाव से खरीदते थे। यहां सूत और वस्त्र इतने मुलायम और ख़ूबसूरत बनते थे कि जिनकी तुलना नहीं हो सकती।"

पाठक! देखिए, यह एक निष्पक्ष अंग्रेज़ इतिहास वेत्ता ने भारतीय वैभव का चित्र खींचा है। हम यदि स्वयं अपनी प्रशंसा करें तो पक्षपात का दोषारोप किया जा सकता है। पर एक विदेशी अंग्रेज़ इतिहास-लेखक का खींचा हुआ यह चित्र कभी पक्षपात युक्त नहीं कहा जा सकता। यही क्यों, प्राचीन काल में जोअनेक विदेशी यात्री भारतमें आये उन्होंने भारत की सुस्थिति का ज़िक्र अपने ग्रन्थों में जगह जगह किया है। मैगस्थनीज़ जो यहां, विक्रम से २५३ वर्ष पहले आया था लिखता है–" भारत में बहुत से ऊंचे पहाड़ हैं, जिनपर हर किस्म के मेवे और फल होते हैं और बहुत सी नदियों से प्लावित उपजाऊ मैदान हैं। वहां पर सब तरह के

क़द के बलवान् पशु भी पाये जाते हैं। हस्तकौशल तथा दस्त कारी आदि कामों में ये लोग दक्ष हैं गेहूं, चना, जौ आदि अन्नों के सिवा ज्वार, वाजरा, तथा बहुत प्रकार की दाल भी यहां अधिकता से होती है। पशुओं के खाने योग्य और भी बहुत प्रकार के अन्न उपजते हैं, चीनीयात्री फाहियान, जो सं० ४५७ में हिन्दुस्तान में आया था, लिखता है—"यहां की प्रजा समृद्धिशालिनी है। किसी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता और न अफ़सरों की डाली हुई किसी प्रकार की रुकावटें हैं। जो राज्य की भूमि जोतते हैं, वे लाभ का थोड़ा सा अंश कर स्वरूप देते हैं। राजा किसी को शारीरिक दण्ड नहीं देते"

इस बात को हमारे पाश्चात्य विद्वान् भी स्वीकार करते हैं कि सिकन्दर के हमले से लेकर मुहम्मदग़ोरी के हमले तक भारतवर्ष अटूट सम्पत्ति और अतुलनीय वैभव से परिपूर्ण था। अर्थात् ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व से ईसवी सन् १००० तक भारत के साम्पत्तिक सौभाग्य सूर्य की प्रकाशमय किरणें सारे संसार को प्रकाशित कर रही थीं। महमूद गज़नवी ने जब भारतवर्ष पर आक्रमण किया था तब उसने इस देश को सम्पत्ति से लबालब भरा हुआ देखा था। उस समय चारों ओर अखण्ड सम्पत्ति भरी हुई थी। रिफ़ार्म पेम्फ़लेट नंबर. ८ में लिखा है:—

" Writers both Hindu and musalman unite in bearing testimony to the state of prosperity in which India was found at the time of the first mohammedan conquest They dwell with admiration on the extent and magnificience of the

capital of Kanauj and of the inexhaustible riches of the temple of Somnath. " अर्थात् मुसलमानों के प्रथम आक्रमण के समय हिन्दुस्तान की जो समृद्ध अवस्था थी, उसे हिन्दू और मुसलमान् दोनों लेखक एक स्वर से स्वीकार करते हैं। वे कनौज की राजधानी के विस्तार और वैभव की तथा सोमनाथ के मन्दिर की अपार सम्पत्ति की बड़ी प्रशंसा करते हैं।"

Nicolo di conti नामक सुप्रसिद्ध यात्री जो ईसवी सन् १४८० में भारतवर्ष में आया था, अपने प्रवास—वर्णन में भारतवर्ष के विषय में लिखता है:-

" गङ्गा के किनारे बडे बडे सुन्दर शहर बसे हुए हैं, जिन के आस पास रमणीक बगीचे और फुलवारियाँ लगी हुई हैं। शहरों के बाहर नयन मनोहर लतामण्डपों की बहार है। यहाँ मानों स्वर्ण की नदियाँ बह रही हैं। मोती और माणिक्य भी अटूट भरे हुए हैं।"

Casar Frederic & Iben Batuta नामक दो सज्जनों ने मुहम्मद तुग़लक के राज्यकाल में हिन्दुस्तान में यात्रा की थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस समय हिन्दुस्तान में बड़ी अशान्ति व्याप्त हो रही थी। लूटमार का बाजार गर्म था। इतने पर भी उक्त सज्जन कहते हैं कि हिन्दुस्थान में बड़े बड़े शहर हैं, जिनकी घनी और विशाल बस्ती है और मानों यहाँ समृद्धि की बाढ़ें आ रही हैं।

बादशाह बाबर जो सोलहवीं सदी के आरम्भ में हिन्दुस्तान में आया था वह यहाँ की अतुलनीय सम्पत्ति, अपार सोना चाँदी और जवाहिरात, प्रचुर जन संख्या, महान् व्यापार और अपूर्व कला कौशल देखकर दङ्ग रह गया। उसने अपने

"बाबरनामा" में हिन्दुस्तान की इस वैभवपूर्ण अवस्था को प्रगट किया है। *Sebastion Manrique* नामक एक यूरोपीय भारत प्रवासी ने सन् १६१२ में भारत में भ्रमण किया था। उसने यहाँ के उमदा और नफ़ीस वस्त्रों का वर्णन किया है और लिखा है। कि यहाँ से समस्त पूर्वी और पश्चिमी देशों को कपड़ा जाता था। इसने बङ्गाल की तत्कालीन राजधानी ढाका का वर्णन किया है और। कहा है कि इसमें दो लाख मनुष्यों की बस्ती थी। यहाँ बननेवाली संसार-प्रसिद्ध मुलायम और बारीक मलमलों का भी विवरण दिया है। इसने लाहौर और मुलतान के बीच के प्रदेश में भी यात्रा की थी। रास्ते में यह कई छोटे २ ग्रामों में ठहरा था। इसने इन ग्रामों के विषय में लिखा है कि ये धन धान्य पूर्ण थे। इनमें गेहूँ, चाँवल, रूई आदि पदार्थ कसरत से भरे हुए थे। लोग धन धान्य-सम्पन्न थे। ग्राम बड़े सुन्दर ढंग से बसे हुये थे। सिन्ध के तावा ग्राम में भी यह कुछ दिन ठहरा था। इसने इस ग्राम को अत्यन्त समृद्धिशाली बतलाया है। इसके अतिरिक्त सिन्ध के आस पास के प्रदेश की असाधारण सम्पत्ति का जो वर्णन किया है, उससे चित्त आनन्दित हो उठता है। वह लिखता है:—

"इस प्रदेश में बढ़िया रूई के वस्त्र तैयार होते हैं, और इसके लिए हज़ारों करघे (*Looms*) चल रहे हैं। बढ़िया रेशम भी पैदा होता है जिसके बड़े नफ़ीस और नयन-रँजक वस्त्र बुने जाते हैं। इन वस्त्रों पर सोने और चाँदी की ज़री का और सलमें सितारे का जैसा बढ़िया काम होता है वह एक बारगी अपूर्व है। लोग सब धनवान हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति बड़े सुलभता से कर के बहुत कुछ द्रव्य बचा भी

लेते हैं"। मेन्डेरली नामका एक जर्मन यात्री जो लगभग १६३८ ई० में हिन्दुस्तान आया था, लिखता है:—

"भड़ौच नगर की आबादी घनी है। यह जुलाहों से भरा हुआ है। ये जुलाहे सबसे उमदा और नफीस वस्त्र तैयार करते हैं। अहमदाबाद जाते समय रास्ते में बड़ौदरा (बड़ौदा) आया। यह नगर भी जुलाहोंसे परिपूर्ण है। अहमदाबाद अत्यन्त सुन्दर और समृद्धिशाली नगर है। यहाँ बढ़िया सूती और रेशमी वस्त्र तैयार होते हैं। खम्भात नगर सूरत से बड़ा है और वहाँ बहुत भारी व्यापार होता है। आगरा जो हिन्दुस्तान की राजधानी है, इस्फ़ान नगर से लगभग दूना है। यहाँ के रास्ते बड़े ही सुन्दर और विस्तृत हैं। यह नगर बड़ीही सुन्दरता से बसा हुआ है और व्यापार भी खूब होता है। प्रजा बहुत समृद्धिवान है।"

इस बात के सैकड़ों प्रमाण दिये जा सकते हैं कि ईस्ट इण्डिया कंपनी के शासन काल के पहले हमारी साम्पत्तिक और औद्योगिक अवस्था बहुत चढ़ी बढ़ी थी। संसार का कोई देश भारत के समान समृद्ध और वैभवशाली न था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में हम विदेशों को अधिक माल बेंचते थे और उनसे कम खरीदते थे अर्थात् व्यापार का पलड़ा हमेशा हमारी ओर झुका हुआ रहता था।

भारतवर्ष कई बार लूटा गया। महमूद ने, तीस वर्ष के अर्से में, इसपर सत्रह बार चढ़ाइयाँ की। वह नगरकोट का मन्दिर लूटकर ७०० मन स्वर्ण मुद्रा, ७०० मन सोने चाँदी के बर्तन, ४० मन विशुद्ध स्वर्ण २००० मन विशुद्ध चाँदी एवं २० मन मणिमुक्ता स्वदेश को ले गया था। महमूद मथुरा नगर के आक्रमण में विशुद्ध स्वर्ण की छः मूर्तियाँ और

उनके शरीर पर के ११ रत्न ले गया था। मथुरा नगरी उस समय बड़ी समृद्ध अवस्था में थी, खुद महमूद ने इस नगर के लिए लिखा है –

" यहाँ सहस्त्रों अट्टालिकायें विश्वासी के विश्वास की तरह दृढ़ भाव से खड़ी हैं। उनमें से अधिकांश सङ्ग–मर्मर की बनी हुई हैं। यहां असंख्य हिन्दू–मन्दिर हैं। अपरिमित अर्थ व्यय के बिना इस नगरी की ऐसी सुन्दर अवस्था नहीं हुई है। दो सौ वर्ष के यत्न और परिश्रम के बिना ऐसी दूसरी नगरी निर्मित नहीं हो सकती। " महमूद जब सोमनाथ के मन्दिर के पास पहुँचा, तब वहां की अतुलनीय सम्पत्ति देखकर मुग्ध हो गया। यह क्या जाता है कि इस मन्दिर की दीवारों और ५६ खम्भों पर विविध भांति के रत्न जड़े हुए हैं। सोने की जञ्जीर में दीपक लटक रहा है, जिससे मन्दिर आलोकमय हो रहा है। चालीस मन भारी सोने की जञ्जीर से एक वृहत् घण्टा बज रहा है। महमूद ने इस मन्दिर को लूटकर नष्ट कर दिया। उसने जब सोमनाथ की मूर्ति तोड़ी तब उसमें से बहुमूल्य रत्नों का ढेर बाहर निकल पड़ा। इन रत्नों का मूल्य अपार था। महमूद ने हिन्दुस्तान से जो द्रव्य लूटा, वह इतना अपार था कि उसे देखकर वह पागल सा हो गया था। जब उसका अन्तकाल समीप आया तब वह उस विशाल द्रव्य को देख कर फूट फूट कर रोने लगा और कहने लगा कि हाय! आज इस अटूट सम्पत्ति को छोड़ कर मैं इस दुनियाँ से कूच कर रहा हूँ।

महमूद गजनवी की तरह तैमूरलङ्ग, नादिरशाह आदि बादशाहों ने भी इसे लूटा। बात यह है कि दुनियाँ की लालची आँखें सदा से इस स्वर्गभूमि भारतवर्ष पर रहीं और

एक इतिहासज्ञ के मतानुसार, यहां की अदम्य सम्पत्ति ही यहां की अधोगति का कारण हुई।

खैर, अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि इतनी सम्पत्ति लुट जाने पर भी हिन्दुस्तान की दशा वैसी दीन-हीन नहीं हुई थी, जैसी कि अब है। महमूद, तैमूरलङ्ग, नादिरशाह आदि की लूट के बाद भी भारत समृद्ध अवस्था में था। हमने पीछे कई प्रवासियों के वर्णनों का उल्लेख किया है, उनसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्यकाल का आरम्भ होने तक, तथा उसके कुछ बाद भी, भारतवर्ष की साम्पत्तिक और औद्योगिक अवस्था किस प्रकार उन्नत थी, यह बात कई पाश्चात्य विद्वानों के लेखों से भी साफ़ मालूम होती है। एक यह बात न भूलना चाहिए कि मुसलमानों ने सारे हिन्दुस्तान को नहीं लूटा, उसके कुछ हिस्सों को लूटा। महमूद जो सम्पत्ति लूट कर ले गया था, वह, विशाल होते हुए भी, उस सम्पत्ति की तुलना में कुछ न थी, जो यहाँ रह गई थी। उसके हमले हिन्दुस्तान के केवल उत्तरी पश्चिमी प्रांतों तक ही परिमित थे। सारा का सारा मध्य भारत, पूर्वीय भारत बंगाल, आसाम आदि कई समृद्धिशाली प्रान्त उसके हमलों से बिलकुल बचे हुये थे। इससे यह अनुमान सहज ही में किया जा सकता है कि महमूद के हमलों का साम्पत्तिक प्रभाव ज़्यादातर देश के कुछ हिस्सों पर पड़ा था, समग्र देश पर नहीं। इसके बाद, सन् १२०६ से लेकर अठारहवीं सदी के मध्य तक, केवल हिन्दुस्तान पर दो हमले, कुछ सफलता के साथ, हुए थे। इसमें पहला हमला तैमूरलङ्ग का था। इसने सन् १३९८ में दिल्ली को लूटा था और कहा जाता है कि यह अपने साथ लूट का बहुत माल ले गया था। इसने हिन्दुस्तान

के थोड़े से हिस्से पर हमला किया था। यह दिल्ली के आगे नहीं बढ़ा। यही कारण है कि इसके बाद भी हिन्दुस्तान के अधिकांश हिस्सों की साम्पत्तिक स्थिति अच्छी थी। यदि ऐसा न होता तो महमूद की लूट के बाद आये हुए विदेशी यात्री भारत की अटूट समृद्धि की क्यों प्रशंसा करते?

दूसरा हमला सन् १२०६ में नादिरशाह का हुआ। कहा जाता है कि यह भी अपने साथ अपार सम्पत्ति ले गया। पर यहाँ भी यह न भूलना चाहिए कि यह दिल्ली से आगे नहीं बढ़ा। हिन्दुस्तान का ज़्यादातर हिस्सा इसके जुलमी हमलों से बचा रहा; और यही कारण है कि इसके बाद भी हिन्दुस्तान संसार के राष्ट्रों में सब से अधिक समृद्धिशाली बना हुआ था। यहाँ की औद्योगिक और व्यापारिक उन्नति सर्वोपरि थी। यह सर्वोपरि स्थिति ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्यकाल के आरम्भ तथा मध्य तक बनी रही यह बात कितनेहीं निष्पक्ष अंग्रेज लेखकोंने भी मुक्त कण्ठ से स्वीकारकी है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का पदार्पण

जैसा कि हम गत अध्याय में कह चुके हैं, सारे संसार में यह भारतभूमि स्वर्णभूमि कहलाती थी। संसार की लालची आँखें इसकी ओर सदा से रही हैं। हमारे शास्त्रों में तो कहा है कि देवता तक इस भूमि से ललचते हैं, फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है? सिकन्दर को इस स्वर्णभूमि ने आकर्षित किया। महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी आदि मुसलमान बादशाहों को इसके लालच ने खींचा। इसी

प्रकार यूरोप निवासियों की लालची आँखें भी इस पर गिरीं और वे यहाँ व्यापार करने के उद्देश से आये। यहाँ यह बतलाना हमारा काम नहीं है कि किन किन यूरोपीय देशों के लोग कब कब आये और वे प्रथम कहाँ कहाँ बसे? इतिहास इसे बतलावेगा। हमतो यह बतलाना चाहते हैं कि उस समय भारत की साम्पत्तिक अवस्था कैसी थी? भारत का गौरव-सूर्य्य किस प्रखरता के साथ तप रहा था? यहाँ की औद्योगिक और व्यापारिक स्थिति किस प्रकार उन्नत थी? संसार के बाजारों पर यहाँ के बने हुए माल ने किस प्रकार अपना प्रभुत्व जमा रक्खा था? यहाँ के लोगों की स्थिति किस प्रकार समृद्ध और सुख पूर्ण थी? यहाँ का व्यापार किस प्रकार उन्नति की चरम सीमा पर पहुचा हुआ था? किसान किस प्रकार धन धान्य पूर्ण थे और फिर किस प्रकार हमारी अवनति हुई? हमारे उद्योग धन्धे किस प्रकार डुबोये गये, किस प्रकार हमारे पक्के माल पर इग्लैण्ड में कर बैठाया गया? हमारी सम्पत्ति किस प्रकार नष्ट की गई? हमारे कारीगरों पर कैसे कैसे अत्याचार किये गये और हमारे संसार प्रख्यात घरेलू धन्धों (*Home industries*) का किस प्रकार दुःख पूर्ण अन्त हुआ? इन सब बातों का सच्चा २ प्रामाणिक और ऐतिहासि उल्लेख इस अध्याय में तथा अगले अध्यायों में हम करना चाहते हैं।

'सत्य का सरासर खून करने वाले कितने ही इतिहास लेखक मुसलमानी राज्यकाल का इतना डरावना चित्र हमारे सामने रखते हैं कि जिसे देखकर हमारा हृदय धड़कने लगता है और मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की इतनी दिव्य और मनोहर मूर्ति वे

हमारी आंखों के सामने रखते हैं, जिससे एक दम राम राज्य की स्वरूप रेखा हमारे सामने खिंच जाती है। पर इन सब बातों में सत्या सत्य का कितना अंश है, इन बातों को परीक्षा करना हमारे लिए आवश्यक है।

यह बात तो शायद कोई भी अस्वीकार न करेगा कि भारत की साम्पत्तिक और व्यापारिक कीर्ति सुनकर हमारे अंग्रेज व्यापारीगण यहां आये थे। उस समय भारत कितनी उन्नतावस्था पर पहुँच गया था, इस बात का पता उन्हीं के लेखों से चलता है। लार्ड क्लाइव, जिसे भारत में अंग्रेजी शासन के प्रथम संस्थापक होने का श्रेय प्राप्त है, मुर्शिदाबाद शहर की समृद्धि का वर्णन करते हुए लिखता है —

"This city is as extensive, populous and rich as the city of London with this difference that there are individuals in the first possessing infinitely *greater property* than in the last city" अर्थात् 'यह नगर लंडन की तरह विस्तृत, जनाकीर्ण और धनवान् है। इन दोनों शहरों में अन्तर केवल यही है कि पहले शहर (मुर्शिदाबाद) के लोगों के पास दूसरे शहर (लंडन) के लोगों की अपेक्षा बहुत ही ज्यादा सम्पत्ति है।" मि० हावेल ने रिफ़ार्म पैंफ्लेट के "*Tracts of India*" नामक लेख में लिखा है.—

"In the year that Hyder established his sway over Mysore, Bengal the brightest jewel in the Imperial Crown of the moguls, came into British possession Clive described the new acquisition as a country of inexhaustible riches and one that

could not fail to make its new masters the richest corporation in the world. Bengal was known to last as tho Garden of Eden, the rich Kingdom. Here the property as well as the liberty of the people are inviolate." अर्थात् जिस साल हैदरअली ने मैसूर पर अपना आधिपत्य जमाया उसी साल मुग़ल साम्राज्य का सर्वोज्वल रत्न बङ्गाल ब्रिटिश के अधिकार में आया। क्लाइव ने इस नये राज्य को "अक्षय सम्पत्ति का देश" तथा अपने नये स्वामियों को संसार में सबसे अधिक धनवान् बनाने वाला देश कहा है। पूर्व में बंगाल 'एडन का बगीचा' अर्थात् समृद्धि शाली देश के नाम से मशहूर था। यहाँ के लोगों की मिल्कियत और स्वाधीनता अखण्ड थी। उस समय लोगों में कितनी सचाई और ईमानदारी थी उसका वर्णन आगे चल कर फिर इसी में किया गया है—

"If a bag of money or valuables is lost in this district, the man who finds it hangs it on a tree and gives notice to the nearest guard „ अर्थात् इस ज़िले में यदि किसी व्यक्ति को धन की तथा अन्य बहु मूल्य वस्तुओं की थैली मिल जाती है, तो वह उसे किसी वृक्ष पर लटका देता है और सबसे पासवाले पहरेदार को उसकी सूचना दे देता है।" अलीवर्दीखाँ के शासन-काल में बंगाल की कैसी स्थिति थी इसके बारे में स्टुअर्ट साहब अपने 'History of Bengal' नामक ग्रन्थमें लिखते हैं:—

" Such was the state of Bengal when Alivardikhan ....assumed its government. Under his rule ..the country was improved, merit and

conduct were the only passports to his favour. He placed Hindus on an equality with musalmans, in choosing ministers & nominating them to high military & civil command. The revenues instead of being drawn to the distant treasury of Delhi were spent on the spot."

इसका सारांश यह है कि अलीवर्दीखां के शासनकाल में देश का अवस्था बहुत उन्नत हो गई थी। उसने हिन्दू और मुसलमानों को एक निगाह से देखा और शासन विभाग और फौजी विभाग के बड़े से बड़े पदों पर नियुक्त करने में भी हिन्दू मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं रक्खा। जो कुछ प्रजा से कर स्वरूप में आमद होती थी वह वहीं पर खर्च की जाती थी और देहली के खज़ाने में नहीं भेजी जाती थी।

यह तो हुई बङ्गाल में अलीवर्दीखां के शासन काल की बात इसके बाद, कोई दस वर्ष का भी अर्सा न हुआ होगा कि बङ्गाल में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का शासन हुआ। तब से उसकी स्थिति में परिवर्तन होने लगा। इस समय का हाल-खुद लार्ड क्लाइव ने लिखा है। वह लिखता है:—

"Every ship for some time had brought alarming tidings from Bengal The internal misgovernment of the province had reached such a pitch that it could go no further." अर्थात् "कुछ अर्से तक हर एक जहाज़ बङ्गाल से भयभीत करनेवाले समाचार लाता था। इस प्रान्त का भीतरी कुशासन ऐसी हद तक पहुंच गया था कि जिसके पार वह जाही नहीं सकता था।" स्टुअर्ट साहब ने भी इस समय की भीषण स्थिति का हृदय-भेदक

चित्र खींचा है। उन्हों ने कम्पनी के नौकरों के भीषण अत्याचारों को—उनकी रिशवतखोरी को—उनके स्वार्थसाधन के नीचातिनीच कृत्यों को अपनी "History of Bengal" नामक ग्रन्थ में बड़ी अच्छी तरह दिखलाया है। उन्होंने एक जगह लिखा है:—

"The servants of the company obtained for themselves a monoply of almost the whole internal trade. They forced the natives to buy dear & sell cheap. They insulted with impunity the tribunals, the police and fiscal authorities.......Every servant of British factor was armed with all the power of the company......Enormous fortunes were thus rapidly accumulated at Calcutta while thirty million of human beings were reduced to an extremity of wretchedness......Under their old masters....when evil became unsupportable, the people rose and pulled down the Government. But the English Government was not to be shaken off. The Government, oppressive as the most oppressive form of barbarous despotism, was strong with all the strength of civilization." अर्थात् कम्पनी के नौकरोंने देश के आन्तरिक व्यापार को अपने मुट्ठी में कर लिया था। वे यहाँ के निवासियों को महंगे भाव में खरीदने और सस्ते भाव में बेचने के लिए मजबूर करते थे। वे अदालत, पुलिस और अर्थ-विभाग के अधिकारियों का स्वच्छन्दता से अपमान और बेइज़्ज़ती करते थे। ब्रिटिश फ़ेक्टरी का प्रत्येक नौकर कम्पनी के सब अधिकारों से सज्जित था। इसप्रकार कलकत्ते में इन

लोगों ने अपार सम्पत्ति इकट्ठी करली और तीन करोड़ मानव प्राणी दरिद्रता की चरम सीमा पर पहुच गये। इन अभागों के पुराने स्वामियों के राजत्व में जब शासन असहनीय हो जाता था, तब लोग उठते और वे उस सरकार को गिरा देते। पर अंग्रेज सरकार का आसन डाँवाडोल नहीं किया जा सकता था। इस सरकार का शासन जङ्गली स्वेच्छाचारी शासनके समान अत्याचारी होते हुए भी सभ्यता की सर्वशक्ति के साथ सुदृढ़ था।"

पूर्वोक्त तीनों चारों अवतरण अंग्रेजों ही के हैं। पाठक इससे अलीवर्दीखाँ के और कम्पनी के शासन की तुलना कीजिये। जो लोग मुसलमानों के शासन के मालेपन को निरे अन्धकार में ढककर केवल उनके जुर्मों को प्रकाश में लाते हैं, उन्हें अंग्रेजों ही के लिखे हुए उक्त वाक्य जरा ध्यान पूर्वक पढ लेने चाहिये। हमारा अभिप्राय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की बुराई दिखलाना नहीं है, वरन् वास्तविक सत्य पर प्रकाश डालना है। जहाँ मुसलमानों की बुराई होगी वहाँ भी हम उतने ही जोर से उस पर प्रकाश डालेंगे और हमने गत अध्याय में डाला भी है। दोनों शासनों में जो श्रेष्ठता है, उसे भी दिखलाने का हम प्रयत्न करेंगे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने के पहले अवध भी अत्यन्त वैभवशाली अवस्था में था। लोगों पर बिना बोझ पडे ही तीस लाख की आमदनी हो जाती थी * पर जब इस पर भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नौकरों का हथखण्डा चलने लगा, तब इसकी अत्यन्त दुर्दशा होगई। उसकी आमदनी आधी रह गई। उस समय गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिङ्ग ने लिखा था—

I fear that our encroaching spirit and the

insolence with which it has been exerted has caused our alliance to be as much dreaded by all the powers of Hindustan as our arms Our encroaching spirit, and the uncontrolled and even protected licentiousness of individuals has done injury to our national reputation Every person in India dreads a connection with us"

इसका भावार्थ यह है कि हिन्दुस्तान के सभी राष्ट्र जितना हमारे बल से डरते हैं उतना ही हमारे साथ सन्धि और मैत्री करने से डरते हैं। इसका कारण यह है कि हस्तक्षेप करने का हमारा स्वभाव है, और हम इस स्वभाव का द्योतन जिस प्रकार करते हैं उससे दूसरों का बड़ा अपमान होता है। इस हस्तक्षेप करने की प्रकृति ने और कुछ व्यक्तियों की निरंकुश स्वेच्छाचारिता ने, जिनकी हमारे द्वारा रक्षा होती है, हमारी जातीय कीर्ति को बड़ी हानि पहुंचाई है। भारतवर्ष का प्रत्येक मनुष्य हमारे साथ सम्बन्ध करने से घबराता है।

यह तो हुई अवध की बात। अब शिवाजी का हाल देखिए! हमारे अंग्रेज इतिहासवेत्ता मराठा शासन-काल का इतना काला और भयङ्कर चित्र खींचते हैं कि जिसे देखकर जी काँपने लगता है। उन्होंने शिवाजी जैसे प्रातः स्मरणीय मराठा शिरोमणि को 'डॉकू', 'पहाड़ी चूहा' कहकर अपनी नीचता का परिचय दिया है। पर इन्हीं की लेखनी के लिखे हुए इतिहासों से भी शिवाजी की श्रेष्ठता प्रकट होती है। ग्रेन्ट डफ के इतिहास के आधार से रिफार्म पेम्फलेट नंबर ६ में लिखा है:—

" The Robber Shivaji who entered upon the scene in the latter part of the Sixteenth century

and who shook the Mogul Empire to its foundati m during the reign of Aurangzeb was an able s well as skillful general His civil government was regular, and he was vigorous in exacting fr m his provincial and village officers obedience to the rules he laid down for the protection of his people His enemies bear witness to his anxiety to mitigate the evils of war by humane regulations which were strictly enforced Al ogether this robber ehro has left a character which has never since been equalled or even approached by any of his countrymen None of his military successes raises so high an idea of his domestic administration, and the effect of this appears to have been permanent for eighty years after his death ' अर्थात् डाँकू शिवाजी, जो कि सत्रहवीं सदी के उत्तर काल में मैदान में आया और जिसने औरंगजेब के समय मुगल साम्राज्य की नींव को हिलाया, बहुत ही समर्थ और चतुर सेना नायक था। उसका मुलकी शासन बिलकुल नियमित था। उसने अपनी प्रजा की रक्षा के लिए जो नियम बनाये थे, उनका पालन वह अपने प्रान्तीय और देहाती अफसरों से बराबर करवाता था। उसके शत्रु भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि दयापूर्ण नियमों के द्वारा वह युद्ध में होनेवाले अत्याचारों को कम करने की बड़ी चिन्ता रखता था। इन नियमों का पालन सख्ती के साथ करवाया जाता था। सारी बात यह है कि यह डाँकू वीर अपना ऐसा शील या चारित्र

छोड़ गया है जिसका सानी किसी ने नहीं छोड़ा। उसकी सैनिक सफलताओं में से कोई भी सफलता उसकी बुद्धि का इतना उच्च परिचय नहीं करवाती है, जितना उसका अन्तरङ्ग शासन करवाता है, और यही कारण है कि इसका परिणाम उसकी मृत्यु के अस्सी वर्ष बाद भी स्थायी रूप से दिखाई पड़ा।

Anquetil du Person नामक एक सज्जन ने "Gentleman's magazine" में सन् १७६२ में "Brief account of a voyage to India" नामक लेख प्रकाशित करवाया था उसमें उसने मराठा–राज्य का हाल लिखा था :—

"When I entered the country of the Marathas, I thought myself in the midst of the simplicity and happiness of the golden age, where nature was yet unchanged, and war & misery was unknown The people were cheerful, vigorous and in high health and unbounded hospitality was an universal virtue; every door was open, and friends, neighbours and strangers were alike welcome to whatever they found." अर्थात् जब मैंने मराठों के मुल्क में प्रवेश किया, तब मैंने अपने आपको स्वर्णयुग की सादगी और सुख के मध्य में पाया। मैंने देखा कि यहाँ प्रकृति में अबतक परिवर्तन नहीं हुआ है। युद्ध और दुःख यहाँ अज्ञात हैं। लोग आनन्द चित्त सशक्त और स्वस्थ हैं। अज़हद मिहमानदारी यहाँ सर्वसामान्य धर्म समझा जाता है। हर एक दरवाज़ा खुला है और मित्र, पड़ोसियों और अपरिचित लोगों का भी जहाँ वे जाते हैं, वहीं स्वागत होता है। शिवाजी के खानदान में, आगे जाकर

माधवराव भी सिंहासनासीन हुए थे। उनके लिये ग्रँन्ट डफ अपनी "*History of the Marathas*" में लिखते हैं।—

"He is deservedly celebrated for his firm support of the weak against the oppressive, of the poor against the rich .. for his equity to all अर्थात् उन्होंने ज़ुल्मी के विरुद्ध कमज़ोर को और धनवानों के विरुद्ध गरीब को जो दृढ़ सहारा दिया तथा सबके साथ जो बराबरी का बर्ताव किया, इसके लिये उनकी प्रशंसा की जाती है और वे उसके पात्र भी हैं।

इस समय हिन्दुस्थान के अन्य प्रान्तों से मराठों की सलतनत की दशा अधिक उन्नत थी। माधवराव के दीवान रामशास्त्री शुद्ध चरित्र और सादे मिजाज के थे। उन्होंने प्रजा की स्थिति सुधार ने में अपनी सारी शक्तियों का व्यय किया। इन्हें लोभ छू तक नहीं गया था। रिश्वत का छींटा इन्हें बिलकुल न लगा था। ये इतने निर्लोभी और सादे थे कि ये अपने घर में केवल इतना ही अन्न रखते थे, जो एक दिन के लिये काफी हो।

पेशवा के राज्य में नाना फडनवीस जैसे परम प्रजा हितैषी और अपूर्व प्रतिभा-सम्पन्न मुत्सद्दी हो गये हैं। बाजी राव की नाबालगी में इन्होंने कोई पचीस वर्ष तक शासन किया। इनके शासन काल में प्रजा कैसी सुखी और समृद्धि शालिनी थी, इसका जिक्र सर जॉन मालकम ने यों किया है —

'It has not happened to me ever to see countries better cultivated and more abounding in all the produce of the soil as well as in commercial wealth than the southern Maratha districts...

Poona the capital of the Peshwa was a very wealthy commercial town." अर्थात् मैंने दक्षिण मराठा प्रान्तों के समान कोई देश नहीं देखे, जिनमें इनसे अच्छी खेती होती हो और जो खेती से उपजानेवाले पदार्थों से ज़्यादा लबालब भरे हों या जिनमें इनसे ज़्यादा व्यापारिक सम्पत्ति हो। तत्कालीन होलकर राज्य की स्थिति के विषय में बयान करते हुए इन्हीं महाशय ने लिखा है:—

"I was surprised......to find that dealing in money to large amounts had continually taken place between cities, where bankers were in a flourishing state, and goods to a great extent continually passed through the province. The insurance offices which exist through all parts of India.........had never stopped their operations. I do not believe that in Malwa the introduction of our direct rule could have contributed more, nor indeed so much to the prosperity of the commercial and the agricultural interests, as the re-establishment of the efficient rule of its former princes and chiefs. With respect to the southern Maratha districts of whose prosperity I have before spoken......I dont think either their commercial or agricultural interests likely to be improved under our rule. Their system of administration on the whole is mild and paternal" अर्थात् मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नगरों नगरों के बीच बहुत विशाल परिमाण में

पैसे का व्यवहार सदा चलता रहता है। यहाँ के बैंकर्स भी उन्नति की अवस्था में हैं। इस प्रान्त में माल का आवागमन बहुत बड़ी तादाद में सदा हुआ करता है। बीमा के आफ़िस जो सारे हिन्दुस्थान में स्थित हैं; कभी अपना कारोबार बंद नहीं करते। मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि हमारे शासन ने इस प्रान्त की उन्नति में विशेष सहायता पहुंचाई हो, केवल यही नहीं पहले के राजाओं का शासन फिर स्थापित हो जाने पर किसानों और व्यापारियों की समृद्धि में जो वृद्धि हो सकती है, उतनी भी हमसे नहीं हुई। दक्षिण के मराठी मुल्कों के लिये मैं पहले कह चुका हूँ। मैं ख़याल नहीं कर सकता कि उनकी खेती सम्बन्धी और व्यापारिक स्थिति हमारे शासन में सुधर सकती है। उनकी (मराठों की) शासन-पद्धति नर्म और पितापुत्रकी सी (*Paternal*) है।" आगे चलकर मालकम साहब ने राज्य की उस प्रशंसनीय सहायता का जिक्र किया है जो किसानों और व्यापारियों की उन्नति के लिये मुक्त हस्त से उदारता पूर्वक दी जाती थी। इन्हीं मालकम महोदय ने हमारे इन्दौर की परम पुण्यशीला महारानी साहब अहल्याबाई के दिव्य और राम राज्य की बड़ी ही प्रशंसा की है, उन्होंने लिखा है कि महारानी अहल्याबाई बड़ी ही प्रसन्न होती थीं, जब वह अपने यहाँ के सराफ़ों (*Bankers*) और किसानों को उन्नतावस्था में देखती थीं। कर्नल मालकम साहब ने श्रीमती महारानी अहल्याबाई के राज्यकाल में साहूकारों और किसानों की समृद्धि शाली अवस्था को मुक्त

कण्ठ से स्वीकार किया है, उन्होंने कहा है कि मालवेमें उनका आदर्श शासन था।

इसके अतिरिक्त वरार के मराठा राजा के राज्य की भी इस समय, बड़ी समृद्धिशाली और उन्नतावस्था थी। युरोपियन प्रवासियों ने इस प्रान्त के उन्नतिशील ज़िलों का, औद्योगिक पुरुषों का, उपजाऊ भूमिका, भव्य मन्दिरों का और विशाल व शानदार इमारतों का बड़ा बढ़िया चित्र खींचा है।

यह तो हुई मराठों के राज्य की बात. अब दूसरी ओर झुकिये। रिफ़ार्म पैंफ़लेट में एक अंग्रेज़की गवाही का उल्लेख है। वह इस प्रकार है:—

" In passing through the Rampore territory, we could not fail to notice the high state of cultivation to which it has attained when compared with the surrounding country. Scarcely a spot of land is neglected and although the season was by no means favourable the whole district was covered with an abundant harvest. The management of the Nawab Fyzoolakhan is celebrated throughout the country When works of magnitude were required ... ..the means of undertaking them were supplied by his bounty. Water-courses were constructed, the rivulets made to overflow and fertilise the adjacent districts; and the paternal care of a popular chief was constantly exerted to efford protection to his subjects, to stimulate their exertions, to direct their labars to useful objects and to promote by every

means the success of their undertaking" अर्थात् रामपुर राज्य में से गुजरते हुए हम खेती की उस उच्च स्थिति को देखे सिवा नहीं रह सकते, जो उसने आस पास के मुल्क के मुकाबले में प्राप्त की है। यहां शायद ही कोई जमीन का टुकड़ा पड़ा होगा। यद्यपि ऋतु अनुकूल नहीं थी, तो भी सारा जिला विपुल फ़सलसे परिपूर्ण है। नवाब फैज़ुलाखां के प्रबन्ध की प्रशंसा सारे मुल्क में हो रही है। जब बड़े बड़े कामों के करने की आवश्यकता होता है, तब भी ये अपनी दान शीलता और उदारता का परिचय देते हैं। इन्होंने नहरें, तालाब आदि बनवाये, नालों की इस ढंग से व्यवस्था की कि वे आस पास के जिलों को उपजाऊ बनावें। इस के अतिरिक्त इस लोकप्रिय नवाब की पितृतुल्य चिन्ता हमेशा अपनी प्रजाकी रक्षा में-उनके कामों और प्रयत्नों में उत्साह पहुँचाने में, उनके परिश्रम को उपयोगी कामों में लगाने में और हर तरह से उनके कामों में सफलता प्राप्त करवाने में लगी रहती थी। अब येही अंग्रेज़ महाशय रोहिलों के शासन की अंग्रेजी शासन से तुलना करते हुए लिखते हैं—

"If the comparison for the same territory be made between the management of the *Rohillas* and that of our own government, it is painful to think that the balance of *advantage* is *clearly in favour of* the former" अर्थात् अगर रोहिलों के प्रबन्ध और हमारे सरकार के प्रबन्ध की तुलना की जावे तो, यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि रोहिलों का प्रबन्ध ही श्रेष्ठतर मालूम होगा। आगे चलकर फिर लिखा गया है—

'While the surrounding country seemed to

have been visited by a desolating calamity, the lands of the Rajahs' Diaram and Bhugwantsingh under every disadvantage of the season were covered with crops produced by better husbandry or greater labour" अर्थात् जबकि आस पास के मुल्क पर नाशकारी विपत्ति आयी हुई दीखती है, पर राजा दयाराम और भगवंतसिंह का मुल्क, ऋतु की प्रतिकूलता होते हुए भी फ़सल से भरा हुआ है, जो कि श्रेष्ठतर कृषि और विशेश परिश्रम से पैदा की गई है। पाठक, उपरोक्त सङ्कलित आसपासका मुल्कब्रिटिश शासन में था, इस बात को उपरोक्त लेखक ने आगे चलकर कहा है।

इस ओर तो अंग्रेज सज्जन एक देशी राजा के उदार और उच्चतम शासन के लिये प्रशंसा कर रहे हैं और दूसरी ओर ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत बङ्गाल की कैसी दुर्दशा हो रही है उसका वर्णन डाक्टर मार्शमन अपने '*The friend of India*' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"No one has ever contradicted the fact that the condition of the Bengal peasantry is almost as wretched and degraded as it is possible to concieve living in the most miserable hovels, scarcely fit for a dog—Kennel, covered with tattered rags and unable in many instances, to procure more than a single meal a day for himself and family. The Bengal ryot know nothing of the most ordinary comforts of life We speak without exaggeration

when we say that if the real condition of those who raise the harvest, which yields between three and four millians a year, were fully known, it would make the ears of one who heard theres of tingle. अर्थात् इस बातका अभी किसी ने खण्डन नहीं किया है कि बंगाल के किसानों की दशा इतनी हीनतामय और पतित हो गई है, कि जिसका ख़याल करना भी कठिन है। ये अत्यन्त हीन श्रेणी के झोंपड़ियों में रहते हैं। ये झोंपड़ियाँ इतनी तंग होती हैं कि यह एक कुत्ते के पिंजरे के लिये शायद ही काफ़ी हो। ये बेचारे फटे टूटे चिथड़े पहने रहते हैं और इन्हें शायद एक वक्त भी मुश्किलसे भोजन मिलता होगा। बंगाल के किसानों को जीवन की अत्यन्त साधारण आराम सामग्री मिलना तो दूर रहा, पर इसके विषय में वे जानते तक नहीं हैं। यह कहना कुछ अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि अगर इन लोगों की सच्ची हालत जानी जाने जो कि इस फ़सलको उत्पन्न करते हैं, जिससे तीस चालीस लाख की सालाना आमदनी होती है तो सुनने वालों के कान खड़े हो जायेंगे।"

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के पहले जिस बंगाल को अंग्रेज़ों ने "एडन" का बगीचा कहा था, जिसे लार्ड क्लाइवने "अटूट सम्पत्ति का देश" कहा था, उसी की उसके सौ वर्ष के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के-शासन काल में कितनी हीन और बुरी दशा होगई, इसको हमने अंग्रेज़ों के लिखे हुए प्रमाणों से दिखलाया है। भारत के भूतपूर्व वाइसरॉय लार्ड कार्नवालिस ने ये उद्गार निकाले थे कि " लोग ग़रीब और हीन दशा को प्राप्त होते जारहे हैं "। भारत के दूसरे गवर्नर जनरल लार्ड बेन्टिकने भी दुःखके साथ ये उदगार निकाले थे -

"Our administration had in all its branches revenue, Judicial and Police been a failure." अर्थात् रेवेन्यू, ज्युडीशियल, पुलिस आदि सब शाखाओं में हमारा शासन असफल हुआ है।

[library stamp]

नाश का सूत्रपात।

सब भाँति भारतवर्ष का व्यापार नष्ट किया गया,
करसे तथा प्रतिरोध से सब भाँति भ्रष्ट किया गया।
दारिद्र, दुर्भिक्ष अब यहाँ करता निरन्तर वास है,
धन के विना भारत हमारा पा रहा अति त्रास है॥

पिछले अध्यायों में हमने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल के पहले के भारतवर्ष को समृद्धिशालिनी और सुखपूर्ण अवस्था का दिग्दर्शन करवाया है। साथही में हमने कई सुप्रख्यात् अंग्रेजों के लेखोंके प्रमाण देकर यह दिखलाया है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनीके शासन में हमारी दशा पहले से बहुत खराब हो गई थी। इस अध्याय में हम उन कारणों का पता लगाना चाहते हैं, जिनसे क्रमशः हमारी अधोगति होती गई, हम दीन दरिद्री और हीन होते गये। हमारे लाखों भाइयों को एक वेला भी पूरा भोजन मिलना मुश्किल हो गया।

हम समझते हैं यह बात तो मामूली इतिहास के पाठक जानते होंगे कि ईसवी सन् १६०० में विलायत से व्यापारियों का एक समुदाय यहां व्यापार करने के लिये आया था। पाठक

यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि जिन अंग्रेज़ों के साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता, उनका पहला व्यापारी समुदाय जो यहाँ आया था, उसने केवल ७७ हज़ार पौंएड अर्थात् उस समय की केवल ७ लाख की पूंजी से अपना रोज़गार शुरू किया था। इसी समुदाय का नाम ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नाम से मशहूर हुआ। कोई १०० वर्ष तक सूरत, बंबई, मद्रास आदि स्थानों में रोज़गार करने के बाद सन् १६९०' में इन्होंने बंगाल में कलकत्ते की ज़मीन खरीदी और वहीं पर अपना व्यापारी अड्डा बनाया। इस समुदाय ने व्यापारिक कुटिलता खेलने में अपने पूरे कौशल्य का परिचय दिया। एक अंग्रेज़ लेखक ने लिखा है कि इन व्यापारियों की चालें उस समय के मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब को मालूम होगईं। उस ने गुस्से में आकर इन्हें देश से निकालने की आज्ञा दे दी। इस आज्ञा के कारण सूरत से अंग्रेज़ लोग खदेड़ दिये गये और ये बड़ी विपत्ति में गिर गये। अन्त में बहुत ही गिड़गिड़ा कर (*most abject*) बारम्बार माफ़ी माँगने और १॥ लाख रुपये जुर्माने के देने पर, इनका छुटकारा हुआ। इसके बाद औरंगज़ेब के पोते से इस व्यापारी वर्ग ने इस देश में बे रोक टोक व्यापार करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस अधिकार के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी, माल पर बिना आमदनी रफ़्तनी का महसूल दिये ही व्यापार करने का परवाना बेचकर अपना पेट भरने लगी। इससे इस देश के लोगों के स्वतन्त्र व्यवसाय में धक्का पहुंचने लगा। बंगाल के नवाब भी उचित महसूल पाने से हाथ धोने लगे और यहां व्यापारियों के लाभ में धक्का पहुंचने लगा।

सन् १७५७ ईसवी की प्लासी की, लड़ाई में अंग्रेज़ों की फ़तह हुई। इस फ़तह के गुप्त रहस्य क्या हैं, उन्हें प्रकट करने

का यह उपयुक्त अवसर नहीं पर इस समय से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का ज़ोर बढ़ने लगा। मीर जाफ़र अपने मालिक से नमक हरामी करके किस प्रकार क्लाइव को ओर जा मिला था, इसे इतिहास के पाठक जानते ही हैं। अंग्रेज़ों ने मीरजाफ़र से सुलह की और उसे बंगाल का नवाब बना दिया। इसके बदले में मीरजाफ़र ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को १७॥ लाख पौंड स्टर्लिंग नगद दिये। इसके सिवा बहुत सी भूमि भी दी। म्युअर साहब ने अपनी "The making of British India" नामक पुस्तक में लिखा है:—

"In addition to the sums defined in the treaty, Mir jafar after his enthronement made large gifts to the highest servants of the company. The select committee of 1772 estimated the amount of these gifts at LB.1250,000 of which Clive recieved the 234000 (Third Report P. 311). But these were only "Gifts proved and acknowledged." In 1759 Clive further recieved a jahagir or estate. Mir jafar also bequeathed him five lacs of Rupees which he made over to the company as a fund for pensioning disabled soldiers." अर्थात् सुलह की शर्तों में दी गई रकम के सिवा मीरजाफ़र ने अपने तख़्तनशीन होने के बाद कम्पनी के सर्वोच्च पदाधिकारी नौकरों को बड़े बड़े इनाम दिये। सन् १७७२ को सिलेक्ट कमेटी ने इस रकम की तादाद १२५०,००० पौंड बतलाई है; जिसमें से अकेले क्लाइव्ह को २३४००० पौंड मिले थे। पर इसमें भी वेही इनाम हैं, जो साबित और स्वीकृत किये गये हैं। सन् १७५९ में क्लाइव्ह

को जागीर मिली। मीरजाफर ने क्लाइव्ह को पांच लाख रुपया और दिया जो उसने कम्पनी के असमर्थ सिपाहियों को पेनशन देने के लिये दे दिये "। अंग्रेजी के सुप्रख्यात् लेखक लॉर्ड मेकॉले ने "*Essay on Clive*" नामक एक निवन्ध-ग्रन्थ लिखा है, उसमें उन्होंने उस धन वर्षा का वडा मनोरञ्जक वर्णन किया है, जो प्लासी के युद्ध के वाद इंगलण्ड में वरसनी शुरु हुई।

मीरजाफर को तख्त नशीन होनेको पूरे तीन सालभी न होने पाये थे कि उसका शासन असफल समझा गया। इसके शासन-काल में कम्पनी के नोकरों ने वडा जुलम किया। अत्याचारी साधनों से वे अपना मतलव वनाने लगे। देश में अशान्ति की आग भडक गई। इस वक्त शासन का परिवर्तन आवश्यक समझा गया और मीरजाफर गद्दी से हटा दिया गया और मीरकासिम को गद्दी पर विठाया गया। मीर कासिम ने इस के वदले में कम्पनी को वर्द्धान, मिदनापुर और चितगाँव नाम के तीन समृद्धिशाली जिले और वहुत सा धन दिया। इतना ही नहीं उसने मीरजाफर का वकाया भी कम्पनी को चुका दिया। इसके अतिरिक्त मीरकासिम ने कम्पनी के वडे २ पदाधिकारियों को वडे २ नजरानेभी दिये। इन नजरानों की कुल रकम २००,२६६ पौण्ड थी। जिसमें अकेले गवर्नर को ५८,३३३ पौंड दिये गये थे। मीरकासिम ने वडी ईमानदारी के साथ दो वर्ष के अन्दर ही अन्दर यह सव रकम वाकी की कम्पनी को दे दी जिसका उसने तख्त नशीन होने के वक्त देनेका वचन दिया था, पर कम्पनी के नौकर इससे कहाँ सन्तुष्ट होने वाले थे। वे तो ज्यों त्यों कर भारत का धन चूसना चाहते थे। मीरकासिम इनके हाथ

का कठ पुतला न बनकर, मीरजाफ़र से वह कहीं अच्छे ढंग से शासन करने लगा। उसने अपने मुल्क का अच्छा सुधार किया; पर कम्पनी के नौकरों की स्वेच्छाचारिता हद दर्जे की बढ़ी हुई थी। गवर्नर *I ercls*u लिख गये हैं:—

"A trade was carried on without payments of duties, in the prosecution of which infinite oppression were committed. English agents or Gumastas, not contented with injuring the people, trampled on the authority of government, binding & punishing the Nabob's officers whenever they presumed to interfere This was the immediate cause of the war with Mir kasim" अर्थात् (कम्पनी के नौकर) बिना महसूल दिये ही व्यापार चलाते थे। इसके लिये वे बेहद जुल्म करते थे। अंग्रेजों के एजेण्ट या गुमास्ता लोगों को दुःख पहुचाने ही से संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सरकार के अधिकार को भी कुचलना शुरू किया। जब कभी नवाब के अफ़सर इनकी बेजा कारस्वाइयों में बाधा देते थे तब ये इन अफसरों को बाँध देते थे और इन्हें पीटते थे। यही मीरकासिम के साथ युद्ध होने का तात्कालिक कारण था"। वारन हेस्टिंगज़ ने अप्रेल २५ सन् १७६२ को गवर्नर को एक पत्र लिखा था जिसमें कम्पनी के नौकरों के ज़ुल्म का वर्णन किया था और बतलाया था कि इन ज़ुल्मों से लोग इतने भयभीत होगये हैं कि हमारे पहुँचने की ख़बर से ही लोग सरायों को, कस्बों को, खाली कर देते हैं और दुकानें बन्द कर देते है। ख़ुद मीरकासिम ने कम्पनी के इन नौकरों

के जुल्म के विषय में बहुत कुछ लिखा था, उसका कुछ अंश इस प्रकार है —

In every Pergua, every village a d every factory they (the company s Gomastas) buy and sell salt, betelnut, ghee, rice, straw, bamboos, fish ginger, Sugar, tobacco, opium and many other things more than I can write, and which I think it needless to mention They forcibly take away the goods and commodities of the Ryots merchants etc for a fourth part of their value and by way of violence and oppressions they oblige the Ryots etc to give five rupees for goods which are worth but one rupee The officers of every district have desisded from the exercise of their functions, so that by means of these oppressions, and by being deprived of my duties I suffer a yearly loss of nearly twenty five lakhs of rupees By the grace of God I have neither transgressed nor do, nor will transgress the treaty and agreement, which I have made, why then do the chiefs of the English men render my *government contemptible* and employ themselves in bringing a loss to me '

अर्थात् हरएक परगने में, हर एक देहात में, हर एक फेक्टरी में वे (कपनी के गुमास्ता) नमक, सुपारी, घी, चावल, घास बाँस, मछली, अदरक, शक्कर तमाखू आदि कई चीजें जिनका बखान करना अनावश्यक है खरीदते हैं और बेचते हैं। व

जबरदस्ती रैयत और व्यापारियों की चीज़ें केवल एक चौथाई मूल्य देकर उठा ले जाते हैं और वे रैय्यत को इस बात पर मजबूर करते हैं जिससे वह एक रुपये के मूल्य की चीज़ का उन्हें पाँच रुपये दे दें। हर एक ज़िले के अफ़सर ने अपने कर्तव्य कर्म से मुख मोड़ लिया है। इन जुल्मों के कारण मेरा पचीस लाख का सालियाना नुकसान होता है ....ईश्वर की कृपा से मैंने कभी उस इकरारनामें या सुलह का, जो मैंने की है, उलङ्घन नहीं किया है, नहीं करता हूँ और आगे भी नहीं करूंगा, तब अंग्रेजों के मुखिया लोग मेरी सरकार को क्यों खराब कर रहे हैं और मुझे नुकसान पहुंचाने में क्यों तुले हुए हैं।" अगर आप को मीरकासिम की बात पर विश्वास न हो तो हम उस समय के एक अंग्रेज़ की साक्षी आपके सामने उपस्थित करते हैं। इन महाशय का नाम सर जार्ज वेन्रो है। इन्होंने २६ मई सन १७६२ में एक पत्र लिखा था, उसका आशय यह है:—

"कम्पनी के नौकर अपने को असीम शक्तिशाली समझते हैं। कम्पनी के लिये किसी चीज को खरीदने या बेचने के समय ये लोग गाँव २ में जाकर वहाँ के निवासियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध माल खरीदने या बेचने के लिए लाचार करते हैं। यदि कोई उनकी आज्ञा का पालन नहीं करता है तो उसे बेतों से पीटकर उसी दम जेलखाना भेज देते हैं, केवल इतनाही नहीं, जोर जुल्म के साथ गाँववालों को इस शर्त के मानने को भी लाचार करते हैं कि गोरे व्यापारियों के सिवाय वे किसी से माल न खरीदेंगे और न बेचेंगे। इसके सिवा कम्पनी के नौकर लोग जो अपने निजके व्यापार के लिये अत्याचार करके माल खरीदते हैं, उनका पूरा पूरा मूल्य देशवासियों को नहीं दिया

विषय में अपने सुभीते के अनुसार शर्तें लिखवाकर उसमें कारीगरों के दस्तखत करालिये जाते हैं। इस विषय में कारीगरों की सलाह की राय की कुछ परवाह नहीं की जाती। कारीगरों के हाथ में बयाने के नाम से पहिले कुछ रुपया दिया जाता है। यदि वे उसे लेना मंजूर नहीं करते तो वह बयाना उनके कपडों में जबरदस्ती बाँध दिया जाता है। इसके बाद कचहरी के सिपाही चाबुक मार मार कर उन्हें वहाँ से निकाल देते हैं। अनेक कारीगरों को इस बात पर लाचार किया जाता है कि वे और किसी का काम नहीं कर सकेंगे। पहले तो जिस भाव में जुलाहों से कपडे खरीदे जाते हैं, वही बाजार भाव से बहुत कम होता है, इसके बाद याचनदार अर्थात् कपडों की परीक्षा करने वालों से षडयन्त्र रचकर अच्छा माल भी खराब दर्जे का गिना जाता है इससे अभागे जुलाहों को सैकडा पीछे ४०) रुपया नुकसान सहना पडता है। इन हथकण्डों के कारण जो जुलाहे करारनामे के अनुसार माल पूरा नहीं कर सकते उनका द्वार बेचकर उसी समय नुकसानी ली जाती है। रेशम के कारीगर "नागोयाड लोगों के" साथ भी ऐसे ही भयानक जुल्म किये जाते हैं। अपना रोजगार छोड़ देने में भी इनका छुटकारा नहीं होता, पीछे से कम्पनी के नौकर लोग फिर भी उन्हें मारपीट और तंगकर कपडे बुनने के लिये लाचार करते हैं, इससे इन अत्याचारों से बचने के लिये अभागे अपने हाथ का अंगूठा काट कर काम करने से बेकाम हो बैठते हैं"

अंगरेज़ व्यापारियों के अत्याचारों से बंगाल के केवल शिल्प वाणिज्य की ही नहीं लेकिन खेती के काम की भी घोर अवनति हो गई। इस विषय का वर्णन करते हुए मिस्टर वाट्लास

महोदय कहते हैं "बंगाल की प्रजा में साधारणतः सभी लोग खेती और कारीगरी की सहायता से अपनी जीविका चलाते हैं। कम्पनी के गुमाश्ते लोग उनके पास से कारीगरी की चीज़ें लेकर इकट्ठा करने के लिये जैसा अत्याचार करते हैं उससे वे अभागे लोग इस प्रकार दुःखी होगये हैं कि अब खेती की तरक्की करने की शक्ति उनमें नहीं है। यही क्यों उनकी लगान देने की ताक़त भी नष्ट हो गई है। एक ओर कारीगरी की चीज़ों के लिये उनपर जैसा ज़ुल्म होता है दूसरी ओर ज़मीन का लगान वसूल करने में भी वैसा ही ज़ुल्म होता है। लगान वसूल करने वाले कर्मचारियों के अमानुषिक अत्याचारों से अभागी प्रजा लगान के रुपये इकट्ठे करने के लिये अपने प्राणों से प्यारी सन्तान तक को बेंच देने के लिये लाचार होती है। जो लोग ऐसा पिशाची काम नहीं कर सकते उनके लिये देश छोड़कर भाग जाने के सिवाय और कोई दूसरा बचने का उपाय नहीं है।"

पाठक! ऐसे अत्याचार हिन्दुस्तान में अथवा बंगाल में किसी भी ऐतिहासिक समय में क्या कभी हुए हैं? नादिरशाह सिराजुद्दौला आदि के नाम में तो निष्ठुरता की कलंक कालिमा अमिट रूप से लगी हुई है, परन्तु क्या उन्होंने भी कभी ऐसे अत्याचारों की कल्पना की थी? दूसरों की तो क्या, स्वयं कम्पनी के डायरेक्टर ही साफ़ साफ़ कबूल करने को लाचार हुए हैं:—

"We think vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a series of the most tyranical and oppressive conducts that was ever known in any age or country," अर्थात् हमारा विश्वास है कि जिन अत्याचारपूर्ण तरीकों के द्वारा भीतरी व्यापार

विषय में अपने सुभीते के अनुसार शर्तें लिखवाकर उसमें कारीगरों के दस्तखत करा लिये जाते हैं। इस विषय में कारीगरों की सलाह की राय की कुछ परवाह नहीं की जाती। कारीगरों के हाथ में बयाने के नाम से पहिले कुछ रुपया दिया जाता है। यदि वे उसे लेना मंज़ूर नहीं करते तो वह बयाना उनके कपड़ों में ज़बरदस्ती बाँध दिया जाता है। इसके बाद कचहरी के सिपाही चाबुक मार मार कर उन्हें वहाँ से निकाल देते हैं। अनेक कारीगरों को इस बात पर लाचार किया जाता है कि वे और किसी का काम नहीं कर सकेंगे। पहले तो जिस भाव में जुलाहों से कपड़े खरीदे जाते हैं, वही बाज़ार भाव से बहुत कम होता है, इसके बाद याचनदार अर्थात् कपड़ों की परीक्षा करने वालों से षड़यन्त्र रचकर अच्छा माल भी खराब दर्जे का गिना जाता है, इससे अभागे जुलाहों को सैंकड़ा पीछे ४०) रुपया नुक्सान सहना पड़ता है। इन हथकंड़ों के कारण जो जुलाहे करारनामे के अनुसार माल पूरा नहीं कर सकते उनका द्वार बेचकर उसी समय नुक़सानी ली जाती है। रेशम के कारीगर "नागोवाड लोगों के" साथ भी ऐसे ही भयानक ज़ुल्म किये जाते हैं। अपना रोजगार छोड़ देने में भी इनका छुटकारा नहीं होता, पीछे से कम्पनी के नौकर लोग फिर भी उन्हें मारपीट और तगकर कपड़े बुनने के लिये लाचार करते हैं, इससे इन अत्याचारों से बचने के लिये अभागे अपने हाथ का अंगूठा काट कर काम करने से बेकाम हो बैठते हैं"

अंगरेज व्यापारियों के अत्याचारों से बंगाल के केवल शिल्प वाणिज्य की ही नहीं लेकिन खेती के काम की भी घोर अवनति हुई। इस विषय का वर्णन करते हुए मिस्टर बाट्लस

लेते हैं, उसका मूल्य भी कुछ नहीं देते । बदमाशों की सलाह से सिपाही साथ लेकर गोरे लोग अनेक गांवों में जाकर विना कारण झगडा फसाद मचाते हैं। जगह २ महसूल वसूल करने के लिये चौकी बनाई गई है । कम्पनी के नौकर ग़रीब लोगों के घर में जो पाते हैं उसे वेचकर प्राप्त की हुई पूँजी अपने पल्ले करते हैं। इस तरह के ज़ुल्मों से देश सत्यानाश हो रहा है। प्रजा के लोग न घर में रहने पाते हैं और न मालगुज़ारी देने पाते हैं। कई स्थानों में मिस्टर शिवेलियर ने ज़ोर देकर कई नये बाज़ार और शिल्पशालाएं स्थापित की हैं। वह जाली सिपाही भेजकर जिसे चाहता है उसे पकड़ बुलाता है। और जुर्माना वसूल करताहै । इस गोरे के ज़ुल्म से इस ओर के अनेक बाज़ार घाट परगने एक बार ही नष्ट हो गये हैं।"

विलियम बोल्टस् उस समय के मेयर कोर्ट के जज ने इस अत्याचार का वर्णन और भी भयानक तौर से किया है। "Consideration on Indian Affairs" (1772A) नामक ग्रंथ में पाठक उस वर्णन को देख सकेंगे। उनका कथन है "बंगाल में अंगरेज़ों के व्यापार को अत्याचारों का धारा प्रवाही दृश्य कहने से सत्यता की मर्यादा भंग नहीं होगी। इस अत्याचार का बुरा फल इस देश के प्रत्येक जुलाहे और कारीगर भाग रहे हैं। देश की प्रत्येक कारीगरी की वस्तुएँ अगरेज़ व्यापारियोंने अपनी मुट्ठी में कर रक्खी हैं। किस कारीगर को कितना माल कितनी कीमत में तैयार करना होगा इस बात को भी अंगरेज़ लोग अपनी इच्छाके अनुसार स्थिर कर देते हैं, इसलिये दलाल चौकीदार और जुलाहों को सिपाहियों के द्वारा कम्पनी के नौकरों के पास हाज़िर किया जाता है और माल का अंदाज़ कीमत तथा उसके देने के समय है

जाता। कभी कभी तो उन्हें मूल्य मिलता ही नहीं है। इस प्रकार के अत्याचार के कारण बाकरगज का जिला धीरे धीरे मनुष्यों से खाली हो रहा है। अंग्रेज व्यापारियों के चपरासी स्वेच्छाचार से गरीब लोगों पर जुल्म करते हैं। यदि ज़मींदार लोग प्रजा की रक्षा के लिये प्रयत्न करते हैं तो उन्हें भी आफत में डालने की धमकी दी जाती है। पहले तो सरकारी कचहरियों में नालिश करके न्याय पा सकते थे, इस समय अंग्रेज लोगों के गुमाश्ते ही इन्साफ का काम करते हैं। हरएक गुमाश्ते के घर पर ही अदालत लगती है। गुमाश्ते लोग विचारक बनकर जमींदार लोगों के विरुद्ध भी दण्ड की आज्ञा देने में नहीं हिचकते हैं। जमींदार के बर्ताव से कम्पनी की हानि होने का बहाना कर उनसे विना कारण वे रूपया वसूल करते हैं; यदि गुमाश्ते के आदमी भी उनकी कोई चीज चुरा लेते हैं तो जमींदार के आदमियों ही पर चोरी का इलजाम लगाकर जमींदार से नुकसानी वसूल करते हैं।"

ये अत्याचार केवल बाकरगज में ही नहीं थे, प्राय बंगाल के सभी भागों में इस प्रकार के खेल खेले जाते थे। सन् १७६२ में मुहम्मदअली ने १७६२ईसवी के अक्टोबर मास में अंग्रेज व्यापारियों के अत्याचार का वर्णन करके कलकत्ते के गवर्नर के पास जो पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने लिखा था —

"कम्पनी के नौकर ढाका और लक्ष्मीपुर के निवासियों का तमाखू रूई, लोहा आदि चीजें बाजार भाव से अधिक मूल्य में लेने को लाचार करते हैं। बड़ी ज़बरदस्ती की जाती है। चपरासी की खुराक के नाम से कुछ रकम वसूल की जाती है। इस लिये यहाँ की आढ़त नष्ट हो गई है। लक्ष्मीपुर में कम्पनी के कर्मचारी अपने घर के लिये लोगों से ज़बरदस्ती ज़मीन छीन

अमानुषिक अत्याचार किये, उन्हें देखते हुए सब लोगों के लिये महसूल माफ़ कर देने का कार्य्य सर्वथा उचित था।

पर कम्पनी के लोगों को यह बात कब अच्छी लगने वाली थी। इससे उनके स्वार्थ में असीम हानि होने की सम्भावना थी। वे दूसरों के लिये सुभीताएं क्यों चाहने लगे? वे तो मॉनॉपली चाहते थे। उन्होंने नवाब के इस कार्य का विरोध करना शुरू किया। नवाब के और इनके बीच में इसी बात पर मन मुटाव होने लगा और अन्त में यह मन मुटाव बढ़ते २ युद्ध छिड़ गया। इस समय के नौकरों के बर्ताव के विषय में सुप्रसिद्ध तत्ववेत्ता जेम्स मिल ने "History of British India" में लिखा है "स्वार्थ की शक्तियाँ अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये न्याय के तत्व को और लज्जा तक को कहाँ तक तिलाञ्जलि दे सकती हैं, यह इसका ज्वलन्त उदाहरण है"। और, युद्ध में मीरकासिम की हार हुई। वह गुस्से में पागल सा हो गया। इसी गुस्से के आवेग में उसने पटने के अंग्रेज़ क़ैदियों की कतल करवा दी और वह भाग गया। इसके बाद वही मीरजाफ़र जो कुछ ही साल पहले असभ्य और अयोग्य कहकर राज्य से हटा दिया गया था फिर नवाब बनाया गया पर वह कुछही समय के बाद मर गया। इसके बाद इसका नाजायज़ लड़का निज़ामउद्दौला सन् १७६५ में नवाब बनाया गया। मीरजाफ़र को फिर तख़्तनशीन करने में और उसके मरने पर उसके नाजायज़ लड़के को नवाब बनाने में अंग्रेज़ अफ़सरों को लाखों करोड़ों रुपयों का फ़ायदा हुआ। उन्हें बड़े २ नज़राने मिले। कम्पनी को भूमि का बहुत सा हिस्सा मिला।

जब इन अत्याचारों की ख़बर विलायत पहुंची तब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने सुव्यवस्था करने के लिये लार्ड क्लाइव को फिर हिन्दुस्तान जाने के लिये कहा।

कम्पनी के गुमाश्ते और कोठीवाले जुलाहों के ऊपर जुल्म करते हैं। सच पूछा जाय तो इस ब्राह्मण को इस प्रकार की फ़रियाद करने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि कम्पनी के नौकरों ने नवाब के पास से अपने मालिकों का व्यापार बढ़ाने के लिये जुलाहों के साथ मनमाना वर्ताव करने के लिये अधिकार प्राप्त कर लिया है। इसलिये नन्दकुमार यथार्थ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का दुश्मन है।

इस प्रकार गरीब देशी कारीगरों का दुःख दूर करने के लिये कम्पनी से दुश्मनी करके अंत में इस ब्राह्मण को फाँसी की टिकटी पर चढ़कर प्राण त्याग करना पड़ा। पाठक सोचिये! कम्पनी के गुमाश्तों तथा एजटों ने किस प्रकार हिन्दुस्थान पर जुल्म किया और हिन्दुस्थान के द्रव्य को लूटा।

हाँ, यह कहना पड़ेगा कि तत्कालिक गवर्नर जनरल वारन् हेस्टिंग्ज को और तात्कालिक गवर्नर *Van si Wart* को कम्पनी के नौकरों का स्वेच्छाचार और जुल्म अच्छा न लगा। नवाब मीरकासिम की फर्याद में भी उन्हें बहुत कुछ तथ्य जान पड़ा परन्तु स्वार्थ वश होकर उन्होंने इन प्रस्तावों को अस्वीकृत कर दिया। जब नवाब मीरकासिम ने यह सुना तब उसके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसने जोश में आकर सबके लिए सायर का महसूल माफ कर दिया जिससे यहां के देशी और यूरोपियन दोनों व्यापारियों को व्यापार करने की समान सुभीतायें प्राप्त हो जावें। नवाब के इस कार्य को कोई बुरा नहीं कह सकता। पहले तो यही बात सोचने की है कि विदेशी लोगों को तो महसूल माफ़ रहे और यहाँ के देशी लोगों को जिनका इस पवित्र भूमि पर, निसर्गत: अधिकार होना चहिये महसूल देना पड़े। दूसरी बात कम्पनी के लोगों ने जैसे जैसे

अमानुषिक अत्याचार किये, उन्हें देखते हुए सब लोगों के लिये महसूल माफ़ कर देने का कार्य्य सर्वथा उचित था।

पर कम्पनी के लोगों को यह बात कब अच्छी लगने वाली थी। इससे उनके स्वार्थ में असीम हानि होने की सम्भावना थी। वे दूसरों के लिये सुभीताएं क्यों चाहने लगे ? वे तो मॉनॉपली चाहते थे। उन्होंने नवाब के इस कार्य का विरोध करना शुरू किया। नवाब के और इनके बीच में इसी बात पर मन मुटाव होने लगा और अन्त में यह मन मुटाव बढते २ युद्ध छिड़ गया। इस समय के नौकरों के बर्ताव के विषय में सुप्रसिद्ध तत्ववेत्ता जेम्स मिल ने "History of British India" में लिखा है "स्वार्थ की शक्तियाँ अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये न्याय के तत्व को और लज्जा तक को कहाँ तक तिलाञ्जलि दे सकती हैं, यह इसका ज्वलन्त उदाहरण है"। और, युद्ध में मीरकासिम की हार हुई। वह गुस्से में पागल सा हो गया। इसी गुस्से के आवेग में उसने पटने के अंग्रेज़ कैदियों की कतल करवा दी और वह भाग गया। इसके बाद वही मीरजाफ़र जो कुछ ही साल पहले अक्षम्य और अयोग्य कहकर राज्य से हटा दिया गया था फिर नवाब बनाया गया पर वह कुछही समय के बाद मर गया! इसके बाद इसका नाजायज लड़का निज़ामउद्दौला सन् १७६५ में नवाब बनाया गया। मीरजाफ़र को फिर तख़्तनशीन करने में और उसके मरने पर उसके नाजायज़ लड़के को नवाब बनाने में अंग्रेज़ अफ़सरों को लाखों करोड़ों रुपयों का फायदा हुआ। उन्हें बड़े २ नज़राने मिले। कम्पनी को भूमि का बहुत सा हिस्सा मिला।

जब इन अत्याचारों की खबर विलायत पहुंची तब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने सुव्यवस्था करने के लिये लार्ड क्लाइव को फिर हिन्दुस्तान जाने के लिये कहा।

कम्पनी के गुमाश्ते और कोठीवाले जुलाहों के ऊपर जल करते हैं। सच पूछा जाय तो इस ब्राह्मण को इस प्रकार की फरियाद करने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि कम्पनी के नौकरों ने नवाब के पास से अपने मालिकों का व्यापार बढ़ाने के लिये जुलाहों के साथ मनमाना बर्ताव करने के लिये अधिकार प्राप्त कर लिया है। इसलिये नन्दकुमार यथार्थ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का दुश्मन है!

इस प्रकार गरीब देशी कारीगरों का दुःख दूर करने के लिये कम्पनी से दुश्मनी करके अंत में इस ब्राह्मण को फाँसी की टिकटी पर चढ़कर प्राण त्याग करना पड़ा। पाठक सोचिये! कम्पनी के गुमाश्तों तथा एजंटों ने किस प्रकार हिन्दुस्थान पर जुल्म किया और हिन्दुस्थान के द्रव्य को लूटा।

हां, यह कहना पड़ेगा कि तत्कालिक गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्ज को और तात्कालिक गवर्नर *Van si Wart* को कम्पनी के नौकरों का स्वेच्छाचार और जुल्म अच्छा न लगा। नवाब मीरकासिम की फर्याद में भी उन्हें बहुत कुछ तथ्य जान पड़ा परन्तु स्वार्थ वश होकर उन्होंने इन प्रस्तावों को अस्वीकृत कर दिया। जब नवाब मीरकासिम ने यह सुना तब उसके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसने जोश में आकर सबके लिए सायर का महसूल माफ कर दिया जिससे यहां के देशी और यूरोपियन दोनों व्यापारियों को व्यापार करने की समान सुभीतायें प्राप्त हो जावें। नवाब के इस कार्य को कोई बुरा नहीं कह सकता। पहले तो यही बात सोचने की है कि विदेशी लोगों को तो महसूल माफ रहे और यहाँ के देशी लोगों को जिनका इस पवित्र भूमि पर, निसर्गतः अधिकार होना चाहिये महसूल देना पड़े। दूसरी बात कम्पनी के लोगों ने जैसे जैसे

with rubies and diamonds." अर्थात् क्लाइव्ह को प्राप्ति की कोई सीमा ही न थी। बंगाल का खजाना उसके लिये खुला पड़ा था ...... क्लाइव्ह रत्न और हीरों से सुशोभित सोने और चाँदी के ढेरों के बीच चलता था। कहने का मतलब यह है कि क्लाइव्ह ने यद्यपि नौकरों के भीषण अत्याचारोंके विषय में विलायत को लिखा था पर उस ने उनका प्राइवेट व्यापार बंद करनेकी राय न दी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों को अपने गुमाश्तों और नौकरों का यह व्यवहार बहुत बुरा लगा और उन्हों ने इस प्रकार की अत्याचार पूर्ण रीति से द्रव्य कमाने की नीति को नापसन्द किया। उन्होंने क्लाइव्ह के उस प्रस्ताव को जिसमें उसने नौकरों को प्राइव्हेट व्यापार करनेकी चाल के अनुकूल राय दी थी, अस्वीकृत कर दिया। तो भी फिर दो वर्ष तक किसी रूपमें यह अत्याचार चलता रहा।

लार्ड क्लाइव्ह सन् १७६६ में वापिस विलायत चला गया। प्रोफ़ेसर म्युअर के शब्दों में यह कहना अनुचित न होगा कि क्लाइव्ह को सुशासनकी जिम्मेदारी की कुछ भावना ही नहीं थी। उसका सारा लक्ष्य गरीब प्रजाकी बलि देकर अंग्रेज़ोंकी राजनैतिक उच्चता बनाये रखने की ओर था। उसने कभी बंगाल के सुशासन के लिये सिफ़ारिश न की। एक अंग्रेज़ लेखक ने लिखा है " क्लाइव्ह अपने लिये या अपनी सरकार के लिये जो कुछ लेगया वह उस नाश और बरबादी के मुक़ाबले में कुछ न था, जो उसके जानेके वक्त में हो रही थी। बंगाल उन लोभी और लालची अफ़सरों की बलि गिरकर निःसहाय होगया था, जो कि बेजिम्मेदार और अत्यन्त लालची थे और जिन्होंने लोगों की खानगी पूंजी को भी बरबाद किया था।

उन्हें अपने नौकरों की इन बेजा कार्रवाइयों से बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने नौकरों द्वारा किये जाने वाले व्यापार के प्रति घृणा प्रकट की। लार्ड क्लाइव ने डायरेक्टरों को जो पत्र लिखे थे, उससे उस समय के जुल्मों पर अच्छा प्रकाश गिरता है। लार्ड क्लाइव ने एक पत्र में लिखा था—

' I shall only say that such a scene of anarchy, confusion, bribery corrupption and extortion was never seen or heard of in any country but Bengal " अर्थात् मैं केवल यही कहूँगा कि अराजकता, गड़बड़, रिश्वत, भ्रष्टता और अपहरण का ऐसा दृश्य कभी सुना या देखा नहीं गया, जैसा कि इस समय बंगाल में उपस्थित हो रहा है।" आगे चलकर लार्ड क्लाईव ने इस पत्र में कम्पनी के नौकरों के जुल्मों का अति हृदय-द्रावक चित्र खींचा है और लिखा है कि यदि यही दशा बनी रही तो अंग्रेजों की कीर्ति पर भारी कलङ्क लग जायगा।

लार्ड क्लाइव ने कम्पनी के नौकरों की वेतन-वृद्धि के लिये कुछ प्रस्ताव भी पेश किये थे, पर उसने नौकरों के प्राइवेट व्यापार को बंद करने की सलाह न दी, क्योंकि इसमें उसके स्वार्थ का भी घात होता था। क्लाइव्ह ने इस अन्धा-धुन्धी में अपना बहुत कुछ निजी फायदा कर लिया था। उसने अटूट द्रव्य प्राप्त किया था। लॉर्ड मेकाले ने क्लाइव्ह के इस द्रव्य-लाभ के विषय में लिखा है—

"As to Clive there was no limit to his acquisition but his own moderation the treasury of Bengal was thrown open to him Clive walked between heaps of gold & silver crowned

with rubies and diamonds." अर्थात् क्लाइव्ह को प्राप्ति की कोई सीमा ही न थी। बंगाल का खजाना उसके लिये खुला पड़ा था... ...क्लाइव्ह रत्न और हीरों से सुशोभित सोने और चाँदी के ढेरों के बीच चलता था। कहने का मतलब यह है कि क्लाइव्ह ने यद्यपि नौकरों के भीषण अत्याचारोंके विषय में विलायत को लिखा था पर उस ने उनका प्राइवेट व्यापार बंद करनेकी राय न दी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों को अपने गुमाश्तों और नौकरों का यह व्यवहार बहुत बुरा लगा और उन्हों ने इस प्रकार की अत्याचार पूर्ण रीति से द्रव्य कमाने की नीति को नापसन्द किया। उन्होंने क्लाइव्ह के उस प्रस्ताव को जिसमें उसने नौकरों की प्राइव्हेट व्यापार करनेकी चाल के अनुकूल राय दी थी, अस्वीकृत कर दिया। तो भी फिर दो वर्ष तक किसी रूपमें यह अत्याचार चलता रहा।

लार्ड क्लाइव्ह सन् १७६६ में वापिस विलायत चला गया। प्रोफ़ेसर म्युअर के शब्दों में यह कहना अनुचित न होगा कि क्लाइव्ह को सुशासनकी ज़िम्मेदारी की कुछ भावना ही नहीं थी। उसका सारा लक्ष्य गरीब प्रजाकी बलि देकर अंग्रेज़ोंकी राजनैतिक उच्चता बनाये रखने की ओर था। उसने कभी बंगाल के सुशासन के लिये सिफारिश न की। एक अंग्रेज लेखक ने लिखा है " क्लाइव्ह अपने लिये या अपनी सरकार के लिये जो कुछ लेगया वह उस नाश और बरबादी के मुकाबले में कुछ न था, जो उसके जानेके वक्त में हो रही थी। बंगाल उन लोभी और लालची अफ़सरों की बलि गिरकर निःसहाय होगया था, जो कि बेजिम्मेदार और अत्यन्त लालची थे और जिन्होंने लोगों की खानगी पूंजी को भी बरबाद किया था।

इस प्रकार हमारे देश के निवासी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नौकरों के द्वारा लूटे और बरबाद किये गये। क्लाइव्ह के बाद भी इस प्रकार के अत्याचार कुछ वर्षों तक खुले तौर से होते रहे, जिनका कई अंग्रेज लेखकों ने भी हृदय विदारक वर्णन किया है।

उद्योगधन्धे और व्यापार का नाश।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीके नौकरों ने विविध प्रकार के अत्याचारों से, भारत की अपार सम्पत्ति को किस प्रकार लूटा, इस का दिग्दर्शन हम करा चुके हैं। उससे पाठकों को यह ज्ञात हुए बिना न रहा होगा कि मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये कैसे कैसे नीच कार्य्य करने पर उतारू हो जाता है। अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि हमारे उद्योग धन्धोंका किसप्रकार सत्यानाश किया गया। किस प्रकार हमारा भारतवर्ष औद्यौगिक शिखर से नीचे गिराया गया। कितने ही लोग शायद यह कह सकते हैं कि भारत के उद्योग धन्धे विदेशी कारखानों के बने हुए मालका मुकाबला न कर सकनेके कारण अपनी मौत आप मर गये। विदेशों में शक्तिशाली यन्त्रों का आविष्कार हुआ और उनमें इतना सस्ता माल निकलने लगा कि भारतीय माल उनकी बराबरी न कर सका और यही उसकी अधोगति का कारण हुआ। हम किसी अंश तक इस बात को मानने के लिये तैयार हैं कि विलायत के शक्तिशाली यन्त्रों के द्वारा बने हुए माल का मुकाबला न कर सकने के कारण भारत के उद्योग धन्धों

वस्त्र बनाने का उद्योग उतनाहीं प्राचीन है, जितना इजिप्त का ऊनी वस्त्र बनाने का उद्योग है। ग्रीस से हीराडोट्स नामक एक मशहूर प्रवासी ईसा के ४५० वर्ष पहिले भारतवर्ष में आया था। उसमें लिखा है कि भारतवासी अकसर रूई के बने हुये बढ़िया और मुलायम कपड़े पहनते हैं। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्ट्रेबो लिखता है कि "हिन्दुस्तान में अत्यन्त प्राचीन काल से रंग बिरंगी छींटें" बढ़िया और मुलायम मलमलें और सुन्दर रंग बनते थे। बेन नामक इतिहासवेत्ता ने तो यह मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है कि:—

"The birth-place of cotton manufacture is India where it probably flourished long before the dawn of authentic history" अर्थात् रूई से बनाये जाने वाले माल का जन्मस्थान भारतवर्ष है और प्रमाणभूत इतिहास काल के बहुत पहले ही यह तरक्की पर पहुंचा हुआ था।

एरायन नाम का एक इजिपशियन ग्रीक जो ईसा की पहली या दूसरी सदी में हुआ, उसने अपने "The circum navigation of the Erystheen sea" नामक ग्रन्थ में हिन्दुस्तान के बढ़िया और सुन्दर वस्त्रों की बड़ी प्रशंसा की है। इस ग्रन्थ से यह भी मालूम होता है कि हिन्दुस्तान में छींटें मलमलें और रूई तथा रेशम के बने हुए विविध प्रकार के वस्त्र अर्बस्थान आदि दूर २ देशों को जाते थे। इस समय मछलीपट्टम रूई के वस्त्रों के लिये संसार भर में प्रसिद्ध था। बंगाल में जैसी बढ़िया मलमलें बनती थी उस समय संसार के किसी भी देश में वैसी बढ़िया मलमलें नहीं बनती थीं। ग्रीक लोग यहाँ की बनी हुई मलमलें खरीदते थे इन मलमलों को ग्रीक लोग "*Gangi*" के नाम से पुकारते थे क्योंकि गंगी नदी के किनारे ये बनती थीं।

" बौद्धकाल में यहाँ बढिया मलमलें और विविध प्रकार के सूती और रेशमी वस्त्र बनने के उल्लेख मिलते हैं। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता थार्नटन ने अपने इतिहास में लिखा है कि "बुद्ध ने धार्मिक स्त्रियों को बारीक मलमल के वस्त्र पहनने से मना किया था, क्योंकि उन्होंने गगा नामक एक स्त्री को मलमल के वस्त्रों में नग्न देखा था"। अर्थात् मलमल के कपड़े पहनने में भी वह स्त्री नगी सी दीख पड़ती थी।

सूत जो यहाँ बनता था उसके १७५ गज़ लम्बे टुकड़े का बोझ केवल एक रत्ती होता था, एक बार केवल आध सेर रूई में २५० मील लम्बा सूत काता गया था। एक मलमल का थान जो एक बांस की छोटी नली से निकाल लिया जाता था, वह अम्वारी सहित हाथी को पूर्णत ढँक सकता था। कितनेही मलमल के थानों की तोल साढ़े आठ तोला होतीथी। यह थान दस गज़ लम्बे और आठ गिरह चौड़े होते थे और अगूठी में होकर सहजही निकाले जा सकते थे। *।

हिन्दुस्तान से सूती कपडा बनाने की कला प्रथमही प्रथम अर्बस्तान को गई। अग्रेजी शब्द " Cotton " अर्बी शब्द "क्वेटन" का विगडा हुआ रूप है। मार्को पोलो कहता है कि गगा नदी के किनारे के सब प्रदेशों में कपास विपुलता से पैदा होता है और यहाँ कपास का माल भी विपुलता से बनता है।" तेरहवीं सदी में सूत के वस्त्र बनाने की कला चीन को गई और चीन से जापान को गई। दसवीं सदी में यह स्पेन को गई और चौदहवीं सदी में स्पेन से इटली को गई। मुसलमानों ने इसका अफ्रिका में प्रचार किया। इस प्रकार इस कला का प्रचार सारे ससार में हुआ पर यह न भूलना चाहिये कि सका जन्म स्थान भारतवर्ष ही था। बेन प्रभृति इतिहासवेत्ता स बात को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं।

* इनका वृत्तान्त बौद्धों की प्राचीन पुस्तकों में मिलता है।

को चोट पहुंचाई पर जिन लोगों को इन यन्त्रों, के आविष्कार होने का हाल मालूम है वे जानते हैं कि इन यन्त्रों की सफलता का कारण भारतवर्ष ही है, अगर भारत के उद्योग धन्धों पर अनुचित प्रहार न किये जाते और इन यन्त्रों के द्वारा बना हुआ माल भारत न खरीदता तो ये यन्त्र अपनी मौत आप मर जाते। इन यन्त्रों के आविष्कार के पहले ही भारत के उन्नति-शील उद्योग धन्धों पर किस किस प्रकार आघात पहुंचाये गये, इसका दुःख पूर्ण वृत्तांत हम पाठकों को सुनाते हैं। हम पहले वस्त्र के कारोबार को लेते हैं।

वस्त्रों का कारोबार

हज़ारों वर्षों के पहले जब कि हमारे आधुनिक युरोपियन लोग, निरी जंगली अवस्था में थे, और वृक्षों के पत्तों से अपने बदन का ढांकते थे, उस समय भारतवर्ष औद्योगिक संसार में सर्वोपरि आसन ग्रहण किये हुए था। यहां के उद्योग धन्धे-उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचे हुए थे। यहाँ का विविध प्रकार का पक्का माल किस प्रकार विदेशों को जाता था और किस प्रकार अटूट द्रव्य यहाँ आता था, इसका कुछ दिग्दर्शन हम पूर्व के किसी अध्याय में करा चुके हैं। भारतवर्ष में अन्य उद्योग धन्धों की तरह, वस्त्रों का कारोबार भी अत्यन्त उन्नत अवस्था को प्राप्त हो रहा था। संसार के बाज़ार यहाँ के बने हुए बढ़िया वस्त्रों से भरे रहते थे। हज़ार पांच सौ वर्ष की तो बात ही क्या, अति प्राचीन काल वैदिक काल में भी लोग कपड़ा

बुनना भली भाँति जानते थे। ऋग्वेद के एक मन्त्र (१।२२।१६१) में ताने बाने का स्पष्ट उल्लेख है। ऋग के १०।१०७।६ तथा ५।२६।२५ के मन्त्र में अच्छे अच्छे वस्त्र पहनी हुई सुन्दरियाँ और अच्छे बने हुए वस्त्रों का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि कपड़े बुनने की कलायें उस समय अच्छी उन्नति पाचुकी थीं। महाभारत के समय में भी वस्त्रों का उद्योग बहुत बढ़ा चढ़ा था। महाभारत में लिखा है:—

मणि रत्नानि भास्वन्ति कार्पास सूक्ष्म वस्त्रकं।
चोल पांड्यावपि द्वारं न लेभाते ह्यु पस्थितौ॥

इस श्लोक से पाठकों को यह मालूम हुआ होगा कि महाभारत के समय में भारतवर्ष में रुई के बारीक और मुलायम कपड़े बनाये जाते थे और चोल व पांड्य देश इन के लिये विशेष प्रसिद्ध थे। इसी प्रकार महाभारत के समय में उत्तर भारत के प्रान्त ऊन और रेशम के मुलायम और बारीक वस्त्र तैयार करने के लिये मशहूर थे। ये वस्त्र विविध प्रकार के सुमनोहर रंगों से रंगे भी जाते थे और उनपर कलाबत्तू का बढ़िया काम भी किया जाता था।

वाल्मीकि रामायण में भी सुमनोहर, मुलायम और बारीक वस्त्रों का कई स्थानों पर वर्णन आया है। भारतवर्ष के अन्य प्राचीन ग्रन्थों मे भी इस प्रकार के कई वर्णन आये हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि हजारों वर्ष पहिले भी हमारे यहाँ बढ़िया से बढ़िया सुन्दर वस्त्र काम में लाये जाते थे।

कई प्राचीन ग्रीक और रोमन ग्रन्थकारों के ग्रंथों से भी यह बात सिद्ध होती है। एक ग्रीक इतिहासवेत्ता ने स्वीकार किया है कि ईसा के १५०० वर्ष पहले हिन्दुस्तान में वस्त्र बनाने का उद्योग तरक्की पर था और हिन्दुस्तान का सूती

प्रकार के और विविध भाँति के भारतीय वस्त्र एशिया और युरोप के बाज़ारों में मशहूर थे।" यह अंग्रेज़ इतिहासवेत्ता बेनका कथन है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि अठारहवीं सदी तक भारत के बने हुए माल की संसार भर में कितनी कदर थी और किस प्रकार भारत के उद्योग धन्धे उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचे हुए थे।

बंगाल से रायल एशियाटिक सोसायटी का एक जरनल निकलता है। इसमें बड़े ही प्रमाणभूत और अन्वेषणात्मक ऐतिहासिक लेख निकलते हैं। इसके सन् १८३७ के एक अंक में हिन्दुस्तान की बनी हुई मलमल के मूल्य पर डाक्टर वाट साहबने एक लेख लिखा था। उसमें आपने लिखा था कि सन् १७७६ में सबसे बढ़िया मलमल की कीमत ५६ पौंड थी। एक पौंड लगभग १५) का होता है। इस हिसाब से ७४० रुपये हुए। पाठक सोच सकते हैं कि हिंदुस्तान में कितनी बढ़िया २ मलमलें तैयार होती थीं। क्या आजकल की यन्त्रों की बनी हुई बढ़िया से बढ़िया लंकाशायर की मलमल इसकी बराबरी कर सकती है? हिन्दुस्तान की बनी हुई मलमलें और अन्य वस्त्रों की प्रशंसा कई अंग्रेजों ने मुक्त कण्ठ से की है। मि० थॉर्नटन कहते हैं—

"The Indian Muslins are fabrics of unrivalled delicacy and beauty." अर्थात् हिन्दुस्तानी मलमलें इतनी मुलायम और सुन्दर होती हैं कि उनकी बराबरी नहीं हो सकती'।" मि० एलफिनस्टन लिखते हैं—

"The beauty and delicacy of which was so long admired and which in fineness of texture has never been approached in any country." अर्थात् इन

मलमलों के मुलायमपन और सुन्दरता की बड़े अर्से से तारीफ हो रही है। इनकी बनावट इतनी उमदा है कि कोई देश इनके बराबरी की मलमलें तैयार नहीं कर सका। एन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में लिखा है:—

The equisitely fine fabrics of cotton have attained to such perfection that the modern art of Europe with all the aid of its wonderful machinery has never yet rivalled in beauty the product of the Indian loom" अर्थात् रुई के सौंदर्य्यशाली वस्त्र इतनी पूर्ण अवस्था पर पहुंच गए थे कि यूरोप की आधुनिक कला सब प्रकार की अद्भुत मशीनरी की सहायता होते हुए भी हिन्दुस्तान के चरखे से बने हुए वस्त्रों के मुकाबले के वस्त्र नहीं बना सकी। इस प्रकार अनेक पाश्चात्य सज्जनों ने यहा के बने हुए अपूर्व और अद्वितीय वस्त्रों की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है। बेन ने अपने इतिहास में लिखा है कि हिन्दुस्तान की इन निहायत नाज़ुक और बारीक मलमलों के लिये युरोप में कई लोगों का यह ख्याल हो गया था कि इनकी बुनावट मनुष्यों के हाथ से नहीं हुई है, पर ये मकड़ी जैसे कीड़ों की बुनावट के फल हैं।

हिन्दुस्तानी मलमलों का और रेशमी कपड़ों का इग्लैण्ड और अन्य पाश्चात्य देशों में इतना व्यापक रूप से प्रचार होगया था कि सन् १६६६ में एक अग्रेज लेखक ने इस बात पर बड़ा दुःख प्रकाशित किया है कि इग्लैण्ड के सब लोग साधारणतया हिन्दुस्तान के बने कपड़े पहनने लग गये हैं। सन् १७०८ में डेनियल डेफो (Daniel Defoe) ने अपने एक समाचार-पत्र में इस आशय का एक लेख लिखा था —

"इग्लैण्ड के लोगों की प्रवृत्ति पूर्व के बने हुए वस्त्रों की ओर जाती है. हिन्दुस्तानी छींटें और छपे हुए कपड़े पहले

नौवीं सदी में यहां कुछ अर्ब प्रवासी आये थे। उन्हों ने यहां की बनी हुई मलमलों की बड़ी तारीफ़ की है। उन्होंने लिखा है कि "इस हिन्दुस्तान में इतने असाधारण सुन्दर वस्त्र बनते हैं कि जितने कहीं नहीं देखे जाते, एक मलमल का थान एक छोटी सी डिबिया में समा सकता है।" तेरहवीं सदी में यहां मार्कोपोलो नामक प्रवासी आया था, उसने लिखा है "मच्छलीपट्टन में सबसे उमदा और सर्वाङ्ग सुन्दर ऐसी बढ़िया मलमलें बनती हैं कि जैसी संसार के किसी भी देश में नहीं बनती।" मुगलों के शासन-काल में भी वस्त्र बनाने का उद्योग बड़ी तरक्की पर था। सम्राट अकबर ने भारत के शिल्प वाणिज्य को बड़ा प्रोत्साहन दिया था। स्वर्गीय बंकिमचन्द्र लाहिड़ी ने अपने "सम्राट् अकबर" नामक ग्रन्थ में लिखा है:—

"सम्राट् अकबर ने शिल्प की भी बहुत उन्नति की थी। भारत के सर्व प्रकार के शिल्प को उत्साह प्रदान किया था। दरी बनाने के लिये बहुत से स्थानों पर राजकीय शिल्पशालायें स्थापित की थीं। राजकीय शिल्पशालाओं में ऐसी सुन्दर दरियाँ, तोपें और बंदूकें तैयार होती थीं कि वैदेशिक भ्रमण करने वालों को देख कर आश्चर्य होता था। सम्राट् ने भारत में रेशम और पशमीने के वस्त्र बनाने के काम को भी बहुत उन्नत अवस्था में पहुँचाया था। काश्मीर और लाहौर में शाल (दुशाले) की उन्नति के लिये बहुत से उपाय अवलम्बन किये थे। सैंकड़ों राजकीय शिल्प-शालाओं में बहुत सी वस्तुएं राजकीय व्यय और तत्वावधान से प्रस्तुत होती थीं।" बादशाह शाहजहाँ ने भी भारतीय शिल्प को अच्छा प्रोत्साहन दिया था, औरंगजेब ने यद्यपि हिन्दुओं पर कई प्रकार के जुल्म किये थे। पर उसके जमाने में भी उद्योग धन्धों की हालत

चढ़ी बढ़ी थी। उस ज़माने में कितनी बढ़िया मलमलें बनती थीं, इसका परिचय निम्न लिखित दृष्टान्त से होगा। एक समय सम्राट् औरंगज़ेब की लड़की रोशनआरा अपने पिता के सामने ढाके की बनी हुई मलमल की बीस पट की साड़ी पहने हुए आई। वह मलमल इतनी बारीक थी कि बीस पट लगाने पर उसका बदन ज्यों का त्यों दीखता था। औरंगज़ेब बड़ा नाराज़ हुआ और गुस्सा खाकर कहने लगा "ऐ बेशर्म और बेहया! मेरे सामने नंगी क्यों आई है? मेरी आखों की ओट से एक दम हट जा।" इस बात से पाठक जान सकते हैं कि औरंगज़ेब के शासन-काल में भी यहाँ कितनी बारीक, और बढ़िया मलमलें बनती थीं।

इसके बादभी यह उद्योग ज्यों का त्यों उन्नतावस्था पर बना रहा। कई अंग्रेज़ लेखकों ने मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार किया है कि अठारहवीं सदी तक यह उद्योग बड़ी अच्छी तरह चलता रहा था। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मि० बेन ने लिखा है कि सन् १७३५ तक रुई के वस्त्र केवल प्रान्त विशेष ही में नहीं बनते थे, पर सारे हिन्दुस्तान में बनते थे। यहां रुई उसी तादाद में पैदा होती थी, जिस तादाद में अन्न पैदा होता है बंगाल उमदा और बढ़िया मलमलों के लिये मशहूर था। कारोमण्डल के किनारेका मुल्क बढ़िया छींटों के लिये प्रख्यात था। सूरत मज़बूत कपड़ों के लिये प्रसिद्ध था। मच्छलीपट्टम में बढ़िया रूमाल बनते थे। कृष्णानदी के किनारे के मुल्क में बढ़िया रंग तैयार होता था।

छींटों (Chintres और Longhums) के तैयार करने में मच्छलीपट्टम की बड़ी नामवरी थी। लंबे कपड़े और छोटेकोट ('Petti-coats)मद्रास से आते थे। इनके अतिरिक्त अनेक

माल की रक्षा के लिये ७० से ८० तक भारत के कपड़ों पर महसूल लगाना आवश्यक प्रतीत हुआ। अगर ऐसा न किया जाता, अगर हिन्दुस्तानी माल के रोक लिये यह महसूल न लगाया जाता तो पेसले (*Paisely*) और मैनचेस्टर के कारखाने शुरु ही से बंद हो गये होते और भाफ़ की शक्ति से भी शायद ही फिर चले होते। वे भारत की कारीगरी और वाणिज्य का ध्वंस करके ही खड़े किये गये हैं या जिलाये रखे गये हैं। अगर हिन्दुस्तान स्वाधीन होता तो वह इसका बदला चुकाता और वह भी ब्रिटिश माल के रोक के लिये महसूल लगाता और इस तरह अपने उद्योग धन्धों को नाश होने से बचा लेता। हिन्दुस्तान को आत्मरक्षा का मौक़ा नहीं दिया गया। वह विदेशियों के दया का भिखारी था। ब्रिटिश माल बिना किसी प्रकार के महसूल के उस पर लादा गया और विदेशी कारीगरों ने राजनैतिक अन्याय के शस्त्र का अवलम्बन कर इसे (भारत के उद्योग को) नीचे गिरा दिया और अंत में उसके बराबरी में खड़ा न हो सकने के कारण उसका गला घोंट दिया"।

पाठक! एक अंग्रेज़ ही के लिखे हुए वृत्तान्त से अनुमान कीजिये कि हमारे उद्योग धन्धों और व्यापार के साथ इंग्लैण्ड ने कैसा सुलूक किया। हमारे यहाँ से जाने वाले माल पर सौ सैकड़ा ८० और पीछे जाकर ८५ तक कर बैठाया गया और वहां से आनेवाले मालपर नाम मात्र का २॥ रु. सैकड़ा या कुछ भी कर न रखा गया। मलाबार प्रान्त में क्यालिको नामक छींट का कपड़ा बनता था और बहुत तादाद में विलायत जाता था। परन्तु इस व्यवसाय को नाश करने के लिये भी पहले तो डेढ़ आने से तीन आने फ़ी गज़ महसूल

"The cotton and silk goods of India up to the period (1813 A. D) could be sold for a profit in the British market at a price 50 to 60 percent lower than those fabricated in England It consequently became necessary to protect the latter by duties of 70 and 80 percent on their value Had this not been the case, had not such prohibitory duties and decrees existed, the mills of paisley W Manchester would have been stopped in their out set, and could scarcely have been set in motion even by power of steam. They were created by sacrifice of the Indian manufacture Had India been Independent, she would have retaliated, would have improved prohibitive duties upon British goods and would thus have preserved her own productive industry from annihilation This act of self defence was not permitted to her, she was at the mercy of the stranger British goods without paying any duty and the foreign manufacturer employed the arm of political injustice to keep down and ultimately strangle a competitor whith whom he could not have contended with equal terms." इसका सारांश यह है कि हिन्दुस्थान का सूती और रेशमी माल सन १८१३ तक ब्रिटेन के बाजारों में इंगलैण्ड के बने हुए माल के मुकाबले में सैकड़ा पीछे ५० या ६० रुपये सैकड़े कम मूल्य पर वेचा जा सकता था और इसीलिये विलायत

हिन्दुस्तान की कारीगरी को और यहाँ के व्यवसाय को नष्ट कर विदेशी विलायती माल की खप बढ़ाने के लिये और भी कितनेही घृणित और लज्जादायक उपाय किये गये। पाठक यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत की कारीगरी पर भी कडा महसूल लगा दिया था। लॉर्ड वेंटिंग के समय में इस विषय पर जो अनुसन्धान हुआ था, उससे यह प्रगट होता है कि विलायत का बना हुआ कपडा भारत में केवल मात्र २॥) रु प्रति सैकडा महसूल देकर बेचा जाता था और भारत ही के बने हुए कपडे पर भारत ही में १७॥) रूपया प्रति सैकडा महसूल लगता था। देशी शक्कर पर विलायती शक्कर से इसी देश में ५) अधिक महसूल लगता था। देशी चमडे की चीज़ों पर इसी देश में १५) प्रति सैकडा महसूल देना पडता था। इस प्रकार भारत में तैयार होने वाली कोई २३५ प्रकार की कारीगरी की वस्तुओं पर बडाही अनुचित महसूल लगा दिया था। प्राय ३० वर्ष तक इस प्रकार कडा महसूल लादकर भारत का औद्योगिक सत्यानाश किया गया।

हमने ऊपर अब तक विशेष तौर से कपडे ही का विवेचन किया है, पर उस वक्त इंग्लैण्ड की सरकार ने कपडे के अतिरिक्त और भी कितनीही हिन्दुस्तानी चीजों पर कडा महसूल लगाया था, उसका एक ब्यौरा नीचे प्रकाशित करते हैं –

नाम वस्तु	महसूल	नाम वस्तु	महसूल
घिय कुवार	७०) से २८०)	बकरे के ऊनकी चीज़ें	८४॥=)
हींग	२३३) से ६२२)	चटाई	८४॥=)
इलायची	१५० से २६६)	मसलिन (तनजेब)	३२॥)
काफी	१०५) से ३७३)	क्यालिको	८१)
काली मिर्च	२३६) से ४००)	कपास का कपडा	८१)

बैठाया गया। जब इतने से भी काम न चला तो सन् १७२० ईस्वी में कानून बनाया कि जो लोग विलायत में हिन्दुस्तानी क्यालिको (छींट) को बेचेंगे उनपर २० पौंड यानी २०० रुपया और जो खरीदेंगे उनपर पचास रुपया जुर्माना होगा।

आश्चर्य यह है कि इतने पर भी हिन्दुस्तानी माल की आयात न रुकी। इस पर और भी कड़े कानून बनाये गये! हर तरह से हिन्दुस्तानी माल को रोकने का प्रयत्न किया गया और ब्रिटिश माल का हिन्दुस्तान में बे रोक टोक प्रचार होने दिया। इंग्लैंएड की देखा देखी यूरोप के अन्य देशों ने भी हिन्दुस्तानी माल को रोकने के लिये इसी प्रकार के कड़े कानून बनाये और उसपर इतना भारी महसूल लगा दिया कि वह वहां न जा सके। बेन ने लिखा है:—

' Not more a century ago the cotton fabrics of India were so beautiful and cheap that nearly all the governments of Europe thought it necessary to prohibit or load them with heavey duties to protect their own manufactures. " अर्थात् हिन्दुस्तान के वस्त्र इतने सस्ते और सुन्दर थे कि कोई एक सदी का भी अर्सा न हुआ होगा कि युरोप की तमाम सरकारों ने अपने शिल्प की रक्षा के लिये हिन्दुस्तान के सूती वस्त्रों को रोकना या उनपर भारी महसूल लगाना आवश्यक समझा।' इंग्लैंएड हिन्दुस्तानी वस्त्रों पर दिन प्रति दिन किस किस प्रकार महसूल बढ़ाता गया, इसकी एक तालिका हम बेन के लेख के आधार पर नीचे प्रकाशित करते हैं—

* Useful Arts and manufactures of Great Britain.

फ़र्श आदि बनवाने ही में काम में लिये जाते थे, पर अब हमारी महिलाएँ तक इन्हें पहनने लग गई हैं...... औरों की तो बात ही क्या, खुद इंग्लैण्ड की रानी चीना सिल्क और हिन्दुस्तानी छीटें पहनना पसन्द करती हैं। इस वक्त चारों ओर हिन्दुस्तानी कपड़ा नज़र आ रहा है। हमारे बैठकखाने में, हमारे चेम्बर में, हमारे घरों में लगे हुए पर्दों में, हमारे बिछौने में और तकियों में, हमारे बच्चों और स्त्रियों की पोशाक में चारों तर्फ़ हिन्दुस्तान के बने हुए वस्त्र नज़र आते हैं। प्रायः सब कपड़ा हिन्दुस्तान से आता है। (Almost every thing that used to be made of wool or silk relating either to the dress of our women or the furniture of our houses was supplied by Indian trade)

कहने का मतलब यह है कि एक समय इंग्लैण्ड आदि पाश्चात्य देशों के बाज़ार हिन्दुस्तानी पक्के माल से भरे रहते थे। ईस्ट इण्डिया कंपनी हिन्दुस्तानी माल के व्यापार में विलायत में सैकड़ा ८५ तक नफ़ा कमाती थी। इतने पर भी विलायत में हिन्दुस्तानी माल बहुत सस्ता बेचा जाता था, यह बात विलायत वालों को खटकने लगी। उन्होंने देखा कि विलायत में हिन्दुस्तानी कपड़े वगैरे का शौक़ बढ़ता जा रहा है, लोग हिन्दुस्तानी कपड़ों पर बेतहाशा लट्टू हैं, और हिन्दुस्तानी माल का प्रचार बे रोक टोक बढ़ने दिया तो इंग्लैण्ड का औद्योगिक अभ्युदय न हो सकेगा और हिन्दुस्तान मालामाल बन जायगा। इन्हीं सब बातों का विचार कर इंग्लैण्ड की सरकार ने हिन्दुस्तानी माल पर बहुत कड़ा महसूल लगा दिया। सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक विलसन लिखते हैं:—

चीनी	६४) से	३९३)	लाख	८१)
चाय	६७) से	१००)		

रेशमी कपड़े की उस वक्त विलायत में जाने की बिलकुल मनाई थी। यदि कोई रेशमी कपडा विलायत में मँगाता था तो उसे विलायत के बदर में उठने न देकर उसी घडी लौटते जहाज पर भारत में भेज दिया जाता था।

इन सब अत्याचारों और ज्यादतियों का फल यह हुआ कि दिन प्रतिदिन देशी शिल्प और व्यवसाय की जड कटने लगी और उसके स्थान में विलायती माल की आमद बढ़ने लगी। इसका फल यह हुआ कि सन् १७९४ में जिस भारत में १५६ पौंड से अधिक विलायती सूती कपडा नहीं आया था, वहाँ सन् १८०९ में १ लाख १८ हजार ४ सौ पौंड से भी अधिक विलायती सूती कपडा आया। इसके आगे भी विलायती कपडे की आमद उन दिनों में कैसी २ बढ़ती गई और भारत की कम होती गई, उसकी एक तालिका नीचे प्रकाशित करते हैं।

सन्	विलायत से आया	विलायत को गया
२८१४	८१,२०८ गज	१२६६६०८
१८२१	१९१३८,७२६	५३४४९५
१८२८	४२८२२,०७७	४२२५०४
१८३५	५१७७७,२७७	३०६००६

इस तालिका से पाठकों को मालूम हुआ होगा कि उस समय विलायती माल की आमद किस प्रकार बढ़ती गई और भारत की आमद किस प्रकार घटती गई। सन् १८३५ के बाद तो वह और भी अधिक *तीव्र गति से बढ़ने लगी।* इसके बाद भारत में किस प्रकार विदेशी कपडा आया सो पाठक देखिये।

सन्।	सफेद छींटें प्रति सैकड़ा टेक्स।	मलमलों पर फ़ी सैकड़ा टेक्स
	पौंड शि०	पौं शि०
१७८७	१६—१०	१८—०
१७९७	१८—३	१९—१६
१७९८	२१—३	२२—१६
१७९९	२६—९	३०—३॥।
१८०२	२०—१	३०—१५॥।
१८०३	५९—१।	३०—१८॥।
१८०४	६५—१२॥	३४—७
१८०५	६६—१८	३५—०
१८०६	७१—१३	३७—६
१८१३	८५—२	४४—६

उपरोक्त तालिका से पाठकों को यह मालूम हुए विना न रहा होगा कि हिन्दुस्तानी छींटों पर ८५ प्रति सैकड़ा तक महसूल बैठाया गया था। इससे हिन्दुस्तानी वस्त्रों के उद्योग को किस प्रकार हानि पहुंची होगी इसका अनुमान पाठक स्वयं कर लें ? सचमुच हिन्दुस्तान के व्यवसाय का अत्याचार से गला घोंटा गया। इंग्लैण्ड के व्यवसायी लोग हिन्दुस्तानी माल पर भारी से भारी महसूल लगवाकर और हिन्दुस्तान में विना महसूल दिये माल भेजने का प्रबन्ध कर इंग्लैण्ड के व्यापार को बढ़ाने का प्रयत्न करने लगे। उस समय अगर उन्हें किसी बात की चिन्ता थी तो यही थी कि किसी प्रकार हिन्दुस्तान में विलायती माल की खप ज़्यादा हो। हाउस आफ़ कामन्स की सिलैक्ट कमेटी के सामने जॉन रेकिंग नामक एक अंग्रेज़ व्यापारी ने सन् १८१३ में अपनी गवाही में यह स्वीकार किया था कि हिन्दुस्तानी माल पर जो कड़ा महसूल

और रोक लगाई गई है, उसका उद्देश हमारे उद्योग धन्धों की रक्षा करना है।

जान पड़ता है कि सन् १८१३ में पार्लियामेण्ट की एक जाँच कमेटी इसलिये बैठी थी कि वह इस बात की जांच करे कि इंग्लैण्ड के कारीगरों के लाभ को किस प्रकार बढ़ाया जाय? यह बात उन प्रश्नों से साफ साफ मालूम होती है जो इसने उन लोगों से किये थे जो इसके सामने गवाही देने आये थे। वॉरनहेस्टिंग्ज से यह प्रश्न किया गया था —

From your knowledge of the Indian character and habits are you able to speak to the probability of a demand of European commodities by the population of India for their own use?

अर्थात् हिन्दुस्तानियों के स्वभाव तथा आचरण के सम्बन्ध में आप लोगों की जितनी जानकारी है, उसके अनुसार क्या आप कह सकते हैं कि हिन्दुस्तानी लोगों के लिये युरोप की बनी चीजें खरीदना सम्भव है कि नहीं"? इसी प्रकार के प्रश्न सरजान मालकम और थामस मनरो आदि गवाहों से भी पूछे गये थे। इसके उत्तर में सभी ने प्राय इस आशय के वचन कहे थे "हिन्दुस्तान में बनी हुई चीजें ही हिन्दुस्तान की जरूरतों को पूरी कर सकती हैं। हिन्दुस्तानी बिलकुल विलास प्रिय नहीं है। हिन्दुस्तानी मजदूर महीने में तीन या चार रुपये से अधिक पैदा नहीं कर सकते। हिन्दुस्तानियों में विलायती चीज के आदर होने की सम्भावना नहीं है।" सर थामस मनरो ने इसी समय कहा था कि हिन्दुस्तानी माल विलायती माल की अपेक्षा कई गुना अच्छा होता है। एक हिन्दुस्तानी शालको हम सात वर्ष से काम में ला रहे हैं और इतने दिन उपयोग में लाने पर भी उस में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

सन्	रुपयों का कपड़ा आया
१८८४-८५	२४५६१०४८३
१९०३-०४	३०८४२८४६५
१९११-१२	४२८८८००००
१९१२-१३	५३३०४००००
१९१५-१६	३७६२५०००
१९१७-१८	५६५१५८०००
१९१८-१९	६०५५४८ ००

महायुद्ध के पहले के सालों का हिसाब देखने से मालूम होता है कि उस समय करोड़ों रुपयों का अनाप सनाप कपड़ा आता था। महायुद्ध के कारण यह आमद महायुद्ध के पूर्व के वर्षों से बहुत कुछ कम होगई थी, पर महायुद्ध समाप्त होतेही फिर किस प्रकार भारत में विदेशी कपड़ा और सूत बढ़ता जा रहा है यह उपरोक्त अंकों से स्पष्ट ज्ञात होता है। यद्यपि उपरोक्त अंको में विलायत के सिवाय अन्यदेशोंसे भी कपड़ा आया है पर औसतन सैकड़े पीछे ८०) रु० का माल विलायत से ही आया है।

यह तो हुई भारत और इंगलैंड के बीच के व्यवसाय की बात। इङ्गलैण्ड की तरह अन्य पाश्चात् राष्ट्रों में भी भारत के मालकी आमदनी कम होने लगी।

अमेरिका, डेनमार्क, स्पेन, पोर्चुगाल, मोरिस तथा एशिया खण्ड के दूसरे देशों में भी भारत के माल की आमदनी कम होने लगी। सन् १८०१ में भारत से अमेरिका १३६३३ गाँठें कपड़ा गया था, सन् १८२९ में यह संख्या घटकर केवल २५८ रह गई। सन् १८०० ईसवी तक डेनमार्क में प्रतिवर्ष कम बेश १४५० गाँठें कपड़ों की रफ़्तनी होती थी, किन्तु

सन् १८२२ के आगे यह संख्या केवल १५० रह गई। सन् १७९९ ईसवी में हिन्दुस्तान से ९७१४ गाठें पोर्चुगाल गई थी, पर सन् १८२० में यह नम्बर १००० ही रह गया। मुहम्मद रजाखाँ के जमाने में बगाली जुलाहे ६ करोड बगालियों की कपड सम्बन्धी आवश्यकता पूर्ति कर के भी १५ करोड रुपय के कपडे विदेशों को भेजते थे पर आज भेजना तो दूर रहा, करोडों रुपये के कपड़े विदेशों से यहाँ आते हैं और भारत वासियों की वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकता अधिकाश रुप स विदेशी कपडों से पूर्ण होती है।

डाक्टर बुकानद ने कपनी की आज्ञा से सन् १८०७ में उत्तर भारत की कारीगरी और वाणिज्य की दशा जानने के लिये पटना, शाहाबाद, आदि स्थानों में पयटन किया था। उन की जाँच स मालूम हुआ कि उस समय वहाँ २४०० बीघे जमीन में रूई की और १८०० बीघे जमीन में ईख की खेती होता थी। वहाँ ३३०४२६ औरतें केवल सूत कातकर अपनी जीविका चलाती थीं। दिन भर में कुछ घण्टे काम कर ये १० लाख ८९ हजार ५ रुपय नफा पाती थीं। अंग्रेज व्यापारियों की ज्यादतियों से महीन सूत की रफ्तनी रुकने के साथ ही साथ उनका व्यवसाय घटने लगा और उनके जीविका की जड कटने लगी। जुलाहे भी, वहाँ, कपड बुनकर वार्षिक खर्च का निर्वाह कर साढे सात लाख रुपया नफा का पाते थे। फतूहा गया, नवादा आदि स्थान टसर के लिये मशहूर थे। शाहाबाद में कोई १५९५०० स्त्रियाँ प्रतिवर्ष १२॥ लाख रुपया सूत कात कर कमाती थीं। उस जिले में ७९५० करघे चलते थे। इसक अतिरिक्त कागज, सुगन्धित वस्तुए तेल नमक आदि वस्तुओं का व्यवसाय भी बड़े जोर पर था। भागलपुर में चाँवल का

भाव रुपये का ३७॥ सेर था। उस समय उस ज़िले में १२००० बीघे ज़मीन पर कपास की खेती होती थी। वहाँ टसर बुनने के लिये ३२७५ करघे और कपड़ा बुनने के लिये ७२७६ करघे चलते थे। गोरखपुर में १७५६०० स्त्रियां चरखे से सूत कातती थीं। यहां ६११४ करघों पर भी वस्त्र बुने जाते थे। २०० से ४०० तक नावें भी प्रतिवर्ष बनती थीं। इन सबों के अतिरिक्त नमक और शक्कर बनाने के भी अनेक कारखाने थे। दीनाजपुर ज़िले में २६००० बीघे पर पटुआ, २४०० बीघे पर रुई, २४००० बीघे पर ईख, १५००० बीघे पर नील और १५०० बीघे पर तमाखू की खेती होती थी। इस ज़िले में,१३ लाख से भी अधिक गायें और बैल थे। ऊंची जातियों की बहुतेरी विधवाएँ और किसानों की स्त्रियाँ सूत कातकर खर्च के अतिरिक्त ६१५००० रुपये फ़ायदे में पाती थीं। यहां ५०० रेशम व्यवसायियों के घराने १२००००० रुपये नफ़े के पाते थे। यहां जुलाहे प्रतिवर्ष १६ लाख १४ हज़ार रुपये के कपड़े बुनते थे। मालदह ज़िले की मुसलमान स्त्रियों में सुई की कारीगरी का बहुत ही अधिक प्रचार था। सूत और कपड़े में भांति भांति के रंगों को चढ़ाकर हज़ारों मनुष्य अपना गुज़र करते थे। इसके अतिरिक्त पूर्निया ज़िले में स्त्रियां प्रतिवर्ष लगभग ३ लाख रुपयों का कपास खरीद कर जो सूत कातती थीं, उससे उनको १३ लाख रुपये मिल जाते थे। वहाँ दरी फीता आदि का व्यवसाय भी बड़ी तरक्की पर था। अफ़सोस है कि कई प्रकार के कुटिल और अत्याचारी उपायों के द्वारा हमारा शिल्प वाणिज्य मिट्टी में मिला दिया गया और हमारा देश, जो एक समय औद्योगिक संसार का शिरोमणि था इतनी अधोगति की स्थिति को पहुंच गया कि आज उसे अपनी साधारण आवश्यकता की पूर्ति

रेशमी कपड़ों को विलायत में बिना महसूल और रोक टोक के जाने की इजाज़त दी जायगी, जैसी ग्रेट ब्रिटेन के कपड़ों को बिना महसूल और रोक टोक के यहाँ आनेकी इजाज़त है..... .... हमें पूर्ण आशा है कि श्रीमान् अपनी उदारता को बढ़ावेंगे और जाति पांति देश और रंग का पक्षपात न कर श्रीमान हमें ब्रिटिश प्रजा के हक़ देंगे"। इस प्रकार के और भी कितने ही प्रार्थनापत्र भेजे गये थे, पर अफ़सोस है कि एक की भी सुनवाई नहीं हुई। सुनवाई होभी कैसे सकती थी क्योंकि इससे अंग्रेज़ कारीगरों और व्यवसायियों के स्वार्थ में हानि पहुंचने का डर था:—

जब भारतीय शिल्प की जड़ प्रायः कट चुकी, जब यहाँ के वस्त्र-व्यवसाय मृत प्राय स्थिति को पहुंच गये और जब भारतीय धन से विलायत मालामाल हो चुका और वहाँ के कारखानों को उन्नति करने की काफ़ी खुराक मिलगई, जब वाष्पीय यन्त्रों के आविष्कार से ख़ूब सस्ता माल निकलने लगा तब इंगलैंडवालों ने सन् १८३६ ई० में उदारनीति की घोषणा कर स्वतन्त्र व्यापार नीति (Free-trade Policy) को अंगीकार किया। इससे भारत के बने माल पर जो अबतक महसूल देना पड़ता था वह बंद हो गया। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि जब तक इंग्लैंड के उद्योगधन्धे अपरिपक्व अवस्था में थे और दूसरे देशों के उद्योग धन्धे का मुकाबला न कर सकते थे, तब तक उन्होंने केवल संरक्षण नीति (Protection) का अवलम्बन ही नहीं किया था, पर विविध प्रकार के कुटिल मार्गों का भी अवलम्बन किया था, जिसका विवेचन हम ऊपर कर चुके हैं। इसके बाद तो भारत में चारों ओर विलायती माल दीखने लगा। भारत का वस्त्र व्यवसाय पहले ही नष्ट हो चुका

था और इस वक्त वह ऐसी पंगु स्थिति में था कि वाष्पीय या विद्युत शक्ति के द्वारा चलनेवाली मशीनों से बने हुए वस्त्रों का किसी प्रकार का मुकाबला नहीं कर सकता था। इससे करोड़ों रुपये के विलायती वस्त्र भारत में आने लगे और भारत से इसके बदले में प्रचुर सम्पत्ति जाने लगी। सन् १६०६से १६१४ तक का औसत निकाला जावे तो प्रति वर्ष औसतन् कोई ४८४०८५,००० का सूती कपड़ा और ३७,७१८,००० का कता हुआ सूत विलायत से यहां आया। इसके बाद सन् १६१५ -१६ में ३६५,६८५,००० का कपड़ा और ३६,७७०,०००) का सूत तथा सन् १६१६ १७ में ४६०,१५७,००० का कपड़ा और ४०५ ८६००० रुपये का सूत विलायत से यहाँ आया। सन् १६१८-१६ में ५१६,८८५,०००) का कपड़ा और ८८,६६३,००० रुपये का सूत यहां आया।

इस प्रकार विलायती सूत और वस्त्र का परिमाण बढ़ता गया। अगर युद्ध की बाधा न आती तो यह परिमाण आज कितना बढ़ जाता इस की कल्पना करना कठिन है।

जब इस प्रकार भारत का अपार धन विदेशों में जाने लगा तब कुछ लोगों की आंखें खुलीं और उन्होंने फिर विलायत से कलें मँगा कर कपड़े बनाने का काम शुरु करने का विचार किया। कोई साठ वर्ष पहले की बात है कि बम्बई निवासियों ने इस प्रकार का प्रयत्न करना शुरु किया। जब अंगरेजों को इस बात का पता लगा तो उन्होंने एक नियम बना दिया कि बिलायत से भारत में कल आदि मँगाने के लिये अधिक महसूल देना होगा। इसके अलावा यहाँ पर विदेश से कलें मँगा कर कारखाना खड़ा करने में कितनी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं उसका अंदाज़ा भी पाठक लगा सकते हैं। इन सब कठिनाइयों के

होते हुए भी लोगों का ध्यान स्वदेशी कारोबार की ओर बढ़ने लगा और सन् १८८२ ई० में यह मिलें अच्छी तरह चलने लगी और महीन धोतियां बनाने लगी। पर अभाग्य वश इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में महीन कपड़े बनाना असम्भव हो गया। एक बड़ी भारी विपत्ति का सामना और करना पड़ा। भारत वासियों की यह सफलता देख कर विलायती व्यापारियों के कान खड़े हो गये और उन्हों ने भारत सरकार पर दबाव डाल कर भारत में आने वाली अमेरिका की लम्बी तन्तु वाली कपास की आमद रोकने के लिये उस पर ५) फी सैकड़ा महसूल लगवादिया और मिश्र की रुई को भी भारत में आने से रुकवादिया। इतना होने पर भी एक नयी विपत्ति और सामने आई। सरकार ने यह कह कर कि आमदनी से खर्च ज़्यादा हो रहा है इसलिये सन् १८६८ ई० में एक कानून पास किया कि देशी माल पर प्रति सैंकड़े ३॥) रु० टैक्स लगाया जाय। इस पर देश में बड़ा असंतोष फैला और लोगों ने साफ़ साफ़ कहा कि भारत सरकार की यह नीति केवल विलायती कारखाने वालों की रक्षा के लिये है जिससे देश में स्वदेशी प्रचार के बढ़ने से वहां का माल महँगा न पड़े। अतएव इसे रद्द करने के लिये जगह जगह प्रस्ताव पास हुए। पर खेद है कि सरकार ने लोगों की बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि स्वदेशी माल पहले की अपेक्षा और महँगा हो गया। यहाँ पर पाठकों को यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि देश में बनी हुई किसी वस्तु या कपड़े पर जो देश ही में बेचा जाता हो टक्स लगाने का नियम पराधीन भारत को छोड़ कर और किसी अन्य उपनिवेश में नहीं है।

महायुद्ध के पहले विदेशी माल पर भी ३॥) सैंकड़ा टैक्स

लगाया गया था। पर महायुद्ध शुरु होने से खर्च बहुत ज्यादा बढ जानेसे यह टैक्स ७॥) सैकडा बढा दिया गया। पर जब महायुद्ध समाप्तहुआ तो महँगी इत्यादि बहुत अधिक हो जाने से खर्च कम हो जाने की अपेक्षा और अधिक बढ गया। इसलिये १९२० २१ के बजट में कर बढाना और भी आवश्यक प्रतीत हुआ। अत 'एव विदेशी कपड़ों पर ७॥) से ११) प्रति सैकडा कर बैठाया गया। इस कर से वास्तव में बम्बई के कारखानों वालों को बहुत लाभ होगा पर यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिये कि यह कर भारतीय उद्योग धन्धों को उत्तेजना देने के लिये नहीं बढाया गया है, पर भारत सरकार के खजाने में कमी होने से यह कर बढाया गया है। मि० हेली ने जिन्होंने इस कर को लगाने का प्रस्ताव उपस्थित किया था, कौन्सिल में साफ शब्दों में यह कहा था कि विदेशी सूती कपडों पर सामुद्रिक महसूल बढ़ाने में हमारा मुख्य उद्देश्य यही है कि किसी प्रकार आमदनी हो इसमें हमारा उद्देश्य भारतीय उद्योग धन्धोंका सरक्षण करना नहीं हैं। इससे साफ़ मालूम होता है कि भारत के धनसे पलेहुए मि० हेला भारत के धन्धों का सरक्षण करना पाप समझते हैं। यदि वे ऐसा कहते तो भारत का नमक अदा करते परन्तु उनके हृदय में तो था जाति भाइयों का ध्यान इसलिये उन्हें यह कर लगाने के लिये कैफियत देने की ज़रूरत पडी। परन्तु मि० हेली के इतना आश्वासन देने पर भी लकाशायर के व्यापारी हल्ला मचा रहे हैं। देखें इसका परिणाम क्या होता है। सम्भव है अन्य मार्गों द्वारा भारत के उद्योग धन्धों पर टैक्स लगाया जावे।

युद्ध के पहले इग्लैन्ड में स्वतत्र व्यापार की प्रधानता थी और इसी कारण भारतसरकार भी उसी के पक्ष में रही। परन्तु

सयुद्ध ने उसके मतमें परिवर्तन करदिया। इंग्लैन्ड अब दूसरे देशों से माल नहीं मँगाना चाहता। वह अब अपने साम्राज्यसे सहायता लेकर अपनी कमी पूरी करना चाहता है। इस नीति के अनुसार इंग्लैन्ड वैदेशिक व्यापार को स्वतत्र न रहने देगा। अब इंग्लेन्ड उस नीति के अनुसार कार्य्य करेगा जिससे साम्राज्य के अग इंग्लैन्ड की सब कमी पूरी कर सकें और साम्राज्यके बाहर के विदेशी, साम्राज्यके बाजारों में अपने माल की भरती न कर सकें। इस नीति के अनुसार साम्राज्याधीन देश साम्राज्य के माल को स्वतत्रता से अपने देश में आने देंगे और साम्राज्य के बाहरी देशों के माल पर महसूल लगा करउनकी आमद रोकेंगे।

इस नई नीति के अनुसार इग्लैन्ड और उसके आधीनस्थ देश किसी देश के माल पर कम और किसी देश के माल पर ज्यादा महसूल लगावेंगे। सापेक्ष कर की नीति से इंग्लेन्ड को अवश्य लाभ होगा क्योंकि भारतवर्ष आदि देशों से वह बे रोक टोक कच्चा माल सस्ते दामों पर ले सकेगा और अपने उन्नत कारखानों का बना माल इन देशों में बेच कर बहुत लाभ उठावेगा। परन्तु भारत की इस से बडी हानी होगी। भारत का जितना वैदेशिक व्यापार है उसका अधिकांश इंग्लैन्ड से है। बाहर से आने वाले माल का ७० फी सैकडा ग्रेटवृटेन से आता है। इस में अधिक तर तैयार माल रहा करता है। भारतीय कारखानों से मुकाबला करने वाले प्रधान तथा ग्रेटबृटेन के कारखाने है। इस माल के भारतवर्ष में बे रोकटोक आने से भारतीय कारखानों को बडी हानी पहुँचेगी। क्योंकि बाहर के देशों को जाने वाले माल में ८४ फी सैकडा ग्रेटब्रिटेन को जाता है। यह सब अधिकतर कच्चा माल लेकर

है। यहां के कारखानों के लाभ के लिये यदि यह माल यहीं पर रहे तो अच्छा होगा। परन्तु नई नीति के अनुसार यह माल अब विना महसूल के ग्रेट ब्रिटेन जाने लगेगा। और महसूल न रहने से इसका जाना और भी बढ़ेगा। इसके सिवाय इन महसूलों के हटा लेने से भारत सरकार के खजाने की बड़ी हानि होगी और उसकी पूर्ति का एकमात्र उपाय भारतवासियों पर कर बढ़ाना होगा। अतएव इस नीति का अवलम्बन हर प्रकार से भारत को हानिकर होगा।

भारत में रेशमी वस्त्र का व्यवसाय।

हमने पिछले अध्याय में वस्त्रों के व्यापार पर एक साधारण दृष्टि डाली है, उसमें रेशमी वस्त्रों के व्यवसाय का भी कहीं कहीं थोडा बहुत जिक्र आया है। इस अध्याय में हम इसका विवेचन कुछ विस्तृत रीति से करना चाहते हैं। सबसे पहले यह देखना चाहिये कि रेशम का व्यवसाय हमारे यहां कब से है, इसने कैसी तरक्की की और फिर इसका किस प्रकार नाश हुआ ?

सर जार्ज वाट् ने अपने सुप्रसिद्ध और परमोपयोगी ग्रन्थ 'Dictionary of Economic Produ ts of India' में लिखा है, कि तसर के रेशम का प्रचार हिन्दुस्तान में हजारों वर्षों से है। प्रोफेसर राधाकृष्ण झा ने अपने "भारत की साम्पत्तिक अवस्था" नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ में प्राचीन भारत के रेशम के व्यवसाय के विषय में लिखा है —

ईसवी दूसरी सदी में मलाबार किनारे से भारतीय रेशम लाल समुद्र होता हुआ रोम पहुँचता था। इसी प्रकार बैजनटियम (कुस्तुनतुनिया) के ग्रीक बादशाहों के दरबार में भारत के रेशमी वस्त्रों की बड़ी चाह थी। इसके बाद कुछ पुराने फ़कीरों ने या तो भारतवर्ष से या चीन से रेशम के कीड़े लेजा कर छटी सदी में युरोप में रेशम का प्रचार किया। यही रेसम धीरे २ बारहवीं सदी तक सिसली, इटली और स्पेन में फैलकर भारत के व्यापार से स्पर्धा करने लगा।

पर जब युरोप का व्यापार बन्द हो गया तो बग़दाद के खलीफ़ाओं ने (१३ वीं सदी) रेशम मंगाना शुरू किया। इधर भारतवर्ष में मुसलमान बादशाहों ने रेशम के व्यवसाय की बड़ी उन्नति की। विशेष कर अकबर के शासन-काल में तो रेशम का रोजगार चरम सीमा पर पहुंच गया। अबुल फ़ज़ल ने आईने अकबरी में भाँति भाँति के रेशम का वर्णन किया है। नूरजहां बेगम ने अपने पूर्व पति के साथ बर्दमान में रहते हुए वीरभूमि का रेशम पसन्द किया था। जब वह दिल्लीपति की अर्द्धांगिनी हुई तो उन्होंने वीरभूमि के रेशम का फ़ैशन दिल्ली में चलाया। अब क्या था। सब कोई बादशाह बेगम मुसाहब सरदार इसे पहनने लगे। यात्री बर्नियर ने बादशाह के समय के साटिन, मख़मल, मुशंजर, कमख़ाब, चेली, टसर, इत्यादि तरह २ के रेशम का विस्तृत वर्णन किया है। बर्नियर कहता है कि बंगाल में इतना सूती और रेशमी माल तैयार होता है कि वह मुग़ल साम्राज्य की कौन कहे, आस पास के कुल साम्राज्यों और योरप भर की जरूरतों के लिये काफ़ी है।

मालदह (बंगाल) रेशम के व्यापार का केन्द्र था। सर जार्ज बर्ड वुड तथा डाक्टर हण्टर ने लिखा है कि इसका परा

कारखाने में काम करें।" कैसा अच्छा न्याय था। दासता के चगुल में फँसकर विचारे जुलाहों को काम करना पड़ता था। आगे ८१वें पृष्ठ में कोर्ट आफ डायरेक्टर लिखित एक पत्र दिया है जो हाउस ऑफ कामन्स की निर्वाचित कमेटी की ९वीं रिपोर्ट का ३७ वीं उपक्रमणिका में उद्धृत किया है। उस पत्र का आशय यह था कि "यदि यह प्रथा (घरों में काम करने की प्रथा) हमारे आलस्य से प्रचलित रहे तो उसे राजाज्ञा से बिलकुल बंद कर दिया जाय और जो आज्ञा न माने उसे घोर दण्ड दिया जाय।" धन्य है।

इस प्रकार के प्रतिबन्धों से भारत के रेशमी व्यवसाय को भारी क्षति पहुंचने लगी और विलायत के रेशमी वस्त्रों के व्यवसाय को खूब प्रोत्साहन मिला। इसके अलावा विलायत में वाष्पीय और विद्युत शक्ति से चलने वाले यन्त्रों से सस्ता माल बनने लगा जिसका मुकाबला भारत का हाथ का बना माल नहीं कर सकता था। इन कितने ही कारणों से भारत का रेशम का व्यवसाय गिर गया। इस वक्त विलायत में भारतीय रेशम की साख नहीं है पर उस विलायती माल का मुकाबला न कर सकने के कारण यह उन्नति नहीं कर सकता। अफसोस है कि विलायती सूती तथा रेशमी वस्त्रों के व्यवसाय की रक्षा के लिये पहले हमारा व्यवसाय गिराया गया और जब विलायती रेशमी और सूती वस्त्रों का व्यवसाय नयी कलों की ईजाद के कारण खूब धड़ाके से चलने लगा और उसे प्रतिस्पर्धा का भय न रह गया तब अबाध वाणिज्य नीति स्वीकार की गई। दुःख है कि इसके पीछे भी भारतीय उद्योग धन्धों की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। अगर भारत के उद्योग धन्धों को उत्तेजना दी जाती विलायती उद्योग धन्धों की तरह

उनकी रक्षा की जाती, भारत में कारीगरों को उत्तेजन पहुंचाया जाता, वैज्ञानिक खोज करने वालों को वैसीही सहायता और उत्तेजना पहुंचाई जाती, जैसी इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी जापान आदि देशों में पहुंचाई जाती है तो हमें पूरा पूरा विश्वास है कि यहाँ भी विलायत की तरह शक्तिशाली यन्त्रों का आविष्कार हो गया होता और यहाँ के उद्योग धन्धे भी विलायती उद्योग धन्धों की तरह बहुत तरक्की की हालत में होते। पर यहाँ तो कुछ भी न किया गया। अगर कुछ किया भी गया तो यही कि यहाँ के उन्नतिशील उद्योग धन्धे कई प्रकार के कुटिल उपायों से गिराये और नष्ट किये गये।

जहां दो सौ वर्ष के पहले यहाँ से लाखों रुपयों का रेशम और रेशमी वस्त्र बाहर जाते थे, वहाँ दिन प्रति दिन विदेशी रेशम की आमदनी बढ़ने लगी और अब तक बराबर बढ़तीही जाती है। सन् १८७६–७७ में विदेशों से भारत में ५८॥ लाख रुपयों का रेशम आया। सन् १८८१–८२ में यह बढ़कर १३५ लाख रुपये, सन् १९००–०१ में १६५ लाख रुपये १९०४–०५ में २११ लाख रुपये, सन् १९०७–०८ में ३०० लाख रुपये तथा सन् १९१२–१३ में ४७६ लाख रुपये का आया। इसके बाद महायुद्ध के कारण सन् १९१७–१८ में यह ४०२ लाख रह गया पर ज्योंही महायुद्ध समाप्त हुआ, १९१८–१९ में फिर ४५४ लाख रुपया हो गया। इस प्रकार करोड़ों रुपये का रेशम तथा रेशमी वस्त्र विदेशों से यहाँ आते हैं। रेशमी माल केवल इंग्लैंड ही से नहीं आता बल्कि जापान, फ्रान्स, चीन, अमेरिका आदि अनेक देशों से भी आता है। इस वक्त जापान ने रेशम में सबसे ज़्यादा उन्नति की है। वहाँ की सरकार ने रेशम के उद्योग धन्धों को खूब उत्तेजन दिया है। इसका फल यह हुआ

सबूत मिलता है कि १५७७ ईस्वी में मालदह के शेख भीखूने तीन जहाजों में भरकर रेशमी माल फारस की खाड़ी की राह से रूस भेजा था। इसी तरह विदेशी यात्रियों ने भी मालदह से रेशम के यूरोप भेजे जाने का वर्णन किया है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी हरसाल मालदह से बहुतसा रेशमी माल खरीदा करती थी। उस समय बगाल में रेशमी कपडे और रेशमी सूत दोनों चीजें तैय्यार होती थीं। यहाँ से बहुत सा रेशमी सूत मछलीपट्टम, खभात और सूरत भेजा जाता था, जहां रेशमी कपडा बुनने का बहुत बडा व्यवसाय था उसी तरह ट्रेवर्नियर अपने भ्रमण वृत्तांत में कहता है कि कासिम बाजार से सालाना बाईस हजार गाँठे (प्रत्येक ५० सेर की) बाहर भेजी जाती हैं कासिम बाजार में बडी बडी अँग्रेज और फ्रेञ्च कम्पनियां सैंकडों कारीगरों के द्वारा अपनी कोठियों में रेशमी माल तैयार कराया करती थीं। जब लडन के पास स्पाइटल फील्ड (Spi al fields) में रेशम का कपडा बनने लगा तो उसकी रक्षा के लिये ईरान, हिन्दुस्तान और चीन के रेशम का व्यवहार रोक दिया गया। इतना ही नहीं, लडन में यह कानून बन गया था कि जो कोई भारतीय रेशम के वस्त्र काम में लायेगा उस पर २०० पौंड दण्ड लगाया जायेगा। रेशम पर बहुत अधिक कर लगाया गया, जिसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। जब इतने पर भी काम न बना तो एक और कडा कानून बनाया गया जिसके विषय में डबल्यू डबल्यू हन्टर साहब लिखते हैं—

" The parliament passed two Acts called by Sir George Bindwood the scandalons law of 1700 which both obtained the Royal assent on the 11th of

April, by which it was enacted "that from and after the 29th day of september 1701, all wrought silKs, Bengal and stuffs mixed with silK or herbar of the manufacture of China, Persia, of the East India and all Calicoes, painted dyed, printed or stained there, which are or shall be imported into this Kingdom shall not be worn or otherwise used in Great Britain: and all goods imported after that day shall be warehoused or exported again."

पार्लियामेण्ट ने दो कानून बनाए जिनको सर जार्ज बर्डवुड ने सन् १७०० के प्रथम कानून कहा है। इन को ११ अप्रैल क० इंगलैंड नरेश की स्वीकृति मिल गयी। इन के द्वारा यह निश्चय हुआ कि २९ सितम्बर १७०१ के बाद इंगलैंड में आये हुए बंगाल के बने रेशमी कपड़े चीन फारस और ईस्ट इण्डीज़ के बने ऐसे कपड़े जिनमें रेशम का मेल हो और सब ऐसे कैलिको की किस्म के कपड़े जो उन देशों में रंगे या छपे हों न तो पहिने जायँ और न किसी प्रकार काम में लाये जायँ। और उस तारीख़ के बाद जो माल आवेगा वह या तो कोठियों में पड़ा रहेगा या बाहर भेज दिया जायगा। सर रमेश चन्द्र दत्त ने भी इस व्यवसाय के नाश होने के कारणों का पता लगाया है। वे लिखते हैं:—

सन् १७६९ में १० मार्च के पत्र में कम्पनी ने बंगाल के अधिकारियों को लिखा कि बंगाल में कच्चा रेशम उत्पन्न करने की उन्नति और रेशम के बने हुये कपड़ों का व्यापार रोका जाय उन्होंने यह भी लिखा कि यहां के रेशम के बनाने वालों को विवश किया जावे कि वे अपने घरों में काम न करके कम्पनी के

कारखाने में काम करें।" कैसा अच्छा न्याय था। दासता के चंगुल में फँसकर विचारे जुलाहों को काम करना पड़ता था। आगे ४५३ वें पृष्ठ में कोर्ट आफ डायरेक्टर लिखित एक पत्र दिया है जो हाऊस ऑफ कामन्स की निर्वाचित कमेटी की ६वीं रिपोर्ट का ३७ वीं उपक्रमणिका में उद्धृत किया है। उस पत्र का आशय यह था कि "यदि यह प्रथा (घरों में काम करने की प्रथा) हमारे आलस्य से प्रचलित रहे तो उसे राजाज्ञा से बिलकुल बंद कर दिया जाय और जो आज्ञा न माने उसे घोर दण्ड दिया जाय।" धन्य है।

इस प्रकार के प्रतिबन्धों से भारत के रेशमी व्यवसाय को भारी क्षति पहुंचने लगी और विलायत के रेशमी वस्त्रों के व्यवसाय को खूब प्रोत्साहन मिला। इसके अलावा विलायत में वाष्पीय और विद्युत शक्ति से चलने वाले यन्त्रों से सस्ता माल बनने लगा जिसका मुकाबला भारत का हाथ का बना माल नहीं कर सकता था। इन कितने ही कारणों से भारत का रेशम का व्यवसाय गिर गया। इस वक्त विलायत में भारतीय रेशम की राक नहीं है पर उस विलायती माल का मुकाबला न कर सकने के कारण यह उन्नति नहीं कर सकता। अफसोस है कि विलायती सूती तथा रेशमी वस्त्रों के व्यवसाय की रक्षा के लिये पहले हमारा व्यवसाय गिराया गया और जब विलायती रेशमी और सूती वस्त्रों का व्यवसाय नयी कलों की ईजाद के कारण खूब धड़ाके से चलने लगा और उसे प्रतिस्पर्धा का भय न रह गया तब अबाध वाणिज्य नीति स्वीकार की गई। दुःख है कि इसके पीछे भी भारतीय उद्योग धन्धों की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। अगर भारत के उद्योग धन्धों को उत्तेजना दी जाती, विलायती उद्योग धन्धों की तरह

उनकी रक्षा की जाती, भारत में कारीगरों को उत्तेजन पहुंचाया जाता, वैज्ञानिक खोज करने वालों को वैसीही सहायता और उत्तेजना पहुंचाई जाती, जैसी इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी जापान आदि देशों में पहुंचाई जाती है तो हमें पूरा पूरा विश्वास है कि यहाँ भी विलायत की तरह शक्तिशाली यन्त्रों का आविष्कार हो गया होता और यहाँ के उद्योग धन्धे भी विलायती उद्योग धन्धों की तरह बहुत तरक्की की हालत में होते। पर यहाँ तो कुछ भी न किया गया। अगर कुछ किया भी गया तो यही कि यहाँ के उन्नतिशील उद्योग धन्धे कई प्रकार के कुटिल उपायों से गिराये और नष्ट किये गये।

जहां दो सौ वर्ष के पहले यहाँ से लाखों रुपयों का रेशम और रेशमी वस्त्र बाहर जाते थे, वहाँ दिन प्रति दिन विदेशी रेशम को आमदनी बढ़ने लगी और अब तक बराबर बढ़तीही जाती है। सन् १८७६–७७ में विदेशों से भारत में ५८॥ लाख रुपयों का रेशम आया। सन् १८८१–८२ में यह बढ़कर १३५ लाख रुपये, सन् १९००–०१ में १६५ लाख रुपये १९०४–०५ में २११ लाख रुपये, सन् १९०७–०८ में ३०० लाख रुपये तथा सन् १९१२–१३ में ४७६ लाखरुपये का आया। इसके बाद महायुद्ध के कारण सन् १९१७–१८ में यह ४०२ लाख रह गया पर ज्योंहीं महायुद्ध समाप्त हुआ, १९१८–१९ में फिर ४७४ लाख रुपया हो गया। इस प्रकार करोड़ों रुपये का रेशम तथा रेशमी वस्त्र विदेशों से यहाँ आते हैं। रेशमी माल केवल इंग्लैंड ही से नहीं आता बल्कि जापान, फ्रान्स, चीन, अमेरिका आदि अनेक देशों से भी आता है। इस वक्त जापान ने रेशम में सबसे ज़्यादा उन्नति की है। वहाँ की सरकार ने रेशम के उद्योग धन्धों को खूब उत्तेजन दिया है। इसका फल यह हुआ

है कि पिछले ३० वर्षों में उसने रेशम की पैदावार तिगुनी करदी है।

हमने पहले रेशम की आमदनी का जो हिसाब दिया हे, वह सब देशों का मिलाकर है। कुछ भिन्न२ देशों का हिसाब देखिये। ग्रेट ब्रिटेन ने सन् १९१४-१५ में १७ लाख रुपये का और सन् १९१३-१४ में २८ लाख रुपये का, फ्रान्स ने सन् १९१३ १४ में २५ लाख रुपयों का, जापान ने १४५ लाख रुपयों का, चीन ने ६४ लाख रुपयों का रेशम भेजा। यह तो हुई हमारे यहाँ आने वाले माल की कैफियत, अब यह देखना है कि हमारे यहाँ से जाने वाले माल में किस प्रकार कमी होती गई। प्रो० राधाकृष्ण जी झा महोदय ने "भारत की साम्पत्तिक *अवस्था" नामक ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में जो हिसाब* दिया है, उसे हम नीचे प्रकट करते हैं —

सन् १७७० में भारत से विदेशों को ८,४८६,००० रुपयों के रेशम की रफतनी हुई थी, वहाँ सन् १९१४-१५ में ११९१००० रुपयों की रफतनी हुई। महायुद्ध के कारण सन् १९१६-१७ म यह रफतनी कुछ बढी, अर्थात् वह ४९३२००० की हो गई। कुछ भी हो; इसमें सन्देह नहीं कि रेशम की रफतनी घटती जा रही है। अगर सरकार की ओर से पूरा पूरा प्रोत्साहन मिले और वैज्ञानिक रीति से काम चलाया जावे तो हमारा पूरा विश्वास है कि यह उद्योग बड़ी तेजी से चमक सकता है।

भारत की खेती और
किसानों की दुर्दशा

गत दिल्ली कॉंग्रेस में, उसके सभापति माननीय पण्डित मदन मोहन मालवीय ने कहा थाः—

"इस कॉंग्रेस का अधिवेशन एक अपूर्व अधिवेशन है। लोकमत का असली रूप जिस प्रकार इस कॉंग्रेस में दिखाई दे रहा है, वैसा पहले कभी दिखाई नहीं दिया। अबतक कॉंग्रेस में राजा महाराजा आये, बडे २ ज़मींदार आये, उपाधिधारी सुप्रतिष्ठित विद्वान आये, बडे २ देश नेता आये, पर इस कॉंग्रेस में अब वे लोग आये हैं, जो हमारे अन्नदाता हैं, जो भारत के मूल्यवान अंग हैं जिनके पैदा किये हुए अन्न पर केवल हमहीं नहीं पर और भी अनेक राष्ट्र जीते हैं। आज उनके सैकडों की संख्या में दर्शन हो रहे हैं।" मालवीय जी के ये वचन अक्षर २ सत्य हैं। सचमुच आज तैंतीस करोड़ भारत वासियों के जीवन सर्वस्व और अन्नदाता ये किसान ही हैं; इतना ही नहीं, विदेशी राष्ट्रों के करोडों मनुष्यों का पालन हमारे इन किसानों के पैदा किये हुए अन्न से होता है। हिन्दुस्तान में फीसदी ८५ किसान हैं और यहाँ का प्रधान उद्यम खेती है। यहाँ की सरकार को सबसे ज़्यादा आमदनी इन्हीं किसानों से होती है। ये किसान प्रति वर्ष कितना अन्न उत्पन्न करते हैं और इनका उत्पन्न किया हुआ कितना अन्न बाहर जाता है, इसका एक ब्यौरा हम नीचे प्रकाशित करते हैं, जिससे पाठकों को मालवीय जी के और इन पंक्तियों के लेखक के कथन की सच्चाई मालूम हो जायगी।

पदार्थोंकेनाम	खेतीकापरिमाण	पदार्थोंकेनाम	खेतीकापरिमाण
	एकड		एकड
चांवल	८०६६७८१९	तिलहनपदार्थ	१४१००३६७
गेहूँ	२६४२७९०४	शक्कर	२९९२६१६
दाल आदि	९१८३५७६७	कपास	१५४०३०००
जूट	२७००३२४	अन्यखाद्यपदार्थ	२०७८३६५८६
जौ	८५०५२८६	कुल मीजान	२६४८१६८२६

यह तो हुआ खेती की भूमि के एकड का परिमाण। अब यह देखना चाहिये कि यहाँ के किसान कितना अन्न उत्पन्न करते हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के अनाजों का हिसाब हम नीचे देते हैं.—

चांवल		गेहूँ	
सन्	तादादक्वारटर*	सन्	तादादटन*
१९११-१२	६०१,४८०,०००	१९११-१२	९९०४५००
१९१५-१६	६५६,४८०,०००	१९१४-१५	१००८७०००
१९१७ १८	७१९०४००००	१९१७-१८	१०१६२०००

रुई		जूट	
सन्	तादादगाँठें*	सन्	तादादगाँठें*
१९११-१२	३२८८०००	१९११-१२	८२३४७००
१९१५-१६	३७३८०००	१९१५-१६	७३४०९००
१९१७-१८	४०३५०००	१९१७-१८	८८६४६००

चाय		अलसी	
सन्	पौंड	सन्	टन
१९११-१२	२६०६०२७००	१९११-१२	६४४०००
१९१५-१६	३७१८३६७००	१९१५-१६	४७६०००
१९१७-१८	३७२४५६०००	१९१७-१८	५०७०००

इसी प्रकार अन्य कई प्रकार की चीजें हमारे किसान बहुत अधिक मान में पैदा करते हैं। उन सबका ब्यौरा देने से ग्रन्थ बहुत बढ़ जायगा। इसी लिये हम इतनेही से संतोष मान लेते हैं।

सारा संसार जितना चाँवल पैदा करता है, उससे लगभग आधा चाँवल अकेला हिन्दुस्तान पैदा करता है। चांवल बहुत अधिक मान में विदेश जाता है। सन् १९१८-१९ में कोई २०१८००० टन अर्थात् ५६५०५००० मन चाँवलों की विदेशों को रफ़्तनी हुई। युद्ध के पहले इससे भी ज़्यादा रफ़्तनी हुई। इनका मूल्य कोई २२९६००००० रुपया आया था। इसी प्रकार गेहूँ की भी यहाँ से भारी रफ़्तनी होती है। महायुद्ध के पहले के पाँच वर्षों का अर्थात् सन् १९०९ से १९१४ तक का औसत निकालने से उस वक्त लगभग १,३०८,००० टन* गेहूँ प्रति वर्ष विदेश जाता था। इसके बाद सन् १९१५-१६ में ६५२२९०० टन, सन् १९१६-१७में७४८९०० टन, सन्१९१७-१८ में १४५४४०० टन और सन् १९१८-१९ में ४७६१०० टन गेहूँ विदेश गया। इसी प्रकार कच्चे जूट का हिसाब लीजिए। सन् १९१७-१८ में ३९८१०० टन या २२२९६०० गांठें कच्चे जूट की विदेश गई। महायुद्ध के पहले इससे लगभग ड्योढ़ा जूट बाहर जाता था। सन् १९१८-१९ में कच्चे जूट का मूल्य लगभग १३ करोड़ रुपया विदेशों से प्राप्त हुआ था। जूट का कुछ और माल भी विदेश जाता है। सन् १९१८-१९ में इसका मूल्य ५२ करोड़ रुपया प्राप्त हुआ था। अर्थात्

*एक पोंड = आध सेर, एक क्वार्टर = १४ सेर, एक टन = २७ मन। एक गांठ में ४०० पोंड अर्थात् ५ मन रुई होती है।

कच्चा जूट और जूट का बना हुआ तैयार माल दोनों मिला कर कोई ६५ करोड रुपयों का माल बाहर गया था।

सन् १९१८-१९ में १=३९५० टन या १,०३०,१०० कपास की गाठें विदेश गईं। इस साल पहले सालों की अपेक्षा कोई ५० प्रति सेकडा कम रफ्तनी हुई। इस साल में ३२ करोड रुपया कपास के मूल्य में विदेशों से प्राप्त हुए, जबकि सन् १९१७-१८ में ४३ करोड रुपया हुए थे। इसके सिवा विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ और कच्चा माल बहुत अधिक भाग में विदेश जाता है। हमारे यहाँ के अन्न से करोड़ों युरोप निवासी अपनी क्षुधा शांत करते हैं। और यहाँ के कच्चे माल से पक्का माल तैयार करके फिर उसी पक्के माल को हमारे ही हिन्दुस्तान में बेचकर केवल तैयार करने के पारिश्रमिक या नफे के रूप में करोड़ों रुपया वसूल कर लेते हैं और कच्चा माल पैदा करनेवाले हमारे किसान भाई भूखों मरते हैं।

हमारे किसान कितना माल पैदा करते हैं और उनके पैदा किए हुये माल में से कितना माल विदेशों को जाता है इसका थोडा सा दिग्दर्शन हमने ऊपर कराया है। हमने चॉवल, गेहूँ, जूट आदि कुछ ही चीजों की रफ्तनी का हिसाब दिया है। इसी प्रकार और भी अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ तथा कच्चे माल की बहुत अधिक मान में रफ्तनी होती है। इस भारी रफ्तनी में अनेक प्रकार के खाद्य द्रव्य और कच्चा माल बहुत अधिक परिमाण में इंगलैण्ड जाता है। हिन्दुस्तानी गेहूँ का सबसे बडा खरीददार ग्रेट ब्रिटेन है। जौ का भी यही हाल है। जितना जौ ग्रेट ब्रिटेन में जाता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं जाता। कच्चा जूट भी सबसे ज़्यादा इंगलैण्ड

को ही जाता है। ऊन तो क़रीब क़रीब सभी इंगलैएड को जाता है। सब विदेश मिलकर जितनी चाय खरीदते हैं उसका २ ३ हिस्सा अकेला ग्रेट ब्रिटेन खरीदता है। कच्चा चमड़ा भी सबसे ज़्यादा ग्रेट ब्रिटेन को जाता है। कहने का मतलब यह है कि हमारे किसानों के पैदा किये हुये माल से इंगलैएड का सब से ज़्यादा पेट भरता है और उसकी अतुलनीय सम्पत्ति का ख़ास मूल हमारा भारतवर्ष और उसके किसान हैं।

ऊपर के हिसाब से पाठकों को मालूम हुआ होगा कि हमारे किसान कितने अधिक मान में खाद्य द्रव्य और कच्चा माल पैदा करते हैं। हमारे किसानों के पैदा किये हुए माल से तेंतीस करोड़ हिन्दुस्तानी प्रजा की बड़ी कठिनता से आवश्यकता पूरी होती है और करोड़ों मन गल्ला बाहर चला जाता है जिससे इंगलैंड आदि देशों का पेट भरता है। इतना ही नहीं पर आज इंगलैंड जो पक्का माल तैयार करके मालामाल हो रहा है, वह सब प्रायः भारत के कच्चे माल से ही तैयार किया जाता है। जैसा हमने ऊपर कहा है कि इंगलैंड की अतुलनीय सम्पत्ति का मूल भारत है सो यह बात रत्ती रत्ती सच है, और डाक्टर संडरलैंगड तथा हेनरी काटन जैसे अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने इसे स्वीकार भी किया है :—

कई अर्थ शास्त्रज्ञों ने हिसाब लगाकर यह भली प्रकार सिद्ध कर दिया है कि अगर भारत का उत्पन्न किया हुआ अन्न भारत ही में काम में लाया जाय तो यहां सतयुग का पुनः आविर्भाव हो जाय, और लोग आराम से शान्ति के साथ अपना निर्वाह कर सकें। पेट के लिये आज यहां जो हाय हाय मच रही है, वह मिट जाय। भूख की जो विषम ज्वाला यहां बड़े ज़ोरों से सुलग रही है और जिसमें हमारे लाखों करोड़ों

भाइयों की आहुति हो रही है, वह शान्त हो जाय, और हमारे और पाश्चात्य राष्ट्रों के अन्नदाता किसानों की दुर्दशा दूर हो जाय। पर यह बात उसी शुभ दिन सम्भव हो सकती है, जब शासन की डोर भारतीयों के हाथ में आ जाय अर्थात् हमें स्वराज्य मिल जाय।

हमें अत्यन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जब से भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य का आरम्भ हुआ तभी से हमारे अन्नदाता इन किसानों की दुर्गति का सूत्रपात हुआ। ब्रिटिश शासन के पहले किसानों की दशा, कितनी अच्छी थी, इसका दिग्दर्शन गत अध्यायों में यथा स्थान किया गया है। हमने कई अंग्रेजों के हवाले देकर यह दिखलाया है कि ब्रिटिश शासन के पहले किसानों की दशा अच्छी थी और वे धन धान्य से सम्पन्न थे। इतना ही नहीं अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ होने के बाद भी कई जगह देशी राज्यों या नवाबों के राज्यों में जहां किसानों की दशा अच्छी थी, वहां अंग्रेजी शासन में इनकी दशा बिलकुल खराब हो गई थी। मि० मूष लिखते हैं —

"The assertion which is universally believed by natives that the cultivator is not so well off now-a days as at the time of the mutiny" अर्थात् देश के सभी मनुष्यों का विश्वास है कि गदर के समय किसानों की जैसी दशा थी वैसी अब नहीं है।" सर जॉन के (*Sir John Kaye*) महोदय भारत की अंग्रेजी शासन—नीति का दोष दिखलाते हुए लिखते हैं—

"The proprietors of vast tracts of country, as far as the eye could reach, have shrivelled into

tenants of mud huts and possessors of only a few cooking pots." अर्थात् जो लोग बड़े बड़े भूमि खंडों के अधिकारी थे, वे दीन हीन दशा में मिट्टी की झोपड़ी में कुछ बर्तनों को लिये हुए अपने दिन काट रहे हैं।" मि सी० एस्० ईलियट कहते हैं:—

"Half of our agricultural population never know from years beginning to years end what it is to have their hunger fully satisfied" अर्थात् हमारे (भारत के) आधे किसान साल के शुरू से लेकर साल के अंत तक यह नहीं जानते कि पेट भर खाना किसे कहते हैं। रायबरेली के डिप्टी कमिश्नर मि० आरविन ने भी लिखा था "इस प्रदेश के किसानों में से प्रायः सैकडे पीछे ७५ मनुष्यों के घरों में बिस्तर तथा कम्बल नहीं हैं। केवल एक दोहर के सहारे वे सारा शीतकाल व्यतीत करते हैं।"

आर सी. दत्तने भी 'भारतका आर्थिक इतिहास' नामक पुस्तक में लिखा है:—

"भारतवासी झोंपडियों में रहते हैं पर उनको मरम्मत करने की कभी नौबत नहीं आती। स्त्री के शरीर पर लज्जा ढाँकने भरको पर्याप्त चीथड़े भी नहीं होते। बेचारे नन्हे नन्हे बच्चे तो वस्त्र पहनना जानते ही नहीं। भारत के किसान वर्ष के ३६५ दिन मोटा झोटा अन्न खाकर और आधे पेट रहकर जीवन व्यतीत करते हैं।

लार्ड सिनहा का कथन है कि पंद्रह करोड़ भारतवासी भरपेट भोजन नहीं करने पाते। पं० दयाशंकर दुबे ने अंकों से सिद्ध करके बताया है कि सन् १९११-१२ से सन् १९१८ तक आधा पेट भोजन करने वालों की संख्या ५२·७ सैकड़ा

अर्थात् करीब सत्तरह करोड थी। सर शंकर नायर ने ज्वाइन्ट कमेटी के सामने कहा था कि पंद्रह करोड भारतवासी भर पेट भोजन नहीं पाते इस प्रकार अनेक युरोपियन और देशी सज्जनों ने हमारे किसानों की हृदयद्रावक दरिद्रता का महा भीषण चित्र खींचा है।

हाय,! सचमुच इनकी दशा देखकर प्रत्येक-सहृदय मनुष्य की आँखों में आँसू आये बिना नहीं रह सकते। गरमी की कडी धूप में दिनभर काम करने पर भी इन बेचारों को पेट भर रूखा सूखा अन्न तक नहीं मिलता। मैंने देखा है कि बहुत से किसान पन्द्रह पन्द्रह वर्ष की पुरानी सडी हुई और महा दुर्गंध युक्त ज्वार की रोटियों से पापी पेट की ज्वाला शान्त करते हैं। कई अभागे किसानों को यह ज्वार भी पूरी तरह से नसीब नहीं होती, शीत से बचने के लिये बेचारों को साबित कपडे नहीं मिलते, पहनने की धोती तथा कुरते में दस दस बीस बीस पेवन्द लगे हुए रहते हैं। इनके रहने की झोंपडियां इतनी गदी, तग और कमजोर होती हैं कि उनमें विलायत के मनुष्य तो क्या पर पशु भी निवास नहीं कर सकते। अगर इनकी असली दशा देखनी हो तो देहातों में जाकर इनके घरों में घुसकर देखना चाहिये। बडा ही करुणा-जनक और हृदय-द्रावक चित्र देख पडेगा। भारत के शासन के लिये सचमुच यह बडी शर्म की बात है कि यहा के निवासियों के एक अत्यन्त उपयोगी अग किसानों की ऐसी हीन और शोचनीय अवस्था हो रही है। इस प्रकार की अत्यन्त हीन और दीन दशा में रहते हुए भी बेचारे सिर से पैर तक कर्ज से लदे हुए रहते हैं।

किसानों की दशा क्यों बिगड़ी।

यह तो इस ग्रन्थ के पूर्व अध्यायों के पढने से मालूम हुआ होगा कि अंग्रेज़ी शासन के पहले यहां के किसान अच्छे समृद्धिशाली थे; इस बात को कई अंग्रेज़ लेखकों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। पर जब से ईस्ट इन्डिया कम्पनी के शासन का आरम्भ हुआ तबसे इनकी अधोगति का सूत्र पात हुआ। ज़मीन का लगान बहुत बढ़ा दिया गया और किसानों पर तरह तरह के दूसरे ज़ुलम हुए। सर रमेशचन्द्र दत्त ने दिखलाया है कि "हिन्दुओं और मुग़लों के शासन में जिस हिसाब से ज़मीन का लगान लिया जाता था, उससे कहीं ज्यादा प्रजा की दरिद्रता बढ़जाने पर भी, अब वसूल किया जाता है। यही नहीं किन्तु बंगाल को छोड़कर अन्य प्रदेशों में ज़मीन का लगान क्रमशः बढ़ता ही चला जा रहा है। अधिक लगान देनेही के कारण लोगों की ऐसी दीन हीन दशा हो रही है। किसान लोग इस भय से खेती नहीं करते कि न जाने कब ज़मीन का लगान बढा दिया जाय।" आगे चलकर फिर सर रमेशचन्द्र दत्त ने बतलाया है कि सन् १७६२ ईस्वी से १८२२ तक सरकार ने बंगाल के जमींदारों की आमदनी पर सैंकड़े पीछे ९० और उत्तर भारतवर्ष में सैंकड़े ८०) कर लिया था। मुग़ल शासन के समय भी इसी हिसाब से कर लेने की रीति थी। परन्तु वे लोग जितना लगान नियत करते थे उतना वसूल नहीं करते थे। इसके सिवा प्रजा की शिल्प तथा वाणिज्य सम्बन्धी उन्नति करने की ओर उनकी विशेष दृष्टि रहती थी। महाराष्ट्र देश के राजा लोग भी राजकर

वसूल करने में कठोरता नहीं करते थे, किन्तु अंग्रेज जितना कर चाहते थे, उतना कड़ाई के साथ वसूल करते थे।" यह तो हुई स्वर्गीय सर रमेशचन्द्र दत्त की उक्ति। अब हम इस सम्बन्ध में अंग्रेजों ही के प्रमाण देते हैं। बंगाल में बड़ी निर्दयता और क्रूरता के साथ लगान वसूल किया जाता था। ९ मई सन् १७७० को ईस्ट इण्डिया कंपनी के डायरेक्टरों ने जो पत्र लिखा था, उसमें नीचे लिखे आशय के वचन भी थे—

" भयंकर अकाल का दृश्य उपस्थित हो रहा है। इससे जो मृत्युएँ हो रही हैं और जो भिखमंगी बढ़ रही है वह अवर्णनीय है। पुर्निया जैसे उपजाऊ प्रान्त के कोई १/३ लोग भूख के मारे तड़प तड़प कर मर गये। अन्य प्रान्तों में भी ऐसी ही भीषण स्थिति उपस्थित हो रही है।" इसी वर्ष ११ सितंबर को इन्हीं डायरेक्टरों ने फिर लिखा था "इन अभागे भूखों मरनेवाले लोगों के दुःखों का जितना वर्णन किया जावे उतना ही थोड़ा है" इसके उपरान्त १२ फरवरी को उन्होंने लिखा था —

"Not with standing the great severity of the late famine and the great reduction of people thereby, some increase has been made in the settlements both of the Bengal and Bihar provinces for the present year" अर्थात् पिछले अकाल का बहुत तेजी होते हुए भी और इस से लोगों की बहुत कमी हो जाने पर भी बंगाल और बिहार प्रान्तों के बंदोबस्त में जमीन का लगान वर्तमान वर्ष के लिये बढ़ा दिया गया है। १० जनवरी सन् १७७२ को इन्होंने लिखा था—

"The collections in each department of revenue

are as successfully carried on for the present year as we could have wished." अर्थात् रेविन्यू के हर एक विभाग में वसूली उतनी ही सफलता के साथ की जा रही है, जैसी कि हमारी इच्छा थी।

जब देश में चारों ओर अकाल के कारण हा हा कार मच रहा था, जब देश में चारों ओर मृत्यु का वीभत्स चित्र उपस्थित हो रहा था, जब मानवी दुःख अपनी अंतिम सीमा तक पहुंचा हुआ था, ऐसे समय में भी सख़्ती के साथ किसानों से लगान वसूल किया गया था। सरकारी तौर से इस बात का अंदाजा लगाया गया है कि सन् १७७० के अकाल में बंगाल की एक तिहाई जनता भूख के मारे प्राण त्याग करने को बाध्य हुई थी, अर्थात् उस समय कोई एक करोड़ आदमी भूख के मारे मर गये! इतने पर भी लगान वसूल करने में कसर न की गई। उलटे इस साल ज़्यादा लगान वसूल किया गया। उस समय के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज़ ने लिखा था:—

"Not with standing the loss of at least one third of the inhabitants of the province, and the consequent decrease of the cultivation, the net collection of the year 1771 exceeded even those of 1768." अर्थात् इस प्रान्त में एक तिहाई जनता के नष्ट हो जाने पर भी तथा खेती में बहुत कमी हो जाने पर भी सन् १७७१ में लगान की रकम सन् १७६८ की रकम से भी ज़्यादा बढ़ गई।

इसके बाद जब मुग़ल बादशाह शाह आलम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल, बिहार और ओड़िसा की दिवानी या रेविन्यू का शासन सौंपा तब लगान वसूल करने के लिये द्वैध पद्धति (*dual system*) काम में लाई जाने लगी अर्थात्

उस वक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा नियुक्त निरीक्षकों (*Supervisors*) की देख रेख में नवाव के नौकर भूमिकर वसूल करते थे जिससे प्रजापर वडे जुल्म होते थे। इससे जमींदार और किसानों को वडा नुकसान पहुचता था। इस समय से लगान निरन्तर वढता ही चला गया। इससे सरकार की आमदनी में दिन पर दिन वृद्धि होने लगी। मि० शोर ने (जो पीछे *Lord Teignmouth* के नाम से मशहूर हो गये थे) १८ जून सन् १७८९ में जो मतभेद पत्र लिखा था उस में आपने दिखलाया था कि सन् १५८२ में टोडरमल ने जमीन का जो वन्दोवस्त (*Settlement*) किया था। उस में केवल वगाल में लगान के १०५०००० पाउंड वसूल होते थे। सुलतान शुजा के जमाने में जो वन्दोवस्त हुआ था उसमें जमीन का लगान १३१२००० पौंड कूतागया था। जाफर खाँ के जमाने में जो वन्दोवस्त हुआ था उस में यह रकम वढकर १४२६००० पौंड हो गई। शुजाखाँ के वन्दावस्त में यह रकम १७२८ तक पहुच गई। व्रिटिश शासन के शुरु होने के पहले के पॉच वर्षों का हिसाब देखिये।

सन्	जमीन वसूली
१७६२–६३	६४६०००
१७६३–६४	७६२०००
१७६४–६५	८१८०००
१७६५–६६	१४७००००

साथही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उस अंतिम वर्ष में अर्थात् सन् १७६५–६६ में मुगल वादशाह के द्वारा दीवानी अधिकार व्रिटिश को दे दिये गये थे। इस साल महम्मदरजाखाँ ने नवाव और कपनी के दुहरे हुक्म (dual authority)

से लगान वसूल किया था। इसके बाद सन् १७९० ई० में अगरेजों ने जो लगान वसूल किया था वह २६८०००० पौंड था अर्थात् जाफरखाँ और शुजाखाँ के वसूल किये हुए लगान से यह रकम लगभग दूनी थी। और महाराजा नंद कुमार ने सन् १७६४ में जो लगान वसूल किया था, उससे यह तिगुनी थी। इतना ही नहीं, महम्मद रजाखाँ ने अंगरेजों की देख रेख में जो लगान वसूल किया था उससे भी यह रकम लगभग दूनी थी। एक लेखक ने लिखा है –

' It was Bengal which had suffered terribly from the rapacity of the early British administrators and if she has prospered under the permanent settlment, she has well earned that prosperity by her early losses. " अर्थात् वह बंगाल प्रान्त था जिसने पहले के ब्रिटिश शासकों के जुल्म से बहुत दुःख सहा और यदि उसने दवामी या स्थायी बंदोबस्त से उन्नति की है तो यह उसको पहले की हानि का परिणाम है।

यह तो हुई बंगाल की बात। अब मद्रास प्रान्त की ओर आइये। ब्रिटिश शासन के पहले मद्रास प्रान्त की स्थिति कैसी था, इसका सबूत उस गवाही से मिलता है जो १८८२ में मि० जार्ज स्मिथ ने पार्लियामेण्टरी कमेटी के सामने दी थी। इस सम्बन्ध में उक्त कमेटी के सामने इस आशय के प्रश्नोत्तर हुए थे।

प्रश्न – आप हिन्दुस्तान में कितने दिन तक और किस हैसियत से रहे ?

उत्तर—मैं सन् १७६४ में हिन्दुस्तान पहुँचा और सन् १७६७ से सन् १७७६ के अक्टूबर मास तक वहाँ रहा।

प्रश्न—जब आप पहले पहल मद्रास पहुचे तब वहाँ की व्यापारिक स्थिति कैसी थी ?

उत्तर—उस समय मद्रास की अवस्था बहुत ही समृद्धि शाली थी हिन्दुस्तान में वह व्यापार का केन्द्र था।

प्रश्न—जब आपने मद्रास छोड़ा तब वहाँ की व्यापारिक अवस्था क्या थी ?

उत्तर—उस समय वहाँ बहुत ही कम या नाम मात्र का व्यापार रह गया था।

प्रश्न—जब आपने इस प्रान्त के कर्नाटक जिले को पहले पहल देखा, तब वहाँ के व्यापार और खेती की क्या स्थिति थी ?

उत्तर—उस वक्त कर्नाटक की खेती की दशा बहुत अच्छी थी और वह समृद्धि की अवस्था में था। वहाँ का व्यापार भी बहुत बढ़ी चढ़ी हालत में था।

प्रश्न—जब आपने मद्रास प्रान्त छोड़ा तब वहाँ की खेती जन संख्या और देशी व्यापार की क्या हालत थी ?-

उत्तर—खेती की दशा बहुत ही गिर गई थी और व्यापार को भी बड़ा धक्का पहुँचा था।

इन प्रश्नों से पाठक खुद अदाज़ा लगा सकते हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में मद्रास प्रान्त के व्यापार और खेती की किस प्रकार अधोगति हुई थी।

मद्रास प्रान्त के तञ्जौर परगने की हालत के विषय में सन् १८८२ में '*Committee of Secrecy*' के सामने मि० प्रेट्री ने जो गवाही दी थी, उसका सारांश यह है —

" तंजौर की वर्तमान स्थिति पर कुछ कहने के पहले मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि उसकी कुछ वर्षों की पहले की

स्थिति पर भी कमेटी के सामने कुछ कह डालूँ। ज़्यादा अरसा नहीं हुआ कि तंजौर परगना अत्यन्त समृद्धिशाली और उन्नत अवस्था में था। वहां पर खेती की सबसे अच्छी स्थिति थी। जब मैंने पहले पहल सन् १७६८ में उसे देखा था, तब उसकी हालत अब से बिलकुल जुदा थी। तंजौर पहले बाहरी और अंतरंग व्यापार का केन्द्र स्थान था। वहां बंबई और सूरत से रूई आती थी। बंगाल से कच्चा तथा पक्का रेशम आता था। सुमात्रा मलक्का आदि टापुओं से शकर आदि पदार्थों की आमदनी होती थी। पेगू से सोना, घोड़े हाथी, और शहतीर आते थे। चीन से भी उसका व्यापारिक सम्बन्ध था। उस ज़िले से भी मलमलें छींटें, रूमाल कमख़ाब आदि कई प्रकार का बढ़िया माल बाहर जाता था। वहां की भूमि बड़ी उपजाऊ थी। संसार के बहुत कम देशों को इतनी नैसर्गिक सुविधाएँ होंगी, जितनी तंजौर को है। पानी की यहां पर बहुत विपुलता है। उस परगने का स्वरूप बड़ाही सुन्दर है। उसमें बहुत विविधता है। अपने आकार प्रकार से वह इंग्लैण्ड सा जान पड़ता है। पर दुःख है कि उसकी अवनति बड़ी शीघ्रता से हो रही है, डर हो रहा है कि कहीं उसकी विपुल समृद्धि के चिन्ह तक न मिट जायँ।

सन् १७७१ तक जैसा कि मुझे मालूम हुआ है यहाँ के कारीगर तरक्क़ी की हालत में थे, देश धन धान्य पूर्ण था। लोक संख्या विस्तृत थी। खेती बड़ी अच्छी हालत में थी। वहां के निवासी धनवान् और परिश्रमी थे। पर उस साल के बाद से लेकर यहाँ के राजा के फिर गद्दीनशीन होने तक वह कई बार समरभूमि बना। यहां राज्यक्रान्तियां हुईं। व्यापार कारीगरी और खेती को [illegible] और तब से [illegible]

अब एक बार बम्बई प्रान्त की सरकारी मालगुजारी की ओर दृष्टि डालनी चाहिये। महाराष्ट्र नरेशों के शासन-काल में इस देश की प्रजा से एक वर्ष में ८० लाख रुपये लिये जाते थे किन्तु जिस वर्ष अंग्रेजों ने इस प्रदेश में अधिकार किया उसके दूसरे ही वर्ष १ करोड़ १५ लाख रुपये वसूल किये गये। इसके कारण प्रजा पर कैसे अत्याचार होने लगे थे, इसका कुछ पता सरकारी रिपोर्ट से लग सकता है जो इस प्रकार है —

"Every effort was made lawful and unlawful to get the utmost out of the wretched peasantry, who were subjected to tortures in some instances cruel and revolting beyond description if they could not or would not yield what was demanded Numbers abandoned their homes and fled into neighbouring native states, large tracts of land were thrown out of cultivation and in some districts no more than one third of the cultured area remained in occupation "

अर्थात् अभागे किसानों के पास से यथा सम्भव धन वसूल करने के लिये न्याययुक्त और अन्याययुक्त सभी प्रकार के उपाय काम में लाये गये थे। जितना धन इन किसानों से माँगा जाता था, यदि वे उसे देना स्वीकार नहीं करते थे या नहीं देते थे तो उन पर कभी कभी अवर्णनीय अत्याचार किये जाते थे। इस प्रकार के अत्याचारों से पीड़ित होकर सैकड़ों किसान अपना अपना घर छोड़कर समीप के देशी राज्यों में जाकर बस गये। सुविस्तृत भूमि बिना खेती के पड़ी रह गई और किसी किसी जिले में तो खेती होने योग्य भूमि के एक तिहाई भाग से अधिक भूमि में खेती ही नहीं हुई।

उडीसा में भी प्रजा का धन लूटने के लिये थोड़े प्रयत्न नहीं हुए हैं। सरकारी कागज पत्रों में ही प्रकाशित हुआ है कि सन् १८२२ ईस्वी में उडीसा के किसानों से सरकारी कर्मचारियों ने सैंकडा पीछे ८३) रुपये के हिसाब से लगान वसूल करने की व्यवस्था की थी, किन्तु इस प्रकार धन की खींच अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। सन् १८३३ ईस्वी के पीछे वे लोग अपनी कमाई से सैंकडा पीछे ७१) रुपये लगान में देने लगे। इस समय घटकर उसका परिमाण सैकडा पीछे ४५) रुपये रह गया है किन्तु बगाल में दवामी बन्दोबस्त होने के कारण प्रजा को सैकडा पीछे ११) रुपये ही लगान में देने पड़ते हैं। उडीसा के समान अवध प्रान्तों में भी १८२२ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नौकरों ने ज़मींदारों से सैकड़ा पीछे ८३) रुपये लगान लेने का कानून पास किया था—इसके परिणाम स्वरूप उस प्रान्त में चारों ओर हा हाकार मचने लग गया।

इस प्रकार राजधर्म का अपमान और प्रजा पर अत्याचार करके जो धन इकट्ठा हुआ करता था उसका बहुत थोड़ा भाग इन देश में खर्च किया जाता था और अधिकांश विलायत भेज दिया जाता था। ईस्ट इण्डिया कंपनी के साझीदार कर्मचारी और विलायती पार्लमेण्ट महासभा के मेम्बर लोग इस प्रकार भारत से धन लूटकर अपनी दरिद्रता दूर करते थे। किसानों से जो धन मिलता उसे कम्पनी ले, लेती और इस देश के धनी सौदागर तथा राजा महाराजाओं को दबाकर उनसे ज़बरदस्ती और अन्याय से जो धन लिया जाता उससे कम्पनी के नौकर मालामाल होते थे। खाली बंगाल देश में ही १७५७ ईस्वी से १७६५ ईस्वी तक में कम से कम

४६४०४६६०) रुपये घूस के लिये गये थे। जिसमें पार्लियामेण्ट के मेंबर कड़ी आलोचना न करें इसलिये कंपनी और उसके कर्मचारी पार्लियामेण्ट के मेंबरों को भी घूस देकर वश में कर लेते थे।

कई बार यह घूस का धन इकट्ठा करने के लिये ही प्रजा का धन लूटना आवश्यक समझा गया था। उस समय के इंग्लैंड नरेश भी इस प्रकार घूस लेने से बचे नहीं थे। कहते हैं कि एकबार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कामों की जाँच करने का प्रस्ताव उठने पर स्वयं इंग्लैंड नरेश ने सब गड़बड़ी शान्त कर दी थी। मि० जी० क्लार्क (*Clarke*) अपने 'British India and Englands Responsibilities' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं —

"Nor was the Company in good repute at home An enquiry was set at foot, and it was found that the company had devoted in one year L 1,000,000 to bribery But the House of Commons stifled enquiry The receipients of bribes were amongst the highest classes and the king himself was said to have accepted a large sum"

अर्थात् कंपनी की उसके खास निवास स्थान इंग्लैंड में भी बड़ी बदनामी थी। एक जाँच शुरू की गई थी, जिसमें यह पाया गया था कि कम्पनी ने केवल एक साल में १,०००,००० पौंड रिश्वत के दिये थे। रिश्वत लेनेवाले सर्वोपरि श्रेणी के मनुष्यों में से थे। कहते हैं कि उस समय स्वयं राजा ने भी बहुत बड़ी रकम ली

थी। नही कह सकते सुसभ्य और चरित्रवान् अंग्रेज जाति के इतिहास में इन घटनाओं का महत्व कहाँ तक है !

महमूद गजनवी, नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली और मध्य भारत के पिंडारी लोग भारतवर्ष के धनवानों को लूटकर कितने रुपये ले गये इसका उल्लेख और हिसाब बालकों के पढने के इतिहासों में और समय समय पर अन्य प्रकार से प्रकाशित हुआ करता हे किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में भारतवर्ष के गरीब किसानों का कितना रुपया लूटा गया, इसका हिसाब लगाना सहज नहीं है।

मिस्टर डिग्बी का कथन है—" अनुमान होता है कि प्लासी की लडाई के बाद प्राय पचास वर्षों में भारतवर्ष से साढे सात अरब से पन्द्रह अरब रुपये तक इगलैण्ड में भेजे गये हैं।" मिस्टर ब्रुक्स एडम्स "*Law of civilisation and decay*" नामक ग्रन्थ के २६३ वें पृष्ठ में लिखते हैं—

"Possibly since the world began no investment has ever been yielded the profit reaped from the Indian plunder" जब से दुनियाँ का आरम्भ हुआ है, तब से शायद ही पूंजी लगाने पर इतना लाभ नहीं हुआ है, जितना कि हिन्दुस्तान की लूट से हुआ है।

अब तक केवल इसी बात का वर्णन किया गया है कि अँग्रेजी शासन के आरम्भ काल से ही इस देश के किसानों का धन खींचने का कार्य किस प्रकार किया गया था। सन् १८७६ ई० में बम्बई प्रान्त में अस्सी लाख रुपये लगान के वसूल होते थे। सन् १८८३ ई० में अँग्रेजों ने उसका परिमाण बढाकर डेढ करोड रुपये

कर दिया। इसके उपरान्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मनमाना शासन दूर करके दयामयी महारानी विक्टोरिया ने भारत का शासन भार अपने हाथ में ले लिया। उनके शासन में शासन विभाग की और अनेक बातों में तो सुधार हुआ किन्तु खेती करके जीनेवाली प्रजा के दुर्दिन तिस पर भी दूर नहीं हुए। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में बम्बई प्रान्त की प्रजा को डेढ़ करोड रुपये लगान में देने पडते थे। किन्तु इतने पर भी सरकारी कर्मचारियों का धन लोभ नहीं मिटा ? अस्सी लाख के बदले दो करोड तीन लाख रुपये वसूल करने की व्यवस्था करके भी उन लोगों ने राज्य की आमदनी बराबर बढाना जारी रखा। अतएव अधिक भार सहन न कर सकने के कारण सन् १८०० ई० में किसान लोग बागी हो गये अनेक स्थान में लडाई झगडे और शांति भंग होने के कारण अफसर चिन्तित हुए। तब इस विद्रोह की जांच करने के लिये एक कमीशन बैठा। उस समय यह स्थिर हुआ कि खासकर बार बार जमीन का बन्दोबस्त करके बेहद लगान बढाते रहने से ही (Extravagantly heavy assesment) यह विद्रोह खडा हुआ है।

इतनी गडबडी होते हुए भी राजकर्मचारियों का धन की खींच कम नहीं हुई है। तीस साले बंदोबस्त में जिन जमीनों का लगान निश्चित हो चुका था, उनमें से बहुतेरी भूमि की मियाद पूरी होने पर फिरसे बंदोबस्त करने की आज्ञा हुई है। गत सन् १८८८ ईस्वी के ३१ मार्च तक २७०८८ ग्रामों में १३३६६ ग्रामों का नया बन्दोबस्त हो गया था। इन गावों से पहिले १४४००००) रुपये लगान में वसूल होते थे। अब नये बन्दोबस्त में १ करोड ८८ लाख रुपये वसूल करने की

व्यवस्था हुई है। शेष गाँवों का नया बन्दोबस्त अकाल पड़ने के कारण कुछ समय के लिये रोक दिया गया था, तो भी उन गाँवों का नया बन्दोबस्त करके १०३५३०,) रुपये लगान के बदले १३३५६०) रुपये कर दिया गया। सारांश यह कि इस नये बन्दोबस्त में औसत ३०) रुपये सैंकड़ा लगान बढ़ा दिया गया है। इधर डायरेक्टर ऑफ लैण्ड रेकार्डस् एण्ड अग्रिकलचर अर्थात् भूमि और कृषि-विभाग के अध्यक्ष महाशय की १८८७ साल की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उसमें बंबई प्रान्त के विषय में लिखा है:—

"Seventy five percent of the cultivated area is under food grains. The reporting authorities agree that there is a large number of cultivators who do not get a full years supply from their land." अर्थात् खेती होने योग्य भूमि के तीन चौथाई भाग में-रुपये में-बारह आने अनाजों की खेती होती है; किन्तु सभी राजपुरुष एक मत हो कर कहते हैं कि अधिकांश किसान खेती करके साल भर के खर्च के लिये भी अनाज संग्रह नहीं कर सकते।

*डायरेक्टर साहब का मन्तव्य प्रकाशित होने पर भी ज़मीन का लगान बढ़ाया गया है। यदि अब भी अकाल के समय मृत्यु संख्या न बढ़े तो और क्या हो? इस अवसर पर इस देश की खेती के साधनों की दशा का भी वर्णन करना उचित है। सन् १८९६ई० में सम्पूर्ण बंबई प्रान्त में ८० लाख ८० हज़ार बैल भैंस आदि खेती के लिये उपयोगी पशुओं की संख्या थी, किन्तु सन् १९०१ ईस्वी में प्रकाशित हुआ कि उनकी संख्या केवल ५२ लाख ७७ हज़ार रह गई है अर्थात् छः वर्ष में कृषी के लिये उपयोगी पशुओं की एक तृतीयाँश से

भी अधिक घट गयी है। खेती करने के योग्य अथवा खेती होने वाली भूमि का विस्तार देखते हुए पशुओं की यह संख्या बहुत ही कम है। बम्बई प्रान्त में एक हल के बैलों अथवा भैंसों को प्रति वर्ष ६० बीघे भूमि कमानी पड़ती है। किसानों की इससे बढ़कर और शोचनीय दशा का प्रमाण क्या होगा? मदरास के किसानों की दशा का उल्लेख करते हुए प्रसिद्ध इंगलिशमैन पत्र के संपादक ने १७ फरवरी सन १८८० ईस्वीके अंक में लिखा था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में मदरास प्रांतकी भूमि से लगान वसूल किया जाता था। महारानी के शासन-काल में उससे दस लाख रुपये अधिक याने एक तिहाई हिस्सा अधिक वसूल होता है। किसानों की सुख सम्पन्नता बढ़ाने के लिये कोई व्यवस्था नहीं होती है, उलटे लगान की वृद्धि के साथ मदरास प्रान्त में अकाल का प्रकोप भी बढ़ रहा है।

बबई की लेजिस्लेटिव कौन्सिल के सिवीलियन सभासद मिस्टर जी. रोजस ने सन् १८९३ ई० में भारतवर्ष के अण्डर सेक्रेटरी महाशय को मद्रास के लगान वसूल करने की कड़ाइयों और अत्याचारों का वर्णन करते हुए दिखलाया था कि सन् १८७९-८० ईस्वी से लेकर १८८९-९० ई० तक ११ वर्ष के बीच में लगान वसूल करने के लिये मदरास के राजकर्मचारियों ने ८४०७१३ मनुष्यों की १९६३३६४ बीघे जमीन बेदखल करा के नीलाम करा ली है। किन्तु इतने पर भी उनका पेट नहीं भरा। किसान लोग अपनी जमीन से बेदखल हो कर छुटकारा नहीं पा सके। सरकारी लगान अदा करने के लिये उनको अपने घर, द्वार, बिछौने कपड़े लत्ते आदि तक बेचकर ८९३५०८१) रुपये सरकार को देने पड़े हैं!

ऊपर लिखी हुई प्रायः १६६३३६४ बीघे ज़मीन में से पौने बारह लाख बीघे ज़मीन खरीददारों के अभाव में सरकार को खरीदनी पड़ी है। यदि लगान का परिमाण अधिक न होता तो अवश्य ही उसके मोल लेने के लिये खरीददारों का टोटा न रहता। ज़मीन के लगान की अधिकता के विषय में इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है?

मध्यप्रदेश की स्थिति के विषय में सन् १६०४ में आनरेबुल मिस्टर विपिन कृष्ण वसु महाशय ने बड़े लाट की लेजिस्लेटिव कौंसिल-व्यवस्थापक सभा—में कहा था कि इस प्रदेश के किसी किसी ज़िले में गत दस वर्षों के बीच में, सैंकड़े पीछे १०२) तथा १०५) के हिसाब से प्रजा का लगान चढ़ गया है। इन दस वर्षों में प्रजा अकाल आदि से बहुत ही तंग रही है। तो भी अफ़सर लगान बढ़ाने से बाज नहीं आये। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि सरकार की तरफ़ से इस विषय का अबतक कोई ठीक प्रतिवाद नहीं किया गया है। मलाबार के भी कई परगनों में पिछले बन्दोबस्त के समय सैंकड़े पीछे ८५ से १०५ रुपये तक लगान बढ़ गया है। अकेले तंजौर ज़िले में ही गत दस वर्षों में सरकारी आमदनी डेढ़ करोड़ रुपये बढ़ गई है।

कर्नाटक की प्रजा के लगान की दरके विषय में भूमि और कृषि-विभाग के डायरेक्टर महाशय ने कहा था:—

"Despite its liability to famine it pays a higher land revenue than the Deccan or Concan." अर्थात् इस प्रदेश में दुर्भिक्ष आदिकी अधिक संभावना रहने पर भी यहां के किसानों को दक्षिण विभाग के किसानों की अपेक्षा अधिक लगान देना पड़ता है।

केवल दक्षिण और मध्य प्रदेश में ही नहीं, एक बंगाल को छोड़कर सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत के सारे प्रदेशों में बीस अथवा तीस वर्षों में नया बन्दोवस्त होने के समय किसानों का लगान बढ़ा दिया जाता है और इस प्रकार सरकारी आमदनी बढ़ाई जाती है।

१६ वीं सदी के आरम्भ में अनेक बुद्धिमान् शासन कर्ताओं ने बंगाल के समान संपूर्ण भारतवर्ष में दवामी बन्दोवस्त करा देने का प्रयत्न किया था। सन् १८७७ ई० में मद्रास में सर टामस मनरो ने प्रजा के साथ जो रैयत वारी बंदोवस्त किया वह बंगाल के दवामी बन्दोवस्त के समान ही था। विलायत में जाँच करने के लिये जो कमेटी बैठी थी उसमें गवाही देते समय आपने साफ साफ यह स्वीकार किया था कि बंबई प्रदेश में भी पहिले चिरस्थाई बन्दो वस्त प्रचलित था। सन् १८०३ ईस्वी में जब अङ्गरेजों ने प्रयाग और अवध का सूबा अपने अधिकार में लिया तब वहाँ लगान के विषय में चिरस्थाई बन्दोवस्त करने की करार की बात सुनी थी, किन्तु पीछे के राज कर्मचारियों विशेष कर रेवेन्यू विभाग के कर्मचारियों ने धन के लालच में अन्धे होकर पिछले करार का उल्लघन कर डाला और सभी विभागों में बीस अथवा तीस वर्ष के अंतर से बन्दोवस्त करके लगान बढ़ाने की व्यवस्था प्रचलित करदी। नहीं जानते, सरकार किस अवस्था में प्रजा पर लगान का कितना बोझा बढ़ावेगी। सरकार से इस विषय में नियम स्थिर कर लेने के लिये कई बार प्रार्थना भी की गई थी। इसके अनुसार प्रजाप्रिय लार्ड रिपन महोदय ने कुछ नियम बनाये भी थे; किन्तु उनके भारतवर्ष से विदा होते ही राज कर्मचारियों ने पहले के समान

यथेच्छाचार और धींगा धींगी का रास्ता खुला रखा। इस विषय के नियम बनाने में राज कर्मचारियों ने अब तक भी देखने में उदासीनता प्रकट नहीं की है कि जमींदार लोग प्रजा से अधिक से अधिक कितना लगान ले सकेंगे और कैसी दशा में कितना लगान बढ़ा सकेंगे आदि जो हो परन्तु अब भी सरकार अपना लगान बढ़ाने के विषय में स्वयं किसी प्रकार के नियमों में बंधकर रहना नहीं चाहती। यही नहीं किन्तु यदि रेविन्यू विभाग के कर्मचारी अन्याय पूर्वक लगान बढ़ादें तो उनके विरुद्ध अपील करने पर कुछ सुनाई ही नहीं होती। यदि प्रजा अधिक गड़बड़ मचावे तो उन्हीं कर्मचारियों को फिर से विचार करने के लिये कहा जाता है जिन्होंने लगान बढ़ाया है। तब उस जाँच का ध्यान रखकर किसी किसी का लगान नाम मात्र को कम कर दिया जाता है। कहना नहीं होगा कि ऐसे प्रसंगों में प्रजा के साथ प्रायः सुविचार नहीं किया जाता। प्रजा की इस कठिनाई को दूर करने के लिये श्रीमान् बड़ौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने अपने राज्य में नियम किया है कि बन्दोबस्त विभाग के कर्मचारी यदि किसी पर अनुचित रूप से लगान बढ़ादें तो खुल्लमखुल्ला अदालत में स्वतन्त्र प्रकृति के विचारकों के पास उनके विरुद्ध अपील हो सकेगी। इसमें सन्देह नहीं कि यदि अंग्रेजी गवर्नमेन्ट भी ऐसा नियम करदे तो गरीब किसानों के अनेक कष्ट दूर हो जायँ, परन्तु न जाने क्यों सुसभ्य ब्रिटिश गवर्नमेन्ट प्रजा की इस सुविधा की ओर ध्यान नहीं देती। इसीलिये जो कर्मचारी अन्याय करके लगान बढ़ाते हैं उन्हीं से अभागी प्रजा को सुविचार की प्रार्थना करनी पड़ती है।

सन् १९०५ के भारतीय बजट पर बहस करते हुए बड़े लाट महोदय की व्यवस्थापक सभा के सभासद माननीय मिस्टर गोपाल कृष्ण गोखले महोदय ने किसानों की दुर्दशा की ओर सर्कार का ध्यान आकर्षित किया था। उन्हों ने कहा था कि यूरोप की अपेक्षा भारतवर्ष के किसानों से जमीन का लगान अधिक परिमाण में लिया जाता है। युरोप के देशों के किसान जिस खेत में १००) की फसल उत्पन्न करते हैं उसके लिये कितना कर देते हैं, यह बात नीचे के हिसाब से मालूम पड़ेगी —

देश का नाम	लगान फी सैकड़ा	दर
इग्लैण्ड	„	८।)
फ्रान्स	„	४॥।)
जर्मनी	„	३)
ऑस्ट्रिया	„	४॥।=)
इटाली	„	७)
बेलजियम	„	२॥।)
हॉलैंड	„	२॥।)

यहां यह भी कह देना चाहिये कि जलकर, पूर्ति कर चौकीदारी टैक्स और स्टॉप कर आदि भी इसीमें सम्मिलित है। फ्रान्स में सड़क आदि सम्बन्धी टैक्स भी इसी में शामिल हैं। भारतवर्ष में ये सम्पूर्ण स्थानिक कर जमीन के लगान में शामिल नहीं किये जाते। ये सम्पूर्ण कर स्वतंत्र रीति से देते रहने पर भी इस देश के किसानों को बहुत अधिक लगान देना पड़ता है। यदि सर रमेशचन्द्र दत्त महोदय के हिसाब की बात छोड़कर सरकारी हिसाब पर ही विश्वास करें तो भी मालूम होगा कि यूरोप के देशों के किसानों को

सब तरह के टेक्स मिलाकर सकड़ा पीछे ६) रुपये से अधिक सरकार को नहीं देना पड़ता, परंतु भारत के किसानों को दरिद्रता के कीचड़ में फँसे रहने पर भी केवल ज़मीन का लगान ही सैंकड़ा पीछे १५) रुपये और कहीं कहीं २०) रुपये तक देना पड़ता है। इस देश की ज़मीन की उपजाऊ शक्ति दिनों दिन घटती जा रही है। किसानों के पशु आदि खेती के साधन क्रमशः शोचनीय दशा को प्राप्त हो रहे हैं। अति वृष्टि अनावृष्टि तथा पत्थर-पाले आदि के उपद्रवों ने भी उनका नाकों दम आगया है। उनकी दुर्दशा का ठिकाना नहीं है। तिस पर ऋण की बात का तो पूछना ही क्या है? भारत के किसानों का प्रायः दो तिहाई भाग कर्ज के भयानक दलदल में फँसा है। इनके आधे भाग के किसानों के ऋणमुक्त होने की कुछ भी आशा नहीं है तो भी सरकार उनसे लगान की बहुत बड़ी रकम और अन्य कर लेने में संकोच नहीं करती। यही नहीं किन्तु मुद्रा शासन प्रणाली के कारण चाँदी का भाव घट गया है जिससे उनके संचित चांदी के गहने आदि की कीमत भी घट गई है। इस प्रकार सब ओर से कर्मचारियों ने उन्हें टोटे में डालकर बिना पंख का पखेरू बना रखा है। और उन्हें अभी और भी निर्बल करते ही जाते हैं।

इसके बाद सेटलमेण्ट विभाग का जुल्म है। बारबार ज़मीन की पैमाइश करके इस विभाग के कर्मचारी क्रमशः ज़मीन का लगान बढ़ाते जाते हैं। गत दस वर्षों में इन लोगों के प्रयत्न से बंबई, युक्तप्रान्त, मदरास, अवध और मध्य प्रदेश में सरकारी लगान की संख्या १ करोड़ ४ लाख रुपये बढ़ गई है। इन सभी प्रदेशों में इन पिछले दस वर्षों

में बारम्बार अकाल, अनावृष्टि आदि बाधायें होने के कारण खेती के फार्मों में अनेक विघ्न उपस्थित होते रहे हैं। ऐसी विपत्ति और दुःख के समय सरकार को उचित था कि उनका कर-भार कम करती। परन्तु ऐसे कुसमय में भी उसने प्रजा से १ करोड ४ लाख रुपये अधिक लेने की व्यवस्था की! इससे बढ़कर दुःख की बात और कौन होगी?" इन सब बातों को कहकर गोखले महोदय ने आगे कहा था कि जब बजट में दिखलाया गया है कि अब से प्रति वर्ष खज़ाने में साढ़े सात करोड़ रुपयों की बचत हुआ करेगी तब ऊपर कहे हुए प्रदेशों के ग़रीब किसानों का लगान सैंकड़ा २०) रुपये के हिसाब से कम कर देने पर सरकारी लगान में वार्षिक तीन करोड़ रुपयों की ही कमी होगी। जब इस प्रकार खज़ाना भरा पूरा है तब भी यदि सरकार वार्षिक तीन करोड़ रुपये का बोझा गरीब किसानों का कम न करे तो और कब करेगी? सरकार के इस थोड़े से ही स्वार्थ-त्याग से किसानों की स्थिति दस गुनी अधिक अच्छी हो जायगी। कहना नहीं होगा कि सरकार ने गोखले महोदय के इस उचित अनुरोध को मानना ठीक नहीं समझा।

सन् १६०५ तक भारत सरकार कृषकों के लिये १० लाख रु० वार्षिक खर्च किया करती थी परन्तु अब २० लाख प्रति वर्ष खर्च करती है जो कि किसानों की दरिद्र अवस्था और संख्या देखते हुए कुछ भी नहीं है। अन्य देश वाले किस प्रकार किसानों के लिये खर्च करते हैं सो देखियेः—

नामदेश	वार्षिक खर्च
रूस	६ करोड़ रुपया वार्षिक
अमेरिका	३ करोड़ बीस लाख

इटली	४० लाख
स्वीडन	५॥ लाख
डेनमार्क	३० लाख
भारत	२० लाख
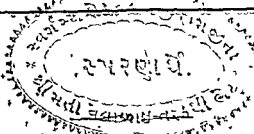
भारतवर्ष की साम्पत्तिक अवस्था ।

हमने इस ग्रन्थ के आरम्भ में भारत की साम्पत्तिक अवस्था का थोड़ासा दिग्दर्शन कराया है। उससे पाठकों को मालूम हुआ होगा कि प्राचीन काल में भारतवर्ष कितनी उच्च कोटि की समृद्ध अवस्था पर पहुँचा हुआ था। इसके बाद ही हमने उन कारणों को भी प्रकट करने की चेष्टा की है जिनसे भारतवर्ष आज इस दीन हीन दशा पर पहुँचा है। आज सभ्य संसार में भारतवर्ष के समान गरीब और दरिद्र देश दूसरा नहीं है। आज करोड़ों भारतवासियों को दिन रात में केवल एक बार भोजन करके और दूसरी बार पापी पेट पर पट्टी बांध कर रह जाना पड़ता है। आज हमारे लाखों बच्चे अन्न के लिये त्राहि त्राहि कर रहे हैं! आज हमारी लाखों बहनों को शरीर ढांकने तकके लिये पूरे कपड़े नहीं मिलते। आज हमारे लाखों बंधु भूखों रहने के कारण विविध प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त होकर अकाल ही में इस संसार को छोड़ने के लिए बाध्य होते हैं। आज इसी भूख के कारण हमारे लाखों नवयुवकों के चेहरे पीले ज़र्द हो रहे हैं और उन पर क्षयराज की सवारी देख पड़ती है। कहां तक कहें, बड़ी ही शोचनीय अवस्था है। अगर इन लाखों करोड़ों

गरीबों के घर में जाकर कोई सहृदय मनुष्य इनकी स्थिति देख तो वह रोये बिना न रहेगा। किस ढंग से ये बेचारे अपनी जिंदगी बिताते है। किस प्रकार ये गदे और चूहे के बिल जैसे अन्धेरे और तग मकानों में रहते हैं। किस प्रकार ये एक बार लपसी पीकर जीते हैं। किस प्रकार ये अपने स्त्री और पुत्रों की परवरिश करते हैं। इन बातों की अगर गहरी जॉच की जाय तो इसके बड़े ही करुणाजनक परिणाम निकलेंगे। कई अंग्रेजों ने हमारी दरिद्रता की विषमता को दर्शाया है। पर हम समझते हैं कि इन अंग्रेजों को भी गरीबों की भीतरी अवस्था का बहुत कम पता था। जो लोग इनमें मिलते जुलते रहते हैं, जो लोग इनके जीवन के सुख दुःख में हिस्सा बटाते हैं, वे इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाल सकते हैं। फिर भी कई सहृदय पाश्चात्य और भारतीय लेखकों ने यहा की विषम दरिद्र अवस्था को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है।

सर विलियम हटर महोदय जो भारतीय इतिहास के अत्यन्त नामाङ्कित ज्ञाता समझे जाते हैं, लिखते हैं —

"Forty millions of the people of India were seldom or never able to satisfy their hunger."

अर्थात् भारतवर्ष के चार करोड मनुष्य कभी अपनी भूख बुझाने में समर्थ नहीं होंगे। Prosperous British India नामक सुप्रख्यात् ग्रन्थ के लेखक मि० विलियम डिग्वी लिखते हैं —

"40 Millions of people are in a state of chronic starvation, not knowing from January to December, what it is to eat and be satisfied, their

worm of hunger dieth out" अर्थात् चार करोड़ भारतवासियों को मुद्दतों से भूखों मरना पड़ता है। वे जनवरी से दिसंबर तक यह नहीं जानते कि पेट भर भोजन किस चिड़िया का नाम है। उनकी क्षुधा की दाह नहीं बुझती। उनकी भूख का कोड़ा नहीं मरता। मि० ए० ओ० ह्यूम, जो सन् १८८० में कृषि विभाग के सेक्रेटरी थे लिखते हैं:—

"Except in very good seasons, multitudes for months every year can not get sufficient food for themselves and family" अर्थात् बहुत अच्छी फ़सल के दिनों के सिवा लाखों मनुष्य महीनों तक अपने लिये या अपने कुटुम्ब के लिये पूरा भोजन नहीं पाते।" सर चार्ल्स ईलियट, जो कि आसाम के चीफ़ कमिश्नर थे, लिखते हैं:—

"I do not hesitate to say that half the agricultural population do not know from one year end to another, what it is to have a full meal." अर्थात् मैं यह कहने में न हिचकूँगा कि आधे किसान साल भर में कभी यह नहीं जानते कि पूरा भोजन किस चिड़िया का नाम है? एक क्रिश्चियन समाचार पत्र ने लिखा था:—

"It is safe to assume that 100,000,000, of the population of India have an annual income of not more than 5 Doll a head." अर्थात् यह मान लेने में कोई हानि नहीं कि हिन्दुस्थान के दस करोड़ मनुष्यों की आमदनी प्रति साल प्रति मनुष्य ५ डॉलर से ज़्यादा नहीं है।" मि० मैकडॉनल कहते हैं:—

"From thirty to fifty million families live in India on an income, which does not exceed 3½d.

हमारे बंधुओं की भीषण और परम करुणा जनक स्थिति का जो चित्र खींचा गया है, वह हमारी राय में फिर भी अपूर्ण है। जिन लोगों ने सम्वत् १९५६ का अकाल देखा है, वे जानते हैं कि उस समय जिधर देखिये उधरही हजारों मनुष्य ऐसे देख पड़ते थे, जिनका पेट भूख के मारे बैठा जाता था जिनकी आँखें बाहर निकल रही थीं, जो चलने में गिर पड़ते थे, जो अन्नके एक एक दाने के लिये कुत्तों के सरीखे लड़ते थे, जिनके बदन पर सिवा एक लंगोटी के और कुछ नजर ही नहीं आता था, जिन्हें खाने को गेहूँ की रोटी तो दूर रही ज्वार या मक्का की रोटी तक नहीं मिलती थी। हाय! यहाँ तक देखा है कि सड़ी हुई ज्वार से खपरिया नामक जो सफेद धूल निकलती है, उसके लिये भी लोग तरसते थे! कई अभागे वृक्षों की छालें पका पका कर खाते थे, और कुछ दिन तक उनसे अपना जीवन निर्वाह करते थे। यहाँ तक देखा गया है कि भूखी माँ दो वर्ष के बच्चे के हाथ से रोटी छीन कर खा रही है!! देहातों और कस्बों में मुर्दों के ढेर के ढेर लगे हुए हैं, जिन्हें सरकार उठवा कर फिकवा रही है!! दो दो रुपयों में लोग अपने बच्चों को बेचते थे!! कहा तक कहें, हमारी तो लेखनी काम नहीं करती! इस प्रकार का करुणाजनक दृश्य शायद ही कभी सभ्य संसार के इतिहास में उपस्थित हुआ होगा। सम्वत् १९५६ (सन १९००) के अकाल का नाम सुनकर आजभी बहुत से लोगों के कलेजे थर्राते हैं। इसके बाद भी कई भीषण अकाल पड़े जिनमें लाखों मनुष्यों की जानें गई!! इन सबका वर्णन हम संक्षिप्त रूप से "भारत में अकाल" नाम के अध्याय में करेंगे।

गत वर्ष में अपने एक बंधु के विवाह में बुँदेलखण्ड

गया था। वहां मैंने गरीबों का जो हृदय—द्रावक दृश्य देखा, वह मैं कभी भूल नहीं सकता। मैंने प्रत्येक नगर में हजारों भूखों मरते हुए तिनके जैसे दुबले पतले तथा कृष मनुष्य देखे। अन्न के कणों के लिये या रोटी के टुकड़ों के लिये सैंकड़ों भिखमंगे हमेशा द्वार पर आते थे। उनको देखने से मालूम होता था कि दो दो तीन तीन दिनों में भी इन्हें पूरा भोजन नहीं मिलता। मैंने एक बार एक दृश्य देखा, जो अबतक मेरे हृदय में अङ्कित है। मैंने देखा कि मेरे एक साथी ने ककड़ी के कुछ छिलके नाली में फेंके। उन्हें लेने को लोगों के झुंड के झुंड उमड पडे और पेशाब तथा गदी चीजों से भरी हुई नाली से उन छिलकों को उठाकर खा गये! हाय कितना हृदय द्रावक चित्र है! गरीबी और भूख का इतना भयानक दृश्य शायद ही किसी सभ्य देश में उपस्थित होगा।

इस प्रकार दरिद्रता के अनेक हृदय-द्रावक चित्र इस हत भाग्य देश में नित्य प्रति देखे जाते हैं। इस अभागे देश के करोड़ों मनुष्य किस प्रकार अपना गुजर करते हैं, किस प्रकार वे अपनी स्त्री पुत्रों और कुटुंबियों का पालन करते हैं, वे क्या पहनते और ओढते हैं, बीमारी के समय खाने पीने की तथा वैद्यकीय सहायता की उनके लिये कैसी व्यवस्था रहती है, इन बातों की सूक्ष्म जाँच करोडों किसानों और मजदूरों की झोंपडियों में जाकर कीजावे और उसका फल प्रकट किया जावे तो हम समझते हैं एक ऐसा हृदय द्रावक और करुणाजनक चित्र सामने आवेगा जो इस बीसवीं सदी की दरिद्रता के इतिहास में बेजोड होगा।

यह तो हुई निम्न श्रेणी के लोगों की बात। अब मध्यम श्रेणी के लोगों को लीजिये। इनकी भी स्थिति बुरी है। मैंने

per day. In July 1900' according to the Imperial gazzetier, famine relief was administered daily to 6,500,0 00 persons. The poverty of India is not an opinion, it is a fact. At the best of times the cultivator has a mill stone of debt around his neck." अर्थात् भारत में तीन करोड़ से लेकर पांच करोड़ तक ऐसे कुटुम्ब हैं, जिनकी आमदनी ३॥ पेन्स प्रति दिन से ज़्यादा नहीं है। सन् १९०० के जुलाई मास में इम्पीरियल गैज़ेटियर के अनुसार, कोई ६५००००० मनुष्यों को फेमीन रिलीफ से सहायता दी गई। भारत केवल कहने के लिए ही नहीं बल्कि सचमुच बहुत दरिद्र है। इन्हीं महाशय ने अपने "The Awakening of India" नामक ग्रन्थ में लिखा है-

"India is the home of poverty stricken." अर्थात् भारतवर्ष भूखे मरते हुए मनुष्यों का घर है।" सर विलियम हंटर ने सन् १८८३ में श्रीमान् वाईसराय की कौंसिल में कहा था

'The Government assessment does not leave enough food to the cultivator to support himself and his family throughout the year" अर्थात् सरकार का लगान किसानों और उनके कुटुम्बों के लिये साल भर खाने के लिये पूरा अन्न भी नहीं छोड़ता। मि० हरबर्ट कॉम्पटन अपनी "Indian life" में कहते हैं:—

"There is no more pathetic figure in the British Empire than the Indian peasant." अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य में हिन्दुस्थानी किसान के समान हृदय को द्रवित करने वाला और कोई मनुष्य नहीं है।

मि० विलियम डिग्वी साहब ने अपने "Condition of India" नामक ग्रन्थ में एक अमेरिकन मिशनरी का मत उद्धृत किया है। उसका आशय यह है:—

"गत वर्ष (सन् १६०१) सितम्बर मास में दौरा करते हुए मुझे बड़ा ही दुःख पूर्ण अनुभव हुआ। मेरे डेरे के आस पास दिन रात हज़ारों भूखे मरते हुए मनुष्यों का झुंड लगा रहता था। मेरे मकानों में सिवा इसके और कोई शब्द ही नहीं आता था "हाय! हम अन्न के बिना मर रहे हैं"। सचमुच लोगों को दो दो तीन तीन दिन में एक वक्त भी मुश्किल से भोजन मिलता था। मैंने तीन सौ आदमियों की आमदनी की जाँच की, जिससे मुझे मालूम हुआ कि प्रति मनुष्य की आमदनी औसतन तौर से प्रति दिन एक फार्दिंग (आना) से भी कम है। मैंने झोपड़ियों में जाकर इन्हें देखा तो मुझे मालूम हुआ कि बहुत से लोग बिलकुल सड़े हुए अनाज से अपना निर्वाह करते हैं। यह भी उन्हें दो तीन दिन में कभी एकाद बार नसीब होता है! इस पर भी तारीफ़ यह कि यह साल (सरकार द्वारा) अकाल नहीं माना गया। अरे भाई! ईश्वर के नाम पर यह तो कहो कि यह अकाल नहीं तो और क्या है? हिन्दुस्थान के ग़रीब लोगों की अत्यन्त दरिद्रता असाधारण स्थिति उपस्थित करती है। इसमें जीवन जितना दुःखी और संकीर्ण रहता है, वह अकल्पित है। कई कुटुम्बों के घर, सामान, बर्तन बासन आदि सब मिला कर तीस रुपये मूल्य के भी नहीं होते। इनमें से बहुत से कुटुम्बों में प्रति मनुष्य पीछे औसत १॥) रुपये से ज़्यादा आमदनी नहीं होती। किसी की तो औसत आमदनी इससे आधी होती है"।

उक्त पादरी साहब ... बातें

हमारे बंधुओं की भीषण और परम करुणा जनक स्थिति का जो चित्र खींचा गया है, वह हमारी राय में फिर भी अपूर्ण है। जिन लोगों ने सम्वत् १६५६ का अकाल देखा है, वे जानते हैं कि उस समय जिधर देखिये उधरही हज़ारों मनुष्य ऐसे देख पड़ते थे, जिनका पेट भूख के मारे बैठा जाता था जिनकी आँखें बाहर निकल रही थीं, जो चलने में गिर पड़ते थे, जो अन्नके एक एक दाने के लिये कुत्तों के सरीखे लड़ते थे, जिनके बदन पर सिवा एक लंगोटी के और कुछ नज़रही नहीं आता था, जिन्हें खाने को गेहूँ की रोटी तो दूर रही, ज्वार या मक्का की रोटी तक नहीं मिलती थी। हाय! यहाँ तक देखा है कि सड़ी हुई ज्वार से खपरिया नामक जो सफेद धूल निकलती हे, उसके लिये भी लोग तरसते थे! कई अभागे वृक्षों की छालें पका पका कर खाते थे, और कुछ दिन तक उनसे अपना जीवन निर्वाह करते थे। यहाँ तक देखा गया है कि भूखी माँ दो वर्ष के बच्चे के हाथसे रोटी छीन कर खा रही है!! देहातों और कस्बों में मुर्दों के ढेर के ढेर लगे हुए हैं, जिन्हें सरकार उठवा कर फिकवा रही है!! दो दो रुपयों में लोग अपने बच्चों को बेचते थे!! कहां तक कहें, हमारी तो लेखनी काम नहीं करती! इस प्रकार का करुणाजनक दृश्य शायद ही कभी सभ्य संसार के इतिहास में उपस्थित हुआ होगा। सम्वत् १६५६ (सन१६००) के अकाल का नाम सुनकर आजभी बहुत से लोगों के कलेजे थर्राते हैं। इसके बाद भी कई भीषण अकाल पड़े, जिनमें लाखों मनुष्यों की जानें गईं!! इन सबका वर्णन हम संक्षिप्त रूप से "भारत में अकाल" नाम के अध्याय में करेंगे।

गत वर्ष में अपने एक बंधु के विवाह में बुंदेलखण्ड

गया था। वहां मैंने ग़रीबों का जो हृदय—द्रावक दृश्य देखा, वह मैं कभी भूल नहीं सकता। मैंने प्रत्येक नगर में हजारों भूखों मरते हुए तिनके जैसे दुबले पतले तथा कृष मनुष्य देखे। अन्न के कणों के लिये या रोटी के टुकड़ों के लिये सैकड़ों भिखमंगे हमेशा द्वार पर आते थे। उनको देखने से मालूम होता था कि दो दो तीन तीन दिनों में भी इन्हें पूरा भोजन नहीं मिलता। मैंने एक बार एक दृश्य देखा, जो अबतक मेरे हृदय में अङ्कित है। मैंने देखा कि मेरे एक साथी ने ककड़ी के कुछ छिलके नाली में फेंके। उन्हें लेने को लोगों के झुंड के झुंड उमड पड़े और पेशाब तथा गंदी चीजों से भरी हुई नाली से उन छिलकों को उठाकर खा गये! हाय कितना हृदय-द्रावक चित्र है! ग़रीबी और भूखका इतना भयानक दृश्य शायद ही किसी सभ्य देश में उपस्थित होगा।

इस प्रकार दरिद्रता के अनेक हृदय-द्रावक चित्र इस हत भाग्य देश में नित्य प्रति देखे जाते हैं। इस अभागे देश के करोड़ों मनुष्य, किस प्रकार अपना गुजर करते हैं, किस प्रकार वे अपनी स्त्री पुत्रों और कुटुंबियों का पालन करते हैं, वे क्या पहनते और ओढ़ते हैं; बीमारी के समय खाने पीने की तथा वैद्यकीय सहायता की उनके लिये कैसी व्यवस्था रहती है, इन बातों की सूक्ष्म जाँच करोड़ों किसानों और मज़दूरों की झोंपड़ियों में जाकर कीजावे और उसका फल प्रकट किया जावे तो हम समझते हैं एक ऐसा हृदय द्रावक और करुणाजनक चित्र सामने आवेगा जो इस बीसवीं सदी की दरिद्रता के इतिहास में बेजोड होगा।

यह तो हुई निम्न श्रेणी के लोगों की बात। अब मध्यम श्रेणी के लोगों को लीजिये। इनकी भी स्थिति बुरी है। मैंने

देखा है कि यद्यपि इस श्रेणी के कई लोग ऊपर से बने, ठं हुए दीखते हैं पर इनके घरों की स्थिति का आप दिग्दर्श करेंगे तो यहा भी आपको चूहे तक एकादशी करते हुए मिलेंगे। इस श्रेणी के बहुत से घरों में देखा गया है कि एक कमाता है और सारा घर खाता है। क्योंकि इस श्रेणी के लोगों की औरतें अपनी शान के लिहाज़ से कोई उत्पादक काम नहीं कर सकती। शिक्षा के अभाव के कारण उनका सारा जीवन चूल्हे चक्की ही की फिक्र में जाता है। यह बात इस श्रेणी के लोगों के लिये आर्थिक दृष्टि से हानिकर है। इसके सिवा इन लोगों में नौकरी पेशा लोग अधिक होते हैं जिन्हें शान से रहना पडता है। और इस वक्त चीजों की दर बहुत ज्यादा बढ जाने से इसमें तिगुना या चौगुना खर्च पडता है और आमदनी में ड्योढ़ी तरक्की भी नहीं हुई है। इससे इनकी स्थिति भी बिलकुल अच्छी नहीं है। कई दृष्टियों से विचार करने पर इनकी स्थिति को भी अगर निम्न श्रेणी के लोगों की स्थिति के समान दरिद्रतायुक्त कहें तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी।

इन सब बातों से भारत की दरिद्रता का पता लगता है। इसके सिवा जब हम उसकी आमदनी के औसत पर विचार करते हैं तो इस अभागे और कम नसीब देश की भीषण स्थिति का डरावना चित्र आँखों के सामने आ जाता है। सरकारी गणना के अनुसार प्रत्येक हिन्दुस्तानी की औसत आमदनी अधिक से अधिक प्रतिसाल ३०) है। लॉर्ड क्रोमर ने जो कि भारत के अर्थ सचिव थे, सन् १८८२ में हरएक आदमी की औसत आमदनी २०) प्रति साल अदाज की थी। भारत के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड कर्जन ने इसे ३०) प्रति वर्ष

माना है। लॉर्ड जार्ज हैमिल्टन ने जो कि भारत के स्टेट सेक्रेटरी थे, सन् १९०१ के अपने बजट सम्बन्धी व्याख्यान में हरएक हिन्दुस्तानी की आमदनी की औसत दो पाउन्ड अर्थात् लगभग ३०) कहा है। मि० विलियम डिग्बी ने अपनी गहरी जांच के बाद इसका परिणाम केवल २७) ही स्वीकार किया है। कहने का मतलब यह है कि हिन्दुस्तानियों की आर्थिक दशा कितनी हीन है यह बात उपर्युक्त पाश्चात्य अर्थशास्त्र वेताओं के मतों से स्पष्ट होती है। उसपर भी यहाँ एक बात ध्यान में रखना आवश्यक है। वह यह कि यह औसत निकालने में करोड़पतियों और लखपतियों की आमदनी को भी हिसाब में लिया गया है। अगर इनकी आमदनी को एक तरफ रख कर केवल ग़रीब लोगों की आमदनी की औसत देखी जावे, तो यह औसत बहुतही कम निकलेगी।

हिन्दुस्थान की आर्थिक स्थिति कितनी शोचनीय है। ग़रीबी के कारण उसपर प्लेग आदि कैसी आफ़तें पड़ रही हैं। इसका चित्र खींचते हुए अमेरिका के सुप्रसिद्ध डॉक्टर सन्डरलैण्ड लिखते हैं—

"The truth is, the poverty of India is something we can have little conception of, unless we have actually seen it, as alas, I have......... Is it any wonder that the Indian peasant can lay up nothing for time of need. The extreme destitution of the people is principally responsible for the devastations of plague The loss of life from this terrible scourge is startling. It reached 272 000 in 1901; 500,000 in 1902, 8,000,000 in

1903; and over 1,000,000 in 1904. It still continues unchecked. The vitality of the people has been reduced by long semi-starvation. So long as the present destitution of India continues, there is small ground for hope that the Plague can be over-come...... The real cause of famines in India is not lack of rain; it is not over-population, it is the extreme, the abject, the aweful poverty of the people."

अर्थात् सच बात तो यह है कि हिन्दुस्थान की दरिद्रता की हमें बहुत थोड़ी कल्पना है। इस की कल्पना हमें तब ही हो सकती है, जब हम इसे अपनी आँखों से देखें। हाय! मैंने इस दरिद्रता के चित्र को अपनी आँखों से देखा है... क्या यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि हिन्दुस्थानी किसान ज़रूरत के समय के लिये कुछ भी नहीं बचा सकता? प्लेग से जो सर्वनाश होता है, इसके लिये खास तौर से जिम्मेदार लोगों की दरिद्रता है। प्लेग से जो जीवहानि होती है, वह भयानक है। सन् १९०१ में २७२,०००, सन् १९०२ में ५००,०००., सन् १९०३ में ८००,०००, और सन् १९०४ में १,०००,००० मनुष्य इस रोग से मरे। बहुत दिनों तक भूखे रहने की वजह से हिन्दुस्थानी लोगों की जीवनशक्ति (vitality) बहुत ही कम हो गई है, और जबतक यह दरिद्रता बनी रहेगी, तबतक यह आशा करने का बहुत कम अवसर है कि प्लेग का नाश हो सकेगा। हिन्दुस्थानी में अकाल पड़ने का कारण वर्षा की कमी नहीं, बढ़ी हुई जनसंख्या नहीं, पर वह लोगों की घोर (abject) और भयानक दरिद्रता है।"

इग्लैंड के सुप्रसिद्ध साम्यवादी मि० हिण्डमैन लिखते हैं—

"The agricultural population of India is the most poverty-stricken mass of human beings in the whole world. It constitutes four-fifths of the whole of the inhabitants of Hindustan." अर्थात् हिन्दुस्थान के किसान सारी दुनिया के मानव प्राणियों में सबसे अधिक दरिद्रता-ग्रस्त हैं।" इन्हीं हिण्डमैन महोदय ने अपनी 'Bankruptcy of India नामक ग्रन्थ में इस आशय के वचन लिखे हैं—

"हिन्दुस्थान के लोग दिन प्रति दिन ज़्यादा ग़रीब होते जा रहे हैं। उनके ऊपर कर का जो बोझा है वह केवल भारी ही नहीं पर दु:सह भी है। वहाँ अकाल बहुत पड़ते हैं। यहाँ का सुसङ्गठित विदेशी शासन इस ग़रीब देश से सम्पत्ति का विशाल प्रवाह खींच ले जाता है।"

सन् १८८८ में लार्ड डफरिन ने हिन्दुस्थानियों की सम्पत्ति की गुप्त जाँच (Confidentional enquiry) की थी। इस जाँच के परिणाम कभी प्रकाशित नहीं किये गये, पर डिग्बी महोदय ने अपने सुप्रख्यात् ग्रन्थ Prosperous British India में इसकी गुप्त रिपोर्ट के कुछ अंश प्रकाशित किये हैं। उसमें कमिश्नर मि० हैरिंगटन ने अपनी रिपोर्ट में अवध गेज़ेटियर के कर्ता मि० बेनेट का हवाला देते हुए लिखा है—

The lowest depths of misery and degradation are reached by the koris and Chamars whom he describes always on the verge of starvation' अर्थात् कोरी और चमार लोगों की ग़रीबी और अधोगति

सबसे अधिक गहरी है। मि० बेनेट कहते हैं कि ये बेचारे हमेशा भूखों मरते हैं। मि० हैरिंगटन ने सन् १८७६ में "पायोनियर" में लिखा था—

It has been calculated that about 60 percent of the entire native population . are sunk in such abject poverty that unless the small earnings of child labar are added to the scanty stock by which the family kept alive, some members would starve." अर्थात् इस बात का अंदाज़ किया गया है कि लगभग ६० प्रतिसैकड़ा हिन्दुस्थानी इतनी घोर दरिद्रता में फंसे हुए हैं कि अगर उनकी छोटी आमदनी में बच्चों की मजदूरी के पैसे न मिलाये जायें, तो उनके कुटुम्ब के कई लोग भूखों मर जायँ। मि० ए० जे० लॉरेन्स, जो कि प्रयाग के कमिश्नर थे, लिखते हे कि हिन्दुस्थान के गरीब लोग हमेशा आधे पेट रहते हैं। मि० व्हाइट लिखते हैं.—

A large number of the lower classes clearly demonstrated by their physique either that they are habitually starved or have been exposed in early years to the severity of famines if any young creature be starved while growing no amount of subsequent fattening will make up for the injury sustained अर्थात् नीच जातियों के बहुत से लोग, जैसा कि उनकी शारीरिक अवस्था से प्रकट होता है, या तो भूखों मरते हैं या अपनी पूर्वावस्था में अकाल की सख्ती को सह चुके हैं। अगर कोई प्राणी अपनी उठती हुई जवानी में भूखों मरता है तो फिर किसी प्रकर का पुष्टि कारक पदार्थ उसकी उस शारीरिक क्षति की पूर्ति नहीं कर

सकता, जो कि पहले भूखों मरने से हुई है। इस प्रकार अनेक निष्पक्ष अंग्रेज़ों ने भारत की घोर दरिद्रता को स्वीकार किया है। इन लोगों ने ज़्यादातर मजदूरों और किसानों की ग़रीबी ही का चित्र खींचा है। पर यहां द्रव्य चूसनेवाले मुट्ठी भर धनवानों को छोड़कर किसी की भी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। इस महायुद्ध के बाद तो आवश्यक पदार्थों की अत्यन्त महँगी के कारण सौ सौ रुपये प्रतिमास पानेवाले लोगों की दशा भी शोचनीय हो रही है। जिस कुटुम्ब में दस आदमी हैं और कमाने वाला केवल एक आदमी है, अगर वह १००) भी पाता है तो भी कुटुम्ब का निर्वाह सुखपूर्वक नहीं हो सकता। अर्थ शास्त्र की दृष्टि से रुपयों की खरीद करने की शक्ति बहुत कम हो जाने की वजह से, दूर की बात तो क्या, पर दस वर्ष के पहले २५) रुपये में मनुष्य जिस आराम के साथ रह सकता था, आज १००) में उसी तरह नहीं रह सकता। लोगों के खर्च इस बेहद महँगी के कारण बहुत बढ़ गये हैं और आमदनी में नाम मात्र को वृद्धि हुई है। इसलिये इस समय लोगों की आर्थिक अवस्था तरह तरह के उद्योग धन्धे निकल आने पर भी, संकट-मय हो रही है। अभी हम इतना ही कहकर इस अध्याय को खतम करते हैं। इस सम्बन्ध की विशेष बातें आगामी अध्यायों में यथावसर प्रकट करने की चेष्टा की जायगी।

[stamp]

भारत में अकाल।

इस अभागे और दरिद्र भारतवर्ष में जितने अकाल पडते हैं, ससार के किसी सभ्य देश में उतने नहीं पडते। भारतभूमि को इस वक्त यदि अकाल की भूमि कहें, तो हमारी राय में, कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी। यहाँ के अकालों की विभीषिका भयङ्कर और हृदय द्रावक है। इनके फेरमें पडकर लाखों नहीं वरन् करोडों मनुष्य "हाय अन्न!" 'हाय अन्न!' की आर्तध्वनि करते हुए अपने प्राण छोड देते हैं। उन्नीसवीं सदी के आखिरी चालीस वर्षों में अर्थात् सन् १८६० से लगाकर सन् १९०० तक इस अभागे भारतभूमि में कोई दस अकाल पड़े और इनमें कोई १५,०००,००० हतभाग्य भारतवासियों को भूख से तड़प तडप कर प्राण विसर्जन करने पडे। क्या यह भयकर और हृदय-द्रावक स्थिति नहीं है? अपने भाइयों को करोडों की सख्या में मक्खियों की तरह मरते हुए देखकर किसी सहृदय मनुष्य का अन्त करण-अगर वह वास्तव में अन्त करण है-तो पानी पानी हुए विना न रहेगा।

भारतवर्ष के इन भयकर अकालों के हाल जानकर अमेरिका के सुप्रख्यात् भारत हितैषी डाक्टर सन्डरलेण्ड का अन्त करण द्रवित हो गया। उन्होंने इस विषय पर बहुत कुछ लिखा और ब्रिटिश शासन को इन अकालों के लिये जिम्मेदार दिखलाया। इसपर इग्लैण्ड के साम्राज्य वादियों में बडी खलबली मच गई और उन्होंने यह दिखलाने का प्रयत्न किया कि हिन्दुस्थान में ब्रिटिश शासन का आरम होने के पहले भी बहुत अकाल

पड़ते थे। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी दिखलाने की चेष्टा की कि प्राचीन आर्थिक व्यवस्था में इंग्लैण्ड में भी अकाल पड़ते थे। सर थियोडोर मारिसन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The Economic Transition of India" में अकालों के विषय में एक अध्याय का अध्याय समर्पित किया है। आपने दिखलाया है कि सन् १८५६ में इंग्लैण्ड में और सन् १६७५ में फ्रान्स में कितने भयंकर अकाल पड़े थे। इसके बाद आपने ब्रिटिश शासन के पहले के भारतीय अकालों का विवरण दिया है। आपने "पीटरलेडो" नाम के एक अंग्रेज़ मल्लाह की डायरी का हवाला देकर सन् १६३० के अकाल का विवरण प्रकाशित किया है। सन् १७०९ से सन् १७५२ के बीच के अर्से में मद्रास में जो चार अकाल पड़े थे उनका वर्णन आपने ब्रिटिश कागज़ पत्रों के सहारे किया है। इसके बाद ब्रिटिश शासन के आरम्भ होने पर सन् १७७०, १७८३, १७९०–९२ और १८३७ में जो भीषण अकाल पड़े उनका भी विवेचन आपने किया है। इसके बाद आपने भारतीय अकालों की दशा पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा की है, और यह दिखलाया है कि अकालों के रोकने के लिये ब्रिटिश सरकार ने क्या क्या प्रयत्न किये?

लंडन की ईस्ट इण्डियन असोसियेशन ने भारतीय अकालों के विषय में "Some Plain Facts about Famines in India." नाम की एक पुस्तिका प्रकाशित की है। उसमें हिन्दु पुराणों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि अति प्राचीन काल में भी यहां अकाल पड़ते थे। इसके बाद यह दिखलाया है कि सन् ११०७ से ११४३ के बीच में यहां अकाल पड़े। इस पुस्तिका में दक्षिण हिन्दुस्तान में प्रचलित "बारह वर्ष के अकाल" वाली कहावत देकर यह

त्राहि करते हुए अन्नके कण कण के लिये टूटे पड़ते थे !!
सड़ी ज्वार के खपरिये तक पर लोगों के झुंड के झुंड गिरते थे!
चारों तरफ भूखी आत्माओं के झुंड दिखाई देते थे ! बड़ाही
हृदय-द्रावक दृश्य था ! पेड़ों के छिलके और पत्ते तक लोग
पका पका कर खाते थे । भूख का इतना हृदय-द्रावक चित्र
संसार के सभ्य देशों में शायदही कभी उपस्थित हुआ होगा।
लोग गाते फिरते थे "छपन्या फिर मत आजेरे इस दुनिया में"
"दो दो रुपये में भूखों मरती हुई माताएँ अपने बच्चों को
बेचती थीं। यहाँ तक देखा गया कि भूखी मां अपने निजके बच्चे
के हाथ से रोटी का टुकड़ा छीनकर खा रही है !! सचमुच
भूख सब पापों और खराबियों की जड़ है।

बीसवीं सदी के अकाल.

सन् १६०१ में सर्व भारत व्यापी अकाल था और ५५६,००० पौंड अकाल निवारण केलिये खर्च किये गये थे।

सन् १६०२ में मध्यप्रदेश में बड़ा अकाल था। ३१५,५०० पौंड अकाल निवारण के लिये खर्च किये गये। सन् १६०३ में उत्तरीय वर्मा में फसल खराब हुई। पंजाब में भी फसल की दशा संतोषकारक नहीं थी। मद्रास में चांवल की फसल मारी गई। बुँदेलखंड में अकाल था।

सन् १६०५ में भी हिन्दुस्तान के कई प्रान्तों में अकाल का दृश्य उपस्थित हुआ था।

सन् १९०६ में बंगाल में कहीं फसल की दशा अच्छी थी और कहीं खराब थी। आसाम में गत वर्ष की तरह अकाल की स्थिति जारी थी। युक्त प्रदेश की दशा भी संतोष जनक नहीं थी।

सन् १९०७ में प्रायः सारे भारतवर्ष में अकाल था।

सन् १९०८ में अकाल पहले साल की तरह शुरू था। ओड़िसा में कष्ट बढ़ रहा था और बिहार में अकाल के भयंकर परिणाम उपस्थित हुए थे।

सन् १९०७-८ में खरीफ की फसल नष्ट हो जाने से और रब्बी में भी बहुत कमी होने से लोगों को सरकार के अकाल निवारण का आश्रय लेना पड़ा।

सन् १९०७ के अकाल का प्रभाव सन् १९०९ तक चलता रहा। बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, बरार, आसाम और बंबई आदि सब जगह इसका असर रहा।

सन् १९११ में गुजरात और बंबई के बहुत से प्रान्तों और सन् १९१२ में अहमदनगर ज़िले में अच्छी वर्षा हुई। सन् १९१३-१४ में युक्त प्रदेशों में भी वर्षा की कमी नहीं रही, पर ये साल भी अकाल के प्रभाव से बचे नहीं थे।

इस अकाल में भी कोई पचास लाख आदमी कष्ट पा रहे थे। सन् १९१४-१५ में बंगाल में तो भारी कष्ट था ही। इतने पर भी हिन्दुस्तान से विदेशों को होने वाली अनाज की रफ्तनी नहीं रोकी गई।

हिन्दुस्थान में बार बार इतने भयंकर अकाल क्यों पड़ते हैं, इस का दोश कुछ लोग ब्रिटिश शासन के मत्थे मढ़ते हैं। वे कहते हैः—

दिखलाने का अप्रत्यक्ष प्रयत्न किया गया है कि सोलहवीं सदी में यहां दो, सत्रहवीं सदी में दो और अठारहवीं सदी में चार अकाल पडे। अठारहवीं सदी के आखिरी दो अकाल ब्रिटिश शासन के बाद पड़े।

सुप्रसिद्ध अंग्रेज लेखक मि० डिग्बीने बहुत खोजके पश्चात् ग्यारहवीं सदी से अठारहवी सदी तक के अकालों का विवरण दिया है, वह इस प्रकार है—

११ वी सदी में दो अकाल पडे और दोनों ही स्थानीय (*Local*) थे।

१३ वीं सदी में देहली के आसपास एक अकाल, पडा। यह भी स्थानीय था।

१४ वीं सदी में तीन अकाल पडे। तीनों स्थानीय थे।

१५ वीं सदी में दो अकाल पडे। दोनों स्थानीय थे।

१६ वीं सदी में तीन अकाल पडे।

१८ वीं सदी में सन् १७४५ तक चार अकाल पडे और चारों ही स्थानीय थे। अठारहवीं सदी के अंतिम तीस वर्षों में बंगाल, बिहार, मद्रास और दक्षिण हिन्दुस्तान में चार अकाल पडे।"

यह तो हुई १८ वीं सदी की बात। अब उन्नीसवीं सदी को लीजिये। सन् १८०० से १८२५ तक के अर्से में पांच अकाल पडे और उनमें से प्रत्येक में औसत १,००० ००० मनुष्यों की बलि पडी।

सन् १८२६ से १८५० तक दो अकाल पडे, और इनमें प्रत्येक में औसत ५००,००० मनुष्य मृत्यु के मुख में गये।

सन् १८५१ से १८७५ तक के अर्से में छ अकाल पड़े और इनसे ५,०००,००० हत भाग्यों का बलिदान हुआ।

सन् १९०६ में बंगाल में कहीं फसल की दशा अच्छी थी और कहीं खराब थी। आसाम में गत वर्ष की तरह अकाल की स्थिति जारी थी। युक्त प्रदेश की दशा भी संतोष जनक नहीं थी।

सन् १९०७ में प्रायः सारे भारतवर्ष में अकाल था।

सन् १९०८ में अकाल पहले साल की तरह शुरू था। ओड़िसा में कष्ट बढ़ रहा था और विहार में अकाल के भयंकर परिणाम उपस्थित हुए थे।

सन् १९०७-८ में खरीफ़ की फसल नष्ट हो जाने से और रब्बी में भी बहुत कमी होने से लोगों को सरकार के अकाल निवारण का आश्रय लेना पड़ा।

सन् १९०७ के अकाल का प्रभाव सन् १९०९ तक चलता रहा। बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, बरार, आसाम और बंबई आदि सब जगह इसका असर रहा।

सन् १९११ में गुजरात और बंबई के बहुत से प्रान्तों और सन् १९१२ में अहमदनगर ज़िले में अच्छी वर्षा हुई। सन् १९१३-१४ में युक्त प्रदेशों में भी वर्षा की कमी नहीं रही, पर ये साल भी अकाल के प्रभाव से बचे नहीं थे।

इस अकाल में भी कोई पचास लाख आदमी कष्ट पा रहे थे। सन् १९१४-१५ में बंगाल में तो भारी कष्ट था ही। इतने पर भी हिन्दुस्तान से विदेशों को होने वाली अनाज की रफ़्तनी नहीं रोकी गई।

हिन्दुस्थान में बार बार इतने भयंकर अकाल क्यों पड़ते हैं, इस का दोश कुछ लोग ब्रिटिश शासन के मत्थे मढ़ते हैं। वे कहते हैं:—

त्राहि करते हुए अन्नके कण कण के लिये टूटे पड़ते थे!! सड़ी ज्वार के खपरिये तक पर लोगोंके झुंड के झुंड गिरते थे। चारों तरफ भूखी आत्माओं के झुंड दिखाई देते थे। बड़ाही हृदय-द्रावक दृश्य था! पेडों के छिलके और पत्ते तक लोग पका पका कर खाते थे। भूख का इतना हृदय-द्रावक चित्र संसार के सभ्य देशों में शायदही कभी उपस्थित हुआ होगा। लोग गाते फिरते थे "छपन्या फिर मत आजेरे इस दुनियामें" "दो दो रुपये में भूखों मरती हुई माताएँ अपने बच्चों को बेचतीथीं। यहाँ तक देखा गया कि भूखी मां अपने निजके बच्चे के हाथ से रोटी का टुकड़ा छीनकर खा रही है!! सचमुच भूख सब पापों और खराबियों की जड़ है।

बीसवीं सदी के अकाल.

सन् १६०१ में सर्व भारत व्यापी अकाल था और ५५६,००० पाउंड अकाल निवारण केलिये खर्च किये गये थे।

सन् १६०२ में मध्यप्रदेश में बड़ा अकाल था। ३७५,५०० पाउंड अकाल निवारण के लिये खर्च किये गये। सन् १६०३ में उत्तरीय बर्मा में फसल खराब हुई। पंजाब में भी फसल की दशा संतोषकारक नहीं थी। मद्रास में चांवल की फसल मारी गई। बुँदेलखंड में अकाल था।

सन् १६०५ में भी हिन्दुस्तान के कई प्रान्तों में अकाल का दृश्यउपस्थित हुआ था।

बलाया है, वे इसके तीन कारण बतलाते हैं (१) वर्षा की कमी और अन्य नैसिर्गिक कारण (२) लोक-संख्या की अधिकता (३) हिन्दुस्तानी किसानों में विवाहादिकार्यों के समय मितव्ययिता का अभाव।

उपर्युक्त कारणों में सच्चाई का कितना अंश है, इस विषय पर कई सहृदय अंग्रेजों, अमेरिकनों तथा भारत वासियों ने बड़ी छान बीन के बाद अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने उपर्युक्त कारणों का बड़ी खूबी के साथ विश्लेषण किया है।

वर्षा की कमी—उपर्युक्त कारणों में सबसे पहला कारण वर्षा की कमी है। मि० डिग्बी अपनी "prosperous British India" नामक पुस्तक में लिखते हैं:—

"Why is it, India is more liable to devastation by famine than are other countries? Answer: Not because rains fail and moisture is denied; always in the worst of years there is water enough poured from the skies on Indian soil to germinate and ripen the grain but because India is steadily growing poorer." अर्थात् हिन्दुस्थान ही अन्य देशों की अपेक्षा अकालों के कारण ज़्यादा नाश के पजे में क्यों गिरता है? इसका कारण यह नहीं है कि यहाँ वर्षा नहीं होती और ज़मीन को आर्द्रता नहीं मिलती। ख़राब से ख़राब साल में भी आकाश से भारत भूमि पर अनाज को पकाने के लिये काफ़ी जल बरसता है। अकालों का कारण यह है कि हिन्दुस्थान दिन पर दिन ग़रीब होता जा रहा है। रेवेरेंड डाक्टर सन्डरलैंन्ड ने इस आशय के वचन लिखे हैं:—

(१) ब्रिटिश शासन के आरम्भ होने पर जितने अकाल पड़े, उतने पहले कभी नहीं पड़े।

(२) यद्यपि वर्षा के अभाव से तथा फसल के नष्ट हो जाने से या बाढ़ आदि से, जिनका रोकना मानव शक्ति के बाहर है, यहां अकाल पड़ते हैं, पर इनसे जो सर्वव्यापी कष्ट और मौतें होती हैं, उसका कारण इंग्लैण्ड की हिन्दुस्तान के प्रति आर्थिक नीति है। इस नीति से हिन्दुस्तान के उद्योग धन्धे डूब गये और ज्यादा लगान के कारण लोग इतने दरिद्र हो गये कि एक साल के अकाल का सामना करने की भी उनमें शक्ति नहीं रही। उनके पास इतना धन धान्य बचा नहीं रहता जिसको वे अकाल के समय काम में लावें।

(३) हिन्दुस्थान में अकाल के समय मृत्यु संख्या का परिमाण जिस भयंकर मान से बढ़ जाता है तथा लोगों को जो मरणान्तक कष्ट होते हैं, वे बहुत कुछ रोके जा सकते हैं।

(४) भारतवर्ष को ब्रिटिश शासन के बाद अकाल का मानों (*Chronic*) रोग हो गया है।

(५) भारतवर्ष में, इस जमाने में जो अकाल पड़ते हैं, उनकी जड़ अन्न की कमी नहीं है वरन् धन की कमी है। देश में अकाल के समय भी लोगों के खाने लायक काफी अन्न रहता है पर वह अन्न महँगे भाव में विदेशी लोग खरीद कर ले जाते हैं। यहाँ के अधिकाँश लोगों के पास उतना धन नहीं कि वे महँगे भाव का अनाज खरीद कर रखें।

यह तो हुई उन लोगों की बातें जो अकालों के लिय ब्रिटिश शासन को जिम्मेदार ठहराते हैं। अब यह देखना है कि ब्रिटिश शासन कर्ता अकाल के क्या कारण बत लाते हैं। जहाँ तक हमने उनके लेखों आदि से पता

गिरता है। पर उस जल का सञ्चय कर उसका उचित और वैज्ञानिक ढगपर बटवारा करने की ज़रूरत है।"

अब यह देखना है कि क्या अधिक लोक संख्या के कारण भारत में अधिक अकाल पड़ते है? अमेरिका के डाक्टर सन्डरलेण्ड इसका कितना अच्छा जवाब देते हैं:—

" वास्तविक बातों की बहुत थोड़ी जानकारी से इसका बहुत अच्छा जवाब मिल जाता है। हिन्दुस्थान की बस्ती उतनी घनी नहीं है, जितनी बहुत से युरोपीय राष्ट्रों की है। युरोप के ये राष्ट्र घनी बस्ती से युक्त होने पर भी समृद्धिशाली और उन्नत हैं। इन राष्ट्रों को स्वप्न में भी यह मालूम नहीं होता कि अकाल किस-चिड़िया का नाम है। स्वप्न में भी उन्हें अकाल का ख़याल नहीं होता। हिन्दुस्थान की जन्म संख्या भी ज़्यादा नहीं है। वह इंग्लेण्ड की अपेक्षा कम है। हिन्दुस्थान की बस्ती बहुत घनी नहीं है। वर्तमान स्थिति में भी हिन्दुस्थान इतना अन्न पैदा करता है जो उसके लोगों के लिये काफ़ी है। अगर उसके खेती सम्बन्धी साधनों का विकाश किया जाय तो वह बड़ीही आसानी से अपनी बढी हुई जन संख्या का अच्छीतरह पेट भर सकता है। इसके अतिरिक्त वहाँ पड़ती जमीन (*Waste land*) भी बहुत पडी हुई है। वह खेती के काम में लाई जा सकती है। माननीय मि० हैमिलटन ने सन् १९०४ में श्रीमान वाइसराय की कोन्सिल में जो भाषण दिया था, उसमें कहाथा कि भारतवर्ष में अभी दस करोड़ एकड़ भूमि ऐसी पड़ी हुई है, जो खेती के काम में आ सकती है। अगर आबपाशी आदि की सुव्यवस्था की जावे तो यहां की खेती का विस्तार और उपज बढकर बढती हुई जन संख्या के लिये पूरे अन्न का भली प्रकार प्रबन्ध हो सकता है"।

"हमेशा साधारण तौर पर यह खयाल किया जाता है कि भारत में जिस साल कम वर्षा होती है, उसी साल अकाल अधिकता से पडते हैं। पर यह खयाल गलत है। भारत में ज्यादा तर अकाल उन्हीं सालों में पडते हैं, जिनमें वर्षा बहुत ज्यादा होती है। अड़चन केवल यही है कि कभी वर्षा समय के बहुत पहले हो जाती है और कभी समय के बहुत बाद, और वर्षा का पानी सञ्चित कर के नहीं रखा जाता। वर्षा का पानी फजूल बहकर निकल जाता है और उसका यथेष्ट उपयोग नहीं किया जाता। इससे खराबियाँ पैदा होती हैं। सन् १८७७ में मद्रास में जब बडा अकाल पड़ा था, उस साल खूब वर्षा हुई थी और कोई ६५ इञ्च जल बरसा था। सन् १८६५-६६ में ओडिसा में अकाल था और आश्चर्य यह कि उस साल उक्त प्रान्त में ६० इञ्च वर्षा हुई थी। सन् १८७६ में बम्बई में अकाल का प्रकोप था और उस साल वहाँ ५० इञ्च से कम जल नहीं बरसा था। सन् १८९६-९७ में सयुक्त प्रदेश अकाल से घिरा हुआ था पर उस साल वहाँ वर्षा की कमी न थी। वहाँ ५५ इञ्च वर्षा हुई थी। यह तो हुई छोटे मोटे अकालों की बात। पर अब भारतीय इतिहास के सन् १९०० वाले सबसे बड़े अकाल को लीजिये। इस महा भयङ्कर साल में भी वर्षा की कमी न थी। इस साल पजाब में १८ इञ्च, मध्यप्रदेश में ५२ मध्य भारत में ६३ राजपूताने में २०, बरार में ३१, और बम्बई में ४० इञ्च वर्षा हुई थी। हमने तो यह जाना है कि भारत में वर्षा की कमी कभी नहीं रहती पर वर्षा का पानी सञ्चित करके नहीं रखा जाता। मेजर फिलिप बी० पिम्पसन कहते हैं—'हिन्दुस्थान में उसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिये काफी जल

greatest food—producing lands No matter how severe the drought may be in some parts, there is never a time when India as a whole does not produce food enough for all her people. Indeed, in her worst famine years, she exports food In her worst famine years, there is plenty of food to be obtained, and in the famine areas themselves, for those who have money to buy with. This the famine commissioners themselves have told us" अर्थात् वर्तमान स्थिति में भी, जब कि आबपाशी अपूर्ण अवस्था में है और वर्षा का बहुत सा जल फजूल नष्ट हो जाता है, हिन्दुस्थान धान्य पैदा करने वाले सबसे बड़े देशों में से एक है। चाहे देश के कुछ हिस्सों में वर्षा की कितनी ही कमी क्यों न हो पर ऐसा वक्त कभी नहीं आया कि हिन्दुस्थान ने अपने लिये काफ़ी अन्नपैदान किया हो। सचमुच हिन्दुस्थान ने बुरे से बुरे अकाल के समय भी बाहर अन्न भेजा है। और बुरे से बुरे अकाल के समय भी हिन्दुस्थान में काफ़ी अन्न मिल सकता है। इतना ही नहीं, हिन्दुस्थान के, जिस हिस्से में अकाल रहता है, वहाँ भी उन लोगों को अन्न मिलता है, जिनके पास उसे खरीदने के लिये धन है। यह बात फैमीन कमिशनरों ने भी हमें बतलाई है।

मि० जे० रेम्जे मेकडॉनल एम० पी० महोदय अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "The Awakening of India" में कहते हैं:—

"Even in the worst times there is no scarcity of grain in the famine stricken districts. At the very worst time in Gujrat famine of 1900, it was shown by

अमेरिका २५५	२०७	२११	६७२
हिन्दुस्थान१३२	२५.	७१	२२'८

इन अकों के देखने से ज्ञात होता है कि सन् १८८१ से सन् १६११ तक जहां इग्लैण्ड की जन सख्या ३४ ८ ऑस्ट्रिया की ७८ १, जर्मनी की ३८ ५ हगरी की २६ ८,निदरलैण्ड की ४० ३, अमेरिका के सयुक्त प्रदेश की ६७२ बढ़ी है यहां हिन्दुस्थान की केवल २२ ८ बढी है।

कहा जाता है कि रूस की जन सख्या प्रतिवर्ष २,५००,००० हिसाब से बढती है। सन् १६१६ में रूस की जनसख्या १८२ १८२ २६० थी। अब अगर यह देखा जाय कि प्रत्येक देश में वर्ग मील के पीछे कितनी जनसख्या है तो इसमें भी हम हिन्दुस्थान का नंबर नीचे पाते हैं। इग्लैण्ड में जहा प्रति वर्गमील के पीछे ३७४, ऑस्ट्रिया में २२२, बेल्जियम में ६५८, डेन्मार्क में, २८०, फ्रान्स में १६३, जर्मनी में ३११,हगरी में २७०,इटली में ३१५ जापान में ३५६, निदरलैण्ड में ६०७, स्विटझरलैण्ड में ८५६ मनुष्य बसते हैं, वहाँ हिन्दुस्थान में प्रति वर्गमील के पीछे केवल १५८ आदमियों का हिसाब आता है। जापान की बस्ती का घनत्व हिन्दुस्थान से दूना है और उसकी जमीन के केवल १/६ हिस्से पर खेती होती है, तिसपर भी वहाँ हिन्दुस्थान की तरह कमी अकाल नहीं पडते और वहाँ के लोग "हाय अन्न!" "हाय अन्न!" चिल्लाते हुए नहीं मरते।

डॉक्टर सन्डरलैण्ड अपनी पुस्तक में स्वय ही यह प्रश्न उठाते हैं—"क्या अन्न की कमी के कारण भारत में बहुत अकाल पडते हैं? इस प्रश्न का उत्तर आप यों देते हैं—

"But, even under present conditions with irrigation as imperfectly developed as now and so large a part of the rainfall wasted India is one of the

जापान सन् १६०८	जापान सन् १६१४	१०२७०
४६५८८८०४	५३६६६८८८	
इंग्लैण्ड सन् १८७१	इंग्लैण्ड सन् १६११	११७२६
२१४६५१३१	३१०४५२७०	
हंगरी सन् १८८०	हंगरी १६१०	११४४३
१५७३७२५६	२०८८६४८७	
ब्रिटिशभारत सन् १६०१	ब्रिटिश भारत १६११	५६२३
२३१६१००००	२४४२७००००	

उपर्युक्त अङ्कों के देखने से यह साफ़ तौर से मालूम हो गया होगा कि अन्य देशों की अपेक्षा भारत में लोकसंख्या की वृद्धि कम है। इतने पर भी आश्चर्य है कि हमारे कितने ही पाश्चात्य बन्धु भारत की ग़रीबी तथा यहां पर अकाल पड़ने का कारण बढ़ती हुई लोक-संख्या बतलाते हैं। यहां की लोक-संख्या उस मान से नहीं बढ़ी है, जिस मान से अन्य राष्ट्रों की लोक-संख्या बढ़ी है। हिसाब देखिये।

लोक संख्या की वृद्धि।

	१८८१—१८१६	१८६१-१६०१	१६०१-१६११	जोड़
इंग्लैण्ड	११·७	१२·२	१०·६	३४·८
ऑस्ट्रिया	४१·१	१८·६	१८·१	७८·१
जर्मनसाम्राज्य	६·३	१४·०	१५·२	३८·५
हंगरी	११·०	१०·३	८·५	२६·८
निदरलैण्ड	१२·५	१३·१	१४·८	४०·३

"इसके सिवा खेती की उपज बढाने के और भी साधन हैं। कई वर्षों के पहले सर जेम्स केर्ड (*Sir James Caird*) ने भारत सरकार से खेती में सुधरे हुए वैज्ञानिक साधनों को काम में लाने का अनुरोध किया था। उन्होंने यह दिखलाया था कि वैज्ञानिक पद्धति से अगर प्रति एकड एक बूशेल की भी वृद्धि हो जाये, तो इसमें २२,०००,००० मनुष्यों की अन्न सम्बन्धी आवश्यकता पूरी हो सकती है। " बात यह है कि हिन्दुस्थान में अगर आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से खेती की जावे तो यहा की उपज इतनी बढ सकती है कि यहा की तेंतीस करोड जनता का भली प्रकार निर्वाह होनेके बाद उससे सारे ससार की जनता का भी निर्वाह हो सकता है" ।

"दूसरी बात यह है कि जन-सख्या की वृद्धि केवल भारत वर्ष ही में नहीं हुई है, वरन् ससार के लगभग सभी देशों में हुई है। अङ्कों को देखने से पता लगता है कि अन्य देशों की लोक-सख्या भारत की अपेक्षा अधिक है। नीचे हम इसकी एक तालिका देते हैं —

औसत लोक संख्या की वृद्धि प्रति वर्ष प्रति दस लाख ।

		वृद्धि
जर्मनी सन् १८३७ ३१५८९५४७	जर्मनी १९११ ६४९२५९९३	१४५२८
बेल्जियम सन् १८६६	बेल्जियम सन् १९१२	११९१९
४८२७८३३	७५७१३८७	

जापान सन् १६०८ ४६५८८८०४	जापान सन् १९१४ ५३६६६८८८	१०२७०
इंग्लेण्ड सन् १८७१ २१४६५१३१	इंग्लेण्ड सन् १९११ ३१०४५२७०	११७२६
हंगरी सन् १८८० १५७३७२५९	हंगरी १९१० २०८८६४८७	११४४३
ब्रिटिशभारत सन् १९०१ २३११६१००००	ब्रिटिश भारत १९११ २४४२७००००	५६२३

उपर्युक्त अङ्कों के देखने से यह साफ़ तौर से मालूम हो गया होगा कि अन्य देशों की अपेक्षा भारत में लोकसंख्या की वृद्धि कम है। इतने पर भी आश्चर्य है कि हमारे कितने ही पाश्चात्य बन्धु भारत की ग़रीबी तथा यहां पर अकाल पड़ने का कारण बढ़ती हुई लोक-संख्या बतलाते हैं। यहां की लोक-संख्या उस मान से नहीं बढ़ी है, जिस मान से अन्य राष्ट्रों की लोक-संख्या बढ़ी है। हिसाब देखिये।

लोक संख्या की वृद्धि।

	१८८१—१८१६	१८९१—१९०१	१९०१—१९११	जोड़
इंग्लैण्ड	११.७	१२.२	१०.९	३४.८
ऑस्ट्रिया	४१.१	१८.९	१८.१	७८.१
जर्मनसाम्राज्य	९.३	१४.०	१५.२	३८.५
हंगरी	११.०	१०.३	८.५	२९.८
निदरलैण्ड	१२.४	१३.१	१४.८	४०.३

अमेरिका	२५५	२०७	२११	६७
हिन्दुस्थान	१२२	२५	७१	२८

इन अकों के देखने से ज्ञान होता है कि सन् १८८१ से सन् १९११ तक जहा इग्लैंएड की जन सख्या ३४ ८ ऑस्ट्रिया की ५८ १, जर्मनी की ३८ ५ हगरी की २६ ८,निदरलेएड की ४० ३, अमेरिका के सयुक्त प्रदेश की ६७ २ बढी है वहां हिन्दुस्थान की केवल २२ ८ बढी है।

कहा जाता है कि रूस की जन सख्या प्रतिवर्ष २,५००,००० हिसाब से बढती है। सन् १९१६ में रूस की जनसख्या १८२ १८२ २६० थी। अब अगर यह देखा जाय कि प्रत्येक देश में वर्ग मील के पीछे कितनी जनसख्या है तो इसमें भी हम हिन्दुस्थान का नबर नीचे पाते हे। इग्लैएड में जहा प्रति वर्गमील के पीछे ३७४, ऑस्ट्रिया में २२२, बेल्जियम में ६५८ डेन्मार्क में २८०, फ्रान्स में १९३, जर्मनी में ३११, हगरी में २७०, इटली में ३१५ जापान में ३५६, निदरलैंएड में ६०७, स्विटभरलेएड में २५६ मनुष्य बसते है, वहाँ हिन्दुस्थान में प्रति वर्गमील के पीछे केवल १५८ आदमियों का हिसाब आता है। जापान की बस्ती का घनत्व हिन्दुस्थान से दूना है और उसकी जमीन के केवल १/६ हिस्से पर खेती होती है, तिसपर भी वहाँ हिन्दुस्थान की तरह कभी अकाल नहीं पडते और वहाँ के लोग 'हाय अन्न!" "हाय अन्न!" चिल्लाते हुए नहीं मरते।

डॉक्टर सन्डरलेएड अपनी पुस्तक में स्वय ही यह प्रश्न उठाते हैं—'क्या अन्न की कमी के कारण भारत में बहुत अकाल पडते हैं? इस प्रश्न का उत्तर आप यों देते हैं—

'But, even under present conditions with irrigation as imperfectly developed as now and so large a part of the rainfall wasted India is one of the

greatest food—producing lands No matter how severe the drought may be in some parts, there is never a time when India as a whole does not produce food enough for all her people Indeed, in her worst famine years, she exports food. In her worst famine years, there is plenty of food to be obtained, and in the famine areas themselves for those who have money to buy with. This the famine commissioners themselves have told us" अर्थात् वर्तमान स्थिति में भी, जब कि आवपाशी अपूर्ण अवस्था में है और वर्षा का बहुत सा जल फजूल नष्ट हो जाता है, हिन्दुस्थान धान्य पैदा करने वाले सबसे बड़े देशों में से एक है। चाहे देश के कुछ हिस्सों में वर्षा की कितनी ही कमी क्यों न हो पर ऐसा वक्त कभी नहीं आया कि हिन्दुस्थान ने अपने लिये काफी अन्न पैदा न किया हो। सचमुच हिन्दुस्थान ने बुरे से बुरे अकाल के समय भी बाहर अन्न भेजा है। और बुरे से बुरे अकाल के समय भी हिन्दुस्थान में काफी अन्न मिल सकता है। इतना ही नहीं, हिन्दुस्थान के जिस हिस्से में अकाल रहता है, वहाँ भी उन लोगों को अन्न मिलता है, जिनके पास उसे खरीदने के लिये धन है। यह बात फैमीन कमिशनरों ने भी हमें बतलाई है।

मि० जे० रेम्जे मेकडॉनल्ड एम० पी० महोदय अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "The Awakening of India" में कहते हैं—

"Even in the worst times there is no scarcity of grain in the famine stricken districts. At the very worst time in Gujrat famine of 1900, it was shown by

the official returns that there was sufficient grain to last for a couple of years in the hands of the grain dealers of the district It is therefore, not a scarcity of grain that causes famines In recent times famine has been caused by a destruction of capital and the consequent cessation of the demand for labour High prices coincide with low wages and unemployment and the people starve in the midst of plenty." अर्थात् बुरे से बुरे समय में भी अकाल पीडित ज़िलों में धान्य की कमी नहीं रहती। सन् १६०० में गुजरात में अकाल के अत्यन्त बुरे समय में भी सरकारी लेख के अनुसार वहाँ बनियों के हाथ में इतना अन्न था, जो दो वर्ष के लिये काफ़ी हो सकता था। अतएव धान्य की कमी अकाल का कारण नहीं है। इन दिनों में पूंजी के नाश और मजदूरी के बंद हो जाने से अकाल पड़े हैं। धान्य का भाव बढ जाने से और इसके साथ साथ वेतन की कमी हो जाने से विपुल धान्य के मध्य में रहते हुए भी मनुष्य भूखों मरते हैं।

अब रही यह बात कि क्या किसानों की गरीबी का कारण उनके विवाह शादियों, मरने-जीने तथा अन्य सामाजिक कामों में होने वाला फजूल खर्च है। सन् १८८७-८८ में सरकार ने इस बात की जांच की थी और उपर्युक्त सिद्धान्त का खण्डन प्रकाशित किया था। मि० डिग्बी लिखते हैं:—

"इस प्रकार के बीस केस जाँच के लिये लिये गये। इससे यह मालूम हुआ कि केवल दो ही किसान विवाहादि के लिये कर्ज में फँसे थे। एक तीसरे किसान को भी सामाजिक कार्य्यों की वजह से कुछ कर्ज हो गया था, पर वह उसे भारी नहीं जान पडता था। दस रुपये मासिक की किस्त से वह अपना कर्ज

चुकाता था। खूब बारीकी से जाँच करने पर मालूम हुआ कि विवाहादि सामाजिक कार्यों में जो खर्च होता है उससे किसान ज़्यादा क़र्ज़दार नहीं होते। उनके क़र्ज़ का केवल १/१० हिस्सा इन कार्य्यों में खर्च होता है।" मि० थार्नबर्न ने पंजाब के किसानों के सम्बन्ध में यह मत प्रकाशित किया था:—

"७४२ कुटुँबों की जाँच की गई। इनमें से केवल तीन ही ऐसे मिले जो विवाहादि कार्य्यों के खर्च के कारण क़र्ज़दार थे।" जांच से यह बात सिद्ध नहीं होती कि विवाहादि कार्यों के खर्चही से किसान अधिकांश रूप से क़र्ज़दार हैं। यह और भी खुशी की बात है कि यह खर्च दिन पर दिन कम हो रहा है। नीचे का ब्योरा देखिये।

	किसानों का पूरा क़र्ज़	विवाह खर्च	प्रति सैंकड़ा
सर्कल १	१,१४२,७३७)	६४६१)	६॥) रुपये
सर्कल २	१७६८५३)	१२४१८)	७) ,,
सर्कल ३	८८२३४)	६६८७)	११) ,,
सर्कल ४	१८८१४५)	१५१६१)	८) ,,

औसत ८) रुपये से कम है।

अकाल के सच्चे कारण।

इतना लंबा विवेचन करने के बाद भी अगर अकाल के सच्चे कारणों का पता न लगा सके तो ऊपर जो कुछ लिखा गया उससे कुछ सार न निकलेगा। हिन्दुस्थान में अकाल क्यों पड़ते हैं, इसके सम्बन्ध में न्यूयार्क के डॉक्टर संडरलैण्ड लिखते हैं:—

"What then is the cause of the famines in India. The real cause is the extreme poverty of the people. It is a poverty so severe that it keeps a majority of all on the verge of suffering in the years of plenty." अर्थात् तब हिन्दुस्थानमें अकाल के कारण क्या हैं? इसका वास्तविक कारण लोगों की अत्यन्त दरिद्रता है। यह दरिद्रता इतनी घोर है कि अच्छे साल में भी अधिकांश जनता दुःख में रहती है।"

होम चार्जेज़।

हिन्दुस्थान किस प्रकार से दरिद्र किया गया; किस प्रकार से उसका धन चूँसा गया; किस प्रकार उसके संसार प्रख्यात बढ़ते हुए उद्योग, धन्धे डुबाये गये, आदि अनेक बातों का ज्ञान गत अध्यायों के पढ़ने से पाठकों को हुआ होगा। इस अध्याय में भी ऐसी प्रकार की एक दुःख पूर्ण आर्थिक लूट का विवेचन है। हमारे कुछ पाठकों को शायद मालूम होगा कि भारत सरकार को अपनी वार्षिक आमदनी में से कई करोड रुपया प्रति साल होम चार्जेज़ के लिए इंग्लैंण्ड को देना पडता है। भारत के प्रसिद्ध नेता स्वर्गीय श्री युत दादाभाई नौरोजी ने इस होम चार्जेज का नाम "भारत की लूट का रुपया" रखा है।

भारतवर्ष से सम्भवतः सन् १७५७ से होम चार्जेज़ के रुपये विलायत जाने लगे हैं। तब से अब तक कितने रुपये गये हैं, इसका ठीक ठीक हिसाब बतलाना कठिन

हैं। कुछ अंग्रेज लेखकों ने इस पर कुछ प्रकाश डाला है। उसी के आधार पर हम यहाँ इसका कुछ ब्यौरा प्रकाशित करते हैं।

माँटगोमेरी मार्टिन नामक एक युरोपियन सज्जन ने सन् १८३८ में लिखा था.—

"This annual drain of £ 3,000,000 on British India amounted n thirty years at 12 per cent. (the usual Indian rate) componund interest to the enorm ous sum of £ 723,997,917 sterling.... So constant and accumulating a drain even on England would soon have impoverished her, how severe then must be its effects on India, where the wages of labuorer is from two pence to three pence a day? अर्थात् हिन्दुस्थान से प्रति साल ३,०००,००० पौंड की रकम जो (होम चार्जेज के लिये) विलायत जाती है, उसका १२ पौंड प्रति साल प्रति सैकडे के चक्रवर्धी ब्याज के हिसाब से तीस वर्ष में ७२३, ९९७, ९१७ पौंड हो जाते हैं। अगर इस प्रकार से धन का प्रवाह निरन्तर इंग्लैण्ड से चला करे, तो वह भी शीघ्रही दरिद्र हो जावे। ऐसी दशा में हिन्दुस्थान पर इसका कितना बुरा प्रभाव पडता होगा, जहाँ के मजदूर दो पेन्स से तीन पेन्स (आने) तक प्रति दिन पाते हैं।" मि० डिग्बी लिखते हैं.—

"प्लासी के युद्धकाल से लेकर वाटरलू के युद्धकाल तक ५००,०००,००० पौंड से लेकर १,०००,०००,००० पौंड तक हिन्दुस्थान से होम चार्जेज विलायत गये ॥"

उन्नीसवीं सदी में हिन्दुस्थान के होम चार्जेज की पूर्ति में कितना

cramped by a sordid system of misrule to which the interests of millions have been sacrificed for the benefits of the few" अर्थात् भारत के शांतिपूर्ण प्रसन्नता के दिन अब खतम हो चुके। एक समय भारत जिस वृहत सम्पत्ति का अधिकारी था, उसका अधिकांश विलायत में खींच लिया गया। बुरे शासन की ओछी नीति के कारण भारतवर्ष का काम करने की शक्ति संकुचित हो गई है। इग्लैंड के थोड़े से लोगों के फायदे के लिये भारत के करोडो मनुष्यों के स्वार्थ की बलि हो रही है।" सर जॉर्ज विङ्गेट महोदय ने इस होमचार्ज को Cruel burden of tribute अर्थात् नजराने का निर्दयता पूर्ण बोझ कहा है। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मिल महोदय ने इसके लिये अपने इतिहास में कहा है —

"It is an exhausting drain upon the resources of the country, the issue of which is replaced by no reflex, it is an extraction of the life blood from the veins of national industry, which no subsequent introduction of nourishment is furnished to restore" इसका सारांश यह है कि धन की इस प्रकार लूट देश की धन सम्पत्ति की जड काटने वाली है। इस लूट से जो हानि हो रही है, उसकी पूर्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। इस प्रकार धन की लूट जाति की कर्म-शक्ति रूपी नसों से प्राण रूपी सार रूप रक्त को निचोड डालने का एक ढङ्ग है। इस प्रकार भयानक रुप से रक्त चूँस लेने के पश्चात् चाहे कितना ही बल-वर्धक पथ्य क्यों न देने का प्रबन्ध कीजिये, पर उससे फिर कभी भी तन्दुरुस्ती नहीं लौट सकेगी।

भारत के पशुओं का नाश।
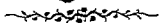
जिस प्रकार अनाज देश की सम्पत्ति समझी जाती है उसी प्रकार पशु भी देश की बड़ी भारी सम्पत्ति है। विशेष कर भारत के लिये जो कि कृषि प्रधान देश है, पशुओं का ह्रास बड़ा नाशकारी है। शोक है कि भारत में दिन ब दिन पशुओं की संख्या भी घट रही है। दूसरे देशों के मुकाबले में भारत पशुधन में भी बड़ा दरिद्र हो गया है।

सन् १९१७ में इंग्लैण्ड में प्रति मनुष्य पीछे एक पशु था, आस्ट्रेलिया में १७, अमेरिका में २४ फ्रांस में १३, पर अभागे भारत में प्रति मनुष्य पीछे केवल ७।

सन् १९०० में आस्ट्रेलिया की जन संख्या ४ लाख थी पर वहाँ उसी वर्ष में पशुओं की संख्या ११ करोड़ ३५ लाख से भी अधिक थी। यदि इसकी भारतवर्ष की जन संख्या से तुलना कीजाय तो भारतवर्ष में २६,२० लाख पशु होने चाहिये थे, किन्तु थे केवल ९०७ लाख थे अर्थात् अढाई अरब पशुओं की कमी थी।

अब पशुओं की अपेक्षा, कृषि प्रधान भारत के लिये गौ एक ऐसा पशु है जिसपर भारत का जीवन मरण निर्भर है। हिन्दुओं के लिये दूध और घी से बढ़कर पुष्टिकारक और बलकारक दूसरा पदार्थ नहीं है। पर यदि यही दिन पर दिन कम होता जाय तो हिन्दू सन्तानों की क्या दशा होगी, सो पाठक स्वयंही विचार सकते हैं। आज इस दूध और घी की कमी से भारत संतान कितनी दुर्बल, शक्तिहीन, मंद बुद्धि हो रही है

आर्थिक नुकसान हुआ, इसके सम्बन्ध में मार्टिन साहब ने अच्छा प्रकाश डाला है। आप के हिसाब के अनुसार सन् १८३४ तक चक्रवर्धी ब्याज सहित इस देश से इंग्लैंएड भेजे, हुए रुपयों का परिमाण ५०,०००,०००,००० रुपये ठहराया गया है। उसके आगे सन् १८५७ के गदर के समय तक २५ वर्षों में ३४ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष और देश से निकल गया। गदर के पीछे के २२ वर्षों में कितने रुपये भारतवासियों से निचोड़े गये, इसका हिसाब नहीं मिलता। किन्तु उस समय भी होम चार्जेज़ का हिसाब क्रमशः बढ़ रहा था। इसके बाद ३७ वर्ष तक कम से कम ४५ करोड़ रुपये के हिसाब से १६ अरब और ६० करोड रुपया इस देश से होम चार्जेज़ के लिये इंग्लैंएड गये! अगर इन रुपयों का चक्रवर्धी ब्याज जोडकर हिसाब लगाया जावे तो यह रकम कितनी बढ सकती है, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर लें। इसके बाद कौन कौन से सालों में कितनी कितनी रकम होम चार्जेज़ के लिये इंग्लैंएड गई इसका ब्यौरा नीचे दिया जाता है।

सन्	करोडरुपया	सन्	करोडरुपया
१६०२–३	२७ ७	१६०६–१०	४१·१
१६०३–४	३४ ८	१६१०–११	३६·१
१६०४–५	३६ ६	१६११–१२	३३·६
१६०५–६	४७·४	१६१२–१३	३८·७
१६०६–७	५०·१	१६१३–१४	४६ ६
१६०७–८	२२·६	१६१४–१५	११·५
१६०८–६	२०·८	१६१५–१६	३०·३

उपर्युक्त अंकों से पाठकों को मालूम हुआ होगा कि हिन्दुस्थान से द्रव्य का कितना ज़बरदस्त और असीम धन प्रवाह इंग्लैण्ड की ओर प्रवाहित किया जाता है। आजतक होम चार्जेज़ में करोड़ों ही नहीं बल्कि अर्बों रुपये खींच लिये गये। दुर्बल देश पर यह कितना भारी बोझा है, इसका अनुमान समझदार पाठक स्वयं करलें। यह भारत का धन चूँसना नहीं तो और क्या है? आश्चर्य यह है कि भारत के इस असीम दान का फल उसको कुछ भी नहीं मिलता। गोरे लोगों की पेनशनों तथा भत्ते आदि के बहाने इतना असीम द्रव्य इस गरीब और हत भाग्य देश से खींच लिया जाता है। मि० मार्टिन कहते हैं:—

"I do not think it possible for a human ingenuity to avert entirely the evil effects for a continued drain (for half a century) of three or four million pounds a year from a distant country like India and which is never returned in any shape" अर्थात् आधी सदी से तीस या चालीस लाख पौंड प्रति साल के हिसाब से धन प्रवाह निरन्तर विदेश जाने से भारतवासियों पर जो बुरा प्रभाव पड़ा है, उसे मेरी समझ में, पूर्ण रूप से दूर करना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। इस ढेर के ढेर धन के बदले में उसे इग्लैन्ड से किसी प्रकार का बदला नहीं मिलता।

"सर जॉन शोर महोदय ने जो भारत के गवर्नर जनरल रह चुके हैं, अपने "Notes on Indian affairs" में लिखा था—

The halcyon days of India are over. She has been drained of a large proportion of the wealth she once possessed, and her energies have been

सो प्रत्यक्ष ही है। प्राचीन काल में दूध और घी की बहुत विपुलता थी और इसीलिये उस जमाने के लोग हृष्टपुष्ट वीर, विद्वान और बड़े साहसी होते थे। मुसलमानी शासन में भी दूध और घी की प्रचुरता थी। पर जबसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का यहाँ पदार्पण हुआ है तबसे दिनों दिन दूध और घी की कितनी कमी होती जा रही है सो देखिये —

वस्तुओं का नाम	अलाउद्दीन का राज्यसमय	ई० इण्डिया क० सन् १८५१	सन् १८६०	वर्तमान सन् १९२१
	फी० रुपया	फी० रु०	फी० रु०	फी० रु०
दूध	६ मन	४ मन	२२ सेर	४ सेर
घी	२४ सेर	४ सेर	२ सेर	६ छटाँक

अर्थात् इस समय यदि घी के विचार से तुलना की जाय तो आज कल का एक रुपया उस जमाने के १ पैसे के बराबर है। फिर भी कहा जाता है कि इस समय आर्य्यावर्त बड़ा सुखी है। अर्थ शास्त्र के जानने वाले यह कहेंगे कि यदि पदार्थ महँगे हो गये हैं तो रुपया भी तो सस्ता हो गया है परन्तु क्या अब हमारे पास ६४ गुना रुपया है। यदि इतना धन होता तो यह हाहाकार नहीं सुनाई देता।

अठारहवीं शताब्दि में एक अंगरेज महोदय भारत में घूमने आये थे। वे लिखते हैं कि कलकत्ते शहर में दूध की इतनी प्रचुरता थी कि पानी के समान दूध के पौंसले मुफ्त में दूध पिलाने के लिये लोगों की तरफ से खुले हुए थे। इससे पता लगता है कि दूध इस कदर होता था कि लोगों से पीये नहीं पीया जाता था। पर अब इस समय की हालत देखिये। सन् १९१३ में यहाँ पर कुल ४ करोड़ गायें और भैंसे थीं। यदि ये औसत दर्जे आधे साल दूध दें तो

औसत निकालने से १५ आदमियों के पीछे एक गाय या भैंस पड़ती है।

अब हमें यह देखना है कि इस भारी कमी का कारण क्या है? मुख्यतया चार कारण नज़र आते हैं:—(१) चमड़े का व्यापार (२) गोरे सिपाहियों के खाने के वास्ते गौओं का वध (३) कुर्बानी के लिये गौओं का वध (४) गौओं का विदेश भेजा जाना। कमी होने का सब से बड़ा कारण गौओं का वध है। पाठक पूछ सकते हैं कि क्या ब्रिटिश शासन के पहले गौओं का वध नहीं होता था! अवश्य होता था, पर इस क़दर नहीं जितना कि आजकल होता है। कई उदार मुसलमान बादशाहों ने मसलन अकबर ने तो गौ कशी बन्द कर देने का फ़रमान ही जारी कर दिया था। यह भी सुना गया है कि बाबर बादशाह व बहादुरशाह आखरी बादशाह ने भी ऐसा ही फ़रमान जारी किया था। पर यदि कई बादशाहों के ज़माने में गौओं का वध भी होता था तो केवल कुरबानी के लिये पर अब तो (१) चमड़े और माँस के व्यापार के वास्ते (२) सिविल तथा गोरे फौजी सिपाहियों के वास्ते लाखों गऊओं का वध होता है, जिसे देख कर हृदय थर्रा उठता है।

गौ हत्या का सबसे मुख्य कारण चमड़े और सूखे हुए माँस का व्यापार है। मि० ह्यूम अंडर सेक्रेटरी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि सन् १८६५ में ६० लाख खालें बाहर जाया करती थीं; परन्तु १९१४ में यह ४ करोड़ तक पहुँच गई। यदि यह व्यापार बिलकुल बन्द कर दिया जाय तो भारत से भक्ष्य पदार्थों की महँगी सदैव के लिये दूर हो जाय। और दूध, घी की बहुतायत के साथ ही खेतों के लिए बैलों की भी न्यूनता न रहे।

पिछले पाँच वर्षों में १८८००० हड्रेडवेट खालें दूसरे देशों को भेजी गई। ६ खालों का बोझ एक हड्रेडवेट के बराबर होता है। इस हिसाब से ४७३०८८० पशु मारे गये होंगे। इसके सिवा २७७७६१६ पशुओं का चमडा पन्जाब के अन्दर ही एक स्थान से दूसरे स्थान को रेलवे द्वारा भेजा गया था। स्थानिक जूतियाँ चरसे जीन आदि में जो चमडा खर्च होता है वह इससे भिन्न है। इस हिसाब से यह कह सकते हैं कि पिछले पाँच वर्ष में १॥ करोड से कम पशुओं का वध नहीं हुआ। इन खालों में ऐसी भी खालें होंगी जो स्वाभाविक मृत्यु से मरे हुए पशुओं की होंगी। परन्तु इतने बडे व्यापार से यह अनुमान हो सकता है कि चमडे के वास्ते भी कितने पशु मारे जाते हैं।

गौ वध का दूसरा कारण यह है कि इस गौ का माँस फ़ौजी गोरे खाते हैं। सन् १९१० में इन गोरों की संख्या ७८११२ थी। यदि प्रति दिन प्रति जन आध सेर माँस रख लिया जाय तो सब गोरों के वास्ते ९४६ मन गोमाँस रोज खर्च होगा। मि० जस्सावाला ने भी हिसाब लगाया है कि केवल योरोपियन सिपाहियों के लिये डेढ लाख पशु प्रति वर्ष मारे जाते हैं। सरकार से कई दफा इस भारी गौ हत्या को रोकने के लिये या इन सिपाहियों के लिये आस्ट्रेलिया आदि देशों से माँस मँगवाने के लिये प्रार्थना की गई, पर सब व्यर्थ हुई।

गौ वध का तीसरा कारण यह है कि हमारे मुसलमान भाई विशेष कर ईद के दिन गाय की कुर्बानी करते हैं। परन्तु यदि हम उन गौओं का ही विचार करें जो प्रति दिन गोरे सिपाहियों के लिये मारी जाती हैं, तो उनकी संख्या कुरबानी की गौओं की संख्या से बढ जाती है। पर धन्य है हमारे सर्व

श्रेष्ठ नेता महात्मा गाँधीको जिन्होंने हिन्दू और मुसलमानों को ऐसे प्रेम की डोरी से बाँध दिया है कि जिसके कारण हमारे मुसल मान भाई दिन प्रति दिन हिन्दुओं के चित्त को दुखाने वाली गौ माता की हत्या कम करते जा रहे हैं। मौलाना अब्दुल बारी ने लखनऊ से और ख़्वाजा हसन निजामी ने देहली से यह फतवे दिये हैं कि ईद के दिन गाय की कुर्बानी न होना चाहिये। मुसलिम-लीग के अमृतसर के अधिवेशन में भी इसी आशय का प्रस्ताव पास किया गया है और अमीर काबुल ने तो अपने सारे राज्य में गौ का वध बंद कर दिया है। निजाम हैदराबाद ने ईद के दिन गाय की कुर्बानी बंद कर दी थी! फिर भी यदि कोई मुसलमान भाई नासमझी से गाय की कुर्बानी करते हों तो हमें उनसे लड़ना नहीं चाहिये। बड़े प्रेम से अदबसे उन्हें ऐसा न करने की प्रार्थना करना चाहिए।

गौओं की कमी का एक और भी कारण है और वह इन का विदेशों में ले जाया जाना है। गवर्नमेंट से गौवध बन्द करने के लिए कई बार प्रार्थनाऐं की गईं। पर देश के दुर्भाग्य से सब निष्फल हुईं। गवर्नमेन्ट किसी के कहने पर कुछ करना अपने गौरव की हानि समझती है और जो यह अपनी बुद्धिमत्ता से करती है वह कुछ समय का ऐसा फेर है कि उलटा ही पड़ता है। इसलिये हमें स्वयं ही इसको बेचने से रोकने का यत्न करना चाहिये।

पोतनिर्माण और सामुद्रिक व्यापार।

भारतवर्ष में पोतनिर्माण की विद्या अति प्राचीन काल से विद्यमान है। अति प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में भी "शत-पतत्र युक्त" समुद्र-गामिनी नौकाओं का वर्णन देखा जाता है। ऋग्वेद मंत्र १।११६।५ में अगाध समुद्र को चीरते हुए सौ पतवारों से सज्जित जहाज का वर्णन है। महाभारत में भी कई जगह इनका उल्लेख है। महावस नामक बौद्ध इतिहास में एक जगह वर्णन है कि वगनिवासियों ने सिंहल द्वीप पर जलके मार्ग से जहाज़ों पर सवार हो हमला कियाथा और उसे जीता था। मतलब यह है कि अंगरेज़ों के आने के हज़ारों वर्ष पहले भी भारतवर्ष ने सामुद्रिक व्यापार में गज़ब की उन्नति की थी। एक लेखक ने भारतवर्ष के "पोतनिर्माण और सामुद्रिक व्यापार सम्बन्धी अपने लेख में लिखा है "भारतवर्ष के व्यापारी वर्ग के उत्साह तथा शक्ति, केवटों की कुशलता तथा साहस और पोतनिर्माण और सामुद्रिक व्यापार की गजब की उन्नति के कारण ही सैंकड़ों वर्षो तक भारत पूर्व के समुद्रों पर प्रभुत्व जमाता रहा और 'पूर्वीय समुद्रों की महारानी' के पद पर अधिष्ठित हो गौरव से अपना मस्तक ऊंचा उठाये रहा"।

कलकत्ते के प्रोफ़ेसर राधामुकुन्द मुकर्जी ने अपनी 'A History of Indian Shipping and maritime Activity from the earliest times नामक पुस्तक में देशी और वैदेशिक लेखों के प्रमाणों द्वारा ऊपर लिखी बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। सीरिया के सम्बन्ध में प्रमाणभूत

माने जाने वाले डाक्टर सायस को प्रमाण देकर आपने यह सिद्ध किया है कि ई० सन् से ३००० पूर्व भारत का बैबिलोन से व्यापारिक सम्बन्ध था और यह व्यापार जलमार्ग से ही होता था।

वेनिस निवासी सेसर डी० फेडिको नामक प्रवासी (सन् १५६५) लिखता है कि बगाल के पूर्वी भागों में जहाज बनाने का सामान इतना विपुलता से पाया जाता है कि तुर्की के सुलतान को बगाल के बने जहाज् सिकदरिया के बने जहाजों से सस्ते पडे।" स्वय अँग्रेजों के शासन काल के पूर्व भाग में जहाज बनाने का उद्योग अच्छी दशा में था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी बहुत से जहाज यहां बनवाये थे। टाइम्सओफ इण्डिया में अठारहवीं सदी में भारतीय जहाज निर्माण विद्या के सम्बन्ध में एक लेख निकला है। लेखक का कहना है—

"सन् १७९५ में भारत के बने हुए जहाज कम्पनी के काम में आते थे। ये भारत में इग्लैण्ड से माल लाद कर भारत को लाते थे। इन जहाजों को लोग देशी जहाज कहते थे। सन् १७९५ में ऐसे २७ जहाज भारत से चाँवल लाद कर योरप ले गये थे, और वहां तक चाँवल इत्यादि भारी बोझा पहुचाने का किराया १६ पौंड प्रति टन के हिसाब से और हलके बोझ के लिये २० पौंड फी टन के हिसाब से लेते थे। अनुमान किया गया है कि इन जहाजों से काम लेने के कारण एक वर्ष में दो लाख पौंड की बचत हुई थी। ये जहाज सागौन लकडी के बनाये जाते थे। उन दिनों अच्छे अच्छे जहाज बनाने वाले कारीगर मौजूद थे। एक लेखक का कथन है—"बम्बई में जो जहाज बनते थे वे उत्तम और मज़बूत होते थे और उनमें कारीगरी भी उच्च कोटि की होती थी।

इसके अतिरिक्त भारत के जहाज बनाने वाले कारीगरों ने भी ब्रिटिश जहाजी बेड़े के लिये कुछ जगी जहाज और पनडुब्बियाँ भी बनाई थीं जो सब तरह से उत्तम थीं।" सन् १७७७ में "स्वैलो" नाम का जहाज बनाया गया था और यह जहाज १८२३ तक काम देता रहा और आगे भी देता पर उस वर्ष वह हुगली में डूब गया था। यह जहाज कई दफा भारत से इग्लैंड और इग्लैंड से भारत आया गया था। इससे भारत के बने हुए जहाजों की मजबूती का अनुमान किया जा सकता है।"

सन् १७३५ तक जहाज बनाने का कारखाना सूरत में रखा गया था। तदनन्तर वह बम्बई बदल दिया गया। सूरत के कारखाने के निरीक्षक (foreman) एक पारसी सज्जन थे। सन् १७५४ में इस निरीक्षक के पोते लावजी ने दो जहाज बनवाये जिनमें से प्रत्येक ६०० टनका था। तदनन्तर अठारहवीं सदी के अन्त में तथा उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में इसी कारखाने में एक भारतीय निरीक्षक की देख रेख में ६ जहाज, ७ फ्रिजेट और छह छोटे जहाज अंग्रेजी नौसेना के लिये बनवाए गये थे। सन् १८०२ में सम्राट की नौसेना के लिये बम्बई के कारखाने से जगी जहाज (man-of-war) बनवाये गये थे। उन सब का एक पारसी सज्जन ही निरीक्षक था। सन् १७३६ से सन् १८३७ तक भारतवासी ही निरीक्षक (master-builder) के पद पर अधिष्ठित थे।

एक महाशय ने (१७७७ में) बम्बई के जहाज बनाने के कारखाने का वर्णन किया है —

"यह कारखाना बड़ा और सुसज्जित है और इसमें जहाज बनाने के लिये काम में आने वाले आवश्यक पदार्थ तथा लगर बनाने की कढ़ियाँ (forges) उत्तम

प्रकारेण बने भरे पड़े हैं। आकार तथा सहूलियत के मानसे इसकी बराबरी करने वाला कारखाना यूरोप के किसी भाग में नहीं हैं"। बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बहुत से जहाज़ बनाने के कारखाने थे। परन्तु धीरे धीरे कलकत्ता ही इस उद्योग का केन्द्र बन गया।

सन् १७८१ से सन् १८०० तक कलकत्ते में १७०२० टन के ३५ जहाज़ बनाये गये थे। सन् १८०१ में १००७६ टन के १६ जहाज़, व सन् १८१३ में १०३७६ टन के २१ जहाज़, कलकत्ते के कारखाने में ही बनाये गये थे। सन् १८०१ से सन् १८२१ तक हुगली में १०५६५३ टन के २३७ जहाज़ बने थे। औसत कीमत प्रति टन ३०० रुपये (उस समय के २० पौंड) के हिसाब कुल लागत २,०००,००० पौंड लगी थी।

भारत के गवर्नर- जनरल लॉर्ड वेलेस्ली सन् १८०० में लिखते हैं:—"कलकत्ता बंदर में पाये जाने वाले खानगी जहाज़ों (private tonnage) के एवं जहाज़ बनाने की विद्या की जो बंगाल में बहुत ऊंचे दरजे को पहुंच चुकी है, पूर्णता को देखकर दावे के साथ कहा जा सकता है कि बंगाल के अँगरेज़ सौदागरों का माल लण्डनके बंदर में पहुँचाने के लिये यह बंदर चाहे जितने टन का जहाज़ दे सकता है"।

भारत के बने जहाज़ों के सम्बन्ध में एक फ़रासीसी एफ० वॅल्टेज़र सॉलविन्स सन् १८११ में लिखता है:—

"प्राचीन काल में भारतवासी जहाज़ बनानेकी विद्या में पारंगत थे। आज भी हिन्दू यूरोप को इस सम्बन्धमें बहुत कुछ सिखा सकते हैं। और अंगरेज़ों ने हिन्दुओं से बहुत कुछ सीखा भी है। भारतवर्ष के बने जहाज़ उत्तम और मज़बूत होते हैं और कारीगरी के अपूर्व नमूने हैं"।

लेफ्टिनेन्ट कर्नल याकर साहब [१८८१] लिखते हैं— "बबई का कारखाना (docks) अभी थोड़े ही दिन पहले बनवाया गया है। इस कारखाने में हर एक आकार और शक्तिवाला जहाज रह सकता है।"

जहाजों की मजबूती के सम्बन्ध में आप लिखते हैं— "ऐसा अनुमान किया जाता है कि अंगरेजी नौसेना का प्रत्येक जहाज प्रति बारहवें वर्ष नवीन बनवाया जाता है। यह बात सर्व सम्मत है कि सागेवान के बने जहाज ५० वर्ष से भी ज्यादा टिकते हैं। बम्बई के बने जहाज १४-१५ वर्ष तक काम में लाये जाने पर भी अँगरेज़ी नौ सेना में खरीद किये गये हैं और पूर्ववत् सुदृढ समझे गये हैं। यूरोप का बना कोई जहाज छह बार से अधिक यात्रा नहीं कर सकता; अर्थात् छह बार सफर करने पर वह निरुपयोगी हो जाता है पर मेरा अनुमान है कि भारत का बना ह्यूज नामक जहाज भारत से विलायत आठ बार जाने पर भी नौ सेना में मोल लिया गया'। उक्त बाकर साहब जहाजों की कीमत के सम्बन्ध में लिखते हैं।

"इग्लैण्ड के कारखाने में बने जहाजों की अपेक्षा बबई में बने जहाज की कीमत १/४ कम लगती है। तिस पर भी इग्लैण्ड के बने जहाज प्रति बारहवें वर्ष बदलने पड़ते हैं अतएव खर्च तीन गुना हो जाता है।

जहाज़ बनाने के उद्योग का नाश।

वाकर महोदय के ऊपर लिखे अनुसार यदि काम होता तो विलायत वालों को भी कम कीमत में मजबूत जहाज़ मिल जाते और भारतवासियों का हुनर नष्ट न हो कर इनकी भी जीविका बनी रहती। पर खेद है कि ऐसा नहीं किया गया।

प्रोफ़ेसर मुकर्जी का मत है कि सन् १८४० से इस उद्योग का ह्रास होने लगा। इसके बाद एक भी बड़ा जहाज़ नहीं बनाया गया। भारत का राज्याधिकार कम्पनी के हाथ से निकल कर इंगलैंड के राजा के हाथ में चले जाने के थोड़े ही समय बाद अर्थात् सन् १८६३ में यह बिलकुल बंद कर दिया गया।

मि० डिग्बी ने अपनी पुस्तक के १०१ पृष्ठ में इस धंधे को नष्ट करने के कारणों पर विचार किया है। इन कारणों में से एक कारण यह भी था कि भारत में बने जहाजों पर भारतवासियों को ही नोकर रखना पड़ता था और यह बात अयोग्य, हानिकारक और देशहित के विरुद्ध (unpatriotic) है। यद्यपि जहाज बनाने के कारखाने इससे ६० वर्ष बाद बंद कर दिये गये थे तो भी पूर्वी देशों में आने जाने वाले जहाज़ों पर अनेक भारतीय मल्लाह नौकर रखे जाते थे।

मि० डिग्बी लिखते हैं कि मुझे इस बात को जान कर महान आश्चर्य हुआ कि पश्चिम के समुद्रों की रानीने पूर्व के समुद्रों की रानी को मार डाला।

मि० टेलर ने भी अपने लिखे भारतवर्ष के इतिहास में इस धन्धे के नाश होने के कारणों पर प्रकाश डाला है।

आपने बतलाया है कि जब भारत के बने जहाज माल लादकर विलायत पहुंचे तो वहां के व्यवसायियों में ब हलचल मच गई। लंडन के जहाज़ बनाने वालों ने शोर मचाना शुरु किया कि हम लोगों का रोजगार मारा गया और अब हम लोगों को सपरिवार भूखों मरना होगा।

यह बातें सोचकर कम्पनी के स्वदेश भक्त सदस्यों ने स्थिर किया कि भारत का उत्तमोत्तम सामान विलायत ले जाकर वहीं जहाज़ बनाये जायँ और इसीलिये यहां से सागौन की लकड़ी विलायत भेजी जाने लगी और आज भी भारत से प्रति वर्ष लाखों मन लकड़ी विलायत जाती है।

इस नीति से भारत की प्राचीन नौ विद्या लुप्त होगई। नीचे लिखे अंकों से पता लगेगा की भारतीय नौकाएँ किस प्रकार कम होती गईं।

सन	जहाज़ों की संख्या
१८५७	३४२०६
१८४६	२३०२
१९००	१६७६
१९०१	१०४६

यह दशा तो हुई १९०१ तक की। सन् १९१० की क्या हालत थी इस विषय में मि० मुकर्जी लिखते हैं—

"हमारा सामुद्रिक व्यापार ११,८००००० टन का है किन्तु हमारे देशी जहाज़ कुल ९५००० टन के हैं अर्थात् ८ सैंकड़ा। आजकल भारतवर्ष के बने जहाज़ों की संख्या १३० है उसमें से प्रत्येक ८० टन का है। ये जहाज़ सामुद्रिक व्यापार में लगे हुए हैं। ७२८० जहाज़ (प्रति जहाज़ २० टन का है,)

भारत के किनारे के बंदरों से व्यापार करने में लगे हैं। भारत का जहाज़ बनाने का कारखाना ठीके पर दे दिया गया है। जिसमें १४३२१ आदमी काम करते हैं और जो प्रति वर्ष १२५ नौकाएँ (Galbits) बनाता है।

यदि भारतवासी मल्लाह के ओहदे को देखा जाय, तो बेचारे को लोस्टन (Lostan) या ऊँचे से ऊंचा (Tindal) का पद ही मिलता है। सन् १९१२-१३ में भारतवर्ष के बंदर में कुल ४४०८ जहाज (पतवार और भाफ़ के Sail and Steam) आये थे। जो ८७२७६२७ टन के थे। और भारतवर्ष के बंदर में से कुल ४३४१ जहाज (८७५६७६४ टन) बाहर गये थे। इनमें अंग्रेज़ी भारत के (British Indian) अनुक्रम से ३१३ और २६६ थे, जो १८८६७७ और १७४२८६ टन के थे। और भारत के कारखानों में बने ८२३ और ७६५ जहाज़ थे, जो अनुक्रम में ६५०७६ और ६२८२२ टनके थे।

ऊपर दिये हुए अंकों से साफ़ मालूम होता है कि दिन पर दिन भारतीय नौ व्यापार का किस प्रकार नाश होता गया है। सन् १९०४ से सन् १९१५ तक अर्थात् इन दस वर्षों में कई अरब रुपयों का माल विदेशी जहाज़ी कम्पनियों ने दूसरे देशों में ले जाकर जो नफ़ा उठाया उसका अधिकांश यदि यहां का नौ शिल्प नष्ट नहीं किया जाता तो यहाँ के लोगों को ही मिलता। पर इस प्राचीन पोत-निर्माण की विद्या का नाश हो जाने से सब रुपया विदेश चला जारहा है और भारतवासी दिनों दिन भिखारी होते चले जारहे हैं।

हमारी शिक्षा

दासत्व के परिणाम वाली आज है शिक्षा यहाँ !
है मुख्य दोही जीविकापे भृत्यता, भिक्षा यहाँ ।
या तो कहीं बन कर मुहर्रर पेटका पालन करो ।
या मिल सके तो भीख माँगो अन्यथा भूखों मरो ।

शिक्षा ही देशोन्नति का प्रधान साधन है। जो शिक्षा देश में नया जीवन पैदा कर सके, देश को एकता के सूत्र में बांध सके और उसे स्वाभिमान से संसार के अन्य राष्ट्रों के सन्मुख खड़ा होने में समर्थ कर सके वोही सच्ची शिक्षा है। अब हमें यह देखना है कि वर्तमान अंग्रेजी शिक्षा हमें इस ध्येय पर कहां तक पहुँचाती है। यद्यपि वर्तमान शिक्षाप्रणाली ने हमको अपनी हीन अवस्था का ज्ञान करा दिया है, और इसके लिये हम उसके कृतज्ञ हैं तथापि इस शिक्षा से हमारी बहुत अधिक हानि हुई है और सरकार को अधिक लाभ हुआ है।

अंग्रेज़ी शिक्षा का आरम्भ

मुसलमानी शासन छ सात सौ वर्ष तक रह कर जब जीर्ण दशा को पहुँच रहा था, राज्य के कल पुरजे ढीले हो रहे थे, जिस समय एक तरफ से मराठे और दूसरी तरफ से सिख मुसलमानी शासन को नष्ट करने का उद्योग कर रहे थे उस

समय बंगाल की खाड़ी से आये हुए अंगरेज़ बहादुरों को कूट नीति का इस रंग भूमि में प्रवेश हुआ। और धीरे धीरे सारे भारत में इनका रंग जमगया। अंग्रेज़ों को अपना काम चलाने के लिये आदमियों को आवश्यकता हुई। अंग्रेज़ हाकिमों को हुकुम बजाने वाले और उनकी भाषा समझने वाले लोगों का आवश्यकता हुई। इसी गरज़ से अंग्रेज़ पादरियों ने बेचारी गुमराह और भूली भटकी भारतीय भेड़ों (मनुष्यों) को राह पर लाने के लिये स्कूल खोले। अंग्रेज़ सौदागरों को इन स्कूलों से काम करने वाले क्लर्क मिलने लगे। जब राज्य विस्तार बढ़ने से क्लर्कों की और भी आवश्यकता हुई तो अंग्रेज़ी सरकारने पादरियों को नियमित सहायता देना निश्चय किया। अंग्रेज़ी भाषा द्वारा शिक्षा देना निश्चय हुआ। पाश्चात्य ढंग से शिक्षा का सूत्रपात हुआ। लंदन के विश्वविद्यालय की नकल की गई और विदेशी भाषा के सीखने की कठिनाई पर ध्यान न दे कर शिक्षा और परिक्षा दोनों वहीं के समान रखी गई। उस समय अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये किस किस प्रकार लोगों को वज़ीफ़े और इनाम दिये जाते थे, यह सभी लोग जानते हैं। स्कूलों के अध्यापक लोगों के घर पर आकर खुशामद किया करते थे और प्रार्थना करते थे कि अपने बच्चों को अंग्रेज़ी स्कूल भेजिये। उस समय स्कूलों में लड़कों को वज़ीफ़े मिलने के अलावा स्कूल में पढ़ाये जाने वाली किताबें और दूसरे सामान भी मुफ़्त में दिये जाते थे। पर जब सरकारी काम करने के लिये सरकार को पूरे पूरे आदमी मिलने लगे तो दिन प्रतिदिन शिक्षा प्राप्त करने के मार्ग में कठिनाइयाँ बढ़ने लगीं। अब तो यह हाल है कि साधारण स्थिति का मनुष्य स्कूल और कालेज की फीस, पुस्तकें व अन्य आवश्यक सामग्री जुटाने के लिये समर्थ ही नहीं होता

और इसीलिये लोगों को शिक्षा से वञ्चित रहना पड़ता है ।

सराश यह है कि हमारे विद्यार्थियों को जो उच्च शिक्षा दी जा रही है उसका प्रधान उद्देश्य ब्रिटिश राज्यतन्त्र को चलाने के लिये सस्ते कल पुर्जे तैयार करना है । शिक्षा देने वालों का यह उद्देश्य रहा है कि शिक्षा पाकर 'आज्ञाकारी सेवक होने में सन्मान मानने वाले, सरकार के चरण चुम्बक बनें" । इस देश के शिक्षालय गढ़ों के समान हैं । जिस प्रकार देशको जीतने के पूर्व उसमें गढ़ स्थापित कर लेने से सुविधा होती है, उसी प्रकार उसके निवासियों की मनोवृत्तियों को खींचने के लिये विद्यालयों का स्थापित करना आवश्यक होता है । इतिहास इस बात का साक्षी है कि अंग्रेज जहाँ जहाँ गये हैं वहाँ वहाँ उन्होंने ऐसी शिक्षा दी है जो लोगों को अपने आधीन करे । मिसर देश में भी ऐसाही हुआ था । वेलनटाइन शिरोल ने भी स्वीकार किया है कि अंग्रेज लोग मिसरदेश में शिक्षा की समस्या को हल नहीं कर सके । इसका कारण यह है कि इन्होंने बुरी इच्छा से उसमें हाथ लगाया था । इस प्रकार स्पष्ट है कि सरकार के शिक्षालयों द्वारा नवयुवक राजनैतिक फंदे में फंसते हैं।

प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र में शिक्षाक्रम में अनेक उपयोगी बातें सिखाये जाने के अलावा तीन बातें अवश्य सिखाई जाती हैं । (१) विद्यार्थियों को देश की राजनीति का ज्ञान कराना (२) मातृभाषा में शिक्षा देना (३) धार्मिक शिक्षण देना । परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ इन में से एक भी बात नहीं है । और इसीलिये हमारे देश के नेता चिल्ला चिल्ला कर कहते हैं कि यह *शिक्षा स्वतन्त्र बनाने की नहीं है पर गुलामी की ओर लेजाने वाली है।*

लोग कहते हैं कि विद्यार्थियों को राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये । जब विद्यार्थी बड़े होंगे तब देशोद्धार

कर लेंगे। यह कथन ही बतलाता है कि विद्यार्थियों का राजनीति से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है जब वे देश के भावी कर्णधार होने वाले हैं तो क्या यह आवश्यक नहीं है कि जिस प्रकार जीवन निर्वाह के साधनों के लिये वे बाल्यकाल में शिक्षा पा रहे हैं उसी प्रकार देशोद्धार की जिम्मेवारी के लिये भी अभी तैयारी करें। पर खेद है सरकार इधर भी ध्यान नहीं देती। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी होने के कारण भारत के बालकों का कितना समय और शक्ति व्यर्थ ही बरबाद होती है यह पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं, पर पराधीन देश में जो न हो वही आश्चर्य्य है। संसार में कोई ऐसा देश नहीं, जहाँ पर पराई भाषा में शिक्षा दी जाती हो। पर बराबर वर्षों से हमारे नेताओं के चिल्लाने से अब सरकार ने इस तरफ़ कुछ ध्यान दिया है और स्कूलों में अब कई विषयों की शिक्षा मातृभाषा में दी जाने लगी है।

इस शिक्षा में बड़ी भारी कमी यह है कि शिल्पकला सम्बन्धि शिक्षा बिलकुल नहीं दी जाती जिसका परिणाम यह होता है देश में जो शिक्षित लोग निकलते हैं वे सिवाय चाटुकारी करके नौकरी करने के कोई दूसरा काम नहीं कर सकते। यदि सरकार इस प्रकार की शिक्षा देती तो आज भारत में चारों तरफ़ जो त्राहि त्राहि मच रही है वो नहीं दिखाई देती। अब सभी पढ़े लिखे लोग नौकरी, वकालत, डाक्टरी, इंजीनियरी आदि पेशे करना चाहते हैं, पर समाज में इनकी ज़रूरत परिमित ही होती है। इससे जितनी नौकरियाँ नहीं उतने उम्मेदवार हैं जितने मुवकिल नहीं उतने वकील हैं, जितने रोगी नहीं उतने डाक्टर हैं और जितने कारबार नहीं उतने इंजीनियर हैं।

इस शिक्षा में बड़ी भारी कमी यह भी है कि इस से न तो हमें देश की स्थिति का ही कुछ ज्ञान होता है और न अपने कर्तव्याकर्तव्य और देश प्रेम का भाव जागृत होता है। हमारे पड़ोसी जापान के बच्चों ने जब पाश्चात् शिक्षा प्राप्त की तो उन्होंने अपनी योग्यता को देश की सेवा में लगा दिया। उन्होंने स्थान स्थान पर स्कूल और कालेज खोल खोल कर पचास वर्ष के अन्दर ही अपने देश को उन्नत कर के दिखा दिया। पाठक देखिये! यह है सच्ची शिक्षा जिसके बदौलत जापानी नवयुवकों में स्वदेश प्रेम की उमङ्ग उठीं और उन्होंने अपने देश का उद्धार किया। पर यहां इसके विपरीत हुआ। हमारे यहाँ के पाश्चात् शिक्षा पाये हुए लोग अपने ही देश भाइयों से घृणा करने लगे। अपने रहन सहन खान पान इत्यादि को छोड़ने लगे और फैशन का भूत उन पर इतना सवार हो गया कि नित नई अनुपयोगी विदेशी वस्तुयें खरीद कर देश का धन बाहर भेजने लगे। कहां तो शिक्षा प्राप्त कर देश के नवयुवकों को अपने देश की दरिद्रता को देख कर सादा जीवन व्यतीत करना चाहिये था और देश का वैभव बढ़ाने के निमित्त स्वदेशी की प्रतिष्ठा करनी चाहिये था पर उसके विपरीत वे विदेशीही चीजें पसन्द करने लगे। नीचे की तालिका से पाठकों को पता लगेगा कि आज कल हमारे पढ़े लिखे विद्यार्थी फैशन के फेर में पड़कर कितना रुपये वार्षिक खर्च करते हैं।

१ फैल्ट टोपी अच्छी	४)	२ जोड़ी डासन्स क० के बूट	१५)
१२ शीशियाँ बालों में-		१० डिब्बी दूथ पाऊडर	३)
लगाने के तेल की प्रतिवर्ष		१२) बनियान	३)

१ चश्मा	≈)	४ कमीज़ें	≈)
१ बाल काढ़ने का कंघा	≡)	१ सेट कमीज़ के बटन	।)
१ टोपी साफ़ करने का ब्रुश	।=)	२ वेस्ट-कोट	४)
१२ बट्टी साबुन	२।)	२ हाफ़ कोट	४)
१ टूथ ब्रुश	।)	२ नेकटाई	१।)
१ रास्कोप घड़ी की बनवाई	।।।)	१ बो	।−)
२ पतलून	४॥)	१ क्लिप	।)
१ गैलिस	१॥)	१ शीशी बूंट पालिश	॥=)
४ जोड़ी पैर का मोज़ा	२)	१ ब्रुश बूंट साफ़ करने का	३)
१ जोड़ी मोज़े के बन्धन	।=)	६ रूमाल	१॥)
२ धोती जोड़ा बढ़िया	=)	१ वाकिंग छड़ी	१२)

कुल योग १०१।≡)

इसमें अभी नाई ॥) मासिक और धोबी ।।।) मासिक के हिसाब से वर्ष भर के १५) और मिला देने से कुल ११६।≡) खर्च पड़ते हैं। यह तो कम से कम फ़ैशन का खर्च बतलाया गया है। इसके अलावा चाय के प्याले रकाबी सिगरेट आदि अनेक फज़ूल खर्च अलग ही हैं। यदि विद्यार्थियों को सिखाया जाता कि फ़िज़ूल खर्ची से देश दिन प्रति दिन ग़रीब हो रहा है तो यह निःसन्देह है कि वे देश प्रेम के कारण बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करते। लार्ड कर्ज़न ने भी देहली दरबार के समय औद्योगिक प्रदर्शिनी खोलते समय कहा था कि बड़े खेद की बात है कि देश के लोगों की रुचि इतनी बिगड़ गई है कि वे इस देश के बनाये हुए कारीगरों का सुन्दर से सुन्दर सामान काम में न लाकर विदेशी रद्दी सामान से अपने कमरे सजाते हैं।

हमारे धार्मिक तथा सामाजिक विचारों में भी इसी शिक्षा से उथल पुथल हुई है। फल यह हुआ कि हम अपने धर्म से अनभिज्ञ रह कर ईसाइयों द्वारा शिक्षा पाने से अपना धर्म छोड़ ईसाई होने लगे। पर धन्य है राजा राममोहनराय और महर्षि दयानन्द आदि महान् पुरुषों को जिन्हों ने हमें बचाया और धन्य है विवेकानन्द रामतीर्थ को जिन्हों ने शिक्षितों को अपने धर्म का महत्व समझाया। इस तरह हमारा धर्म नष्ट होते होते बचा।

इसके अलावा अंगरेजी स्कूलों में शिक्षा पाये हुए लाखों भारतवासी सरकार के भिन्न भिन्न महकमों में नौकर हैं। हजारों रेलवे कम्पनी में काम करते हैं। पर इनसे देश को क्या लाभ पहुंचा है। हमारे यही देश भाई हमारे ऊपर ही अनेक प्रकार के अत्याचार करने पर उतारू हो जाते हैं। पुलिस वालों का तो व्यवहार रात दिन देखने में आता ही है। अदालतों के मुन्शी, मुहर्रिर, पेशकार और चपरासी तथा बहुत से तहसीलदार डिपटी कलेक्टर व जज जिस प्रकार गरीब हिन्दुस्थानी प्रजा के साथ कुव्यवहार करते हैं यह किसी से छिपा नहीं है। कानून पेशा वकील बैरिस्टर जिनका काम लोगों के अधिकारों की रक्षा करना था, वे ही धन के लिए न्याय अन्याय का ध्यान न कर अपनी आत्मा को बेच देश बन्धुओं को आपस में लड़ाकर अपना मतलब साधते हैं। पाठको! यह है अंग्रेजी शिक्षा का फल।

स्वयं कई सच्चे अंगरेज भी इन बातों की पुष्टि करते हैं। जस्टिस सर जान उडरफ लिखते हैं —"मेरे मित्र मि० हेवेल ने ठीक कहा है कि इस देश की आधुनिक शिक्षाप्रणाली यहाँ की प्राचीन सभ्यता से मिल कर चलने के बदले बाधक है।

आगे चल कर उडरफ़ साहब कहते हैं कि इस शिक्षा प्रणाली से भारतीयों को अपने साहित्य से प्रेम में नहीं रह गया और उन्हें अपने कला कौशल से हर्ष नहीं होता। वे अपने धर्म और सनातन से चली आई रूढ़ियों से उदासीन हो कर अपने घरों, माता पिता और भाई बहिनों तथा बाल बच्चों से असन्तुष्ट रहने लगे हैं। जिन जिन घरों में इस शिक्षा का प्रवेश हुआ है उन उन में इसके हानिकारक प्रभाव से असन्तोष फैला है। यद्यपि इससे लाभ भी हुआ है पर हानि अधिक हुई है।

सारांश यह है कि इस शिक्षा से हमारा राष्ट्रीय अधःपतन हुआ है और हम दिनब दिन गुलाम बनते जा रहे हैं। इस लिए महात्मा गांधी का उपदेश है कि सरकार द्वारा दी गई इस गुलामी की शिक्षा को तुरन्त छोड़ देना चाहिये और अपने स्वतंत्र विद्यालय स्थापित कर राष्ट्र में जीवन डालने वाली उपयोगी शिक्षा को ग्रहण करना चाहिये।

हमारे यहां की पाठ्य पुस्तकें।

पाठ्य पुस्तकों के विषय में माडर्न रिव्यू के फरवरी (सन् १९२१) के अङ्क में एक लेख निकला था। उसी का सारांश नीचे दिया जाता है। "हमारी पाठ्य पुस्तकों का चुनाव ऐसा किया जाता है कि उनमें कोई ऐसी बात न आ जाय जो सरकार की जीभ को कड़वी जान पड़े। उनमें मत स्वातंत्र्य और वाद विवाद को जो उसके आवश्यक अंग हैं, स्थान नहीं दिया जाता। यही कारण है कि इतिहास के विद्यार्थियों को कुछ अन्ध विश्वास सा हो जाता है। उनमें

नागरिकता और उत्तरदायित्व के भावों का उदय नहीं होता। युवकों के मस्तिष्क लेखों तथा व्याख्यानों में व्यक्त किये गये किसी भी अर्थ को चुपचाप मान लेते हैं।" इतिहास के सम्बन्ध में ला० लाजपतराय कहते हैं—

"विगत महायुद्ध से यह नहती शिक्षा मिली है कि अबतक जिसे इतिहास के नाम से पुकारा जाता था वह न्यूनाधिक राष्ट्र या साम्राज्य के राजनैतिक स्वार्थों के पूर्ती के लिये लिखे गये ग्रन्थ होते थे। आप कहते हैं कि युरोप की विजेता जातिया विजित जातियों की बुद्धि भ्रष्ट करके उनके मन तक को अपना गुलाम बनाने का प्रयत्न करती हैं। हमारे स्कूल कालेजों में इतिहास की जो पुस्तक पढ़ाई जाती हैं उनमें से लगभग सभी में कूटनीति से भरी हुई पक्षपात पूर्ण बातें रहती हैं। उनमें भारतीयों की प्राचीन सभ्यता और गरिमा के वर्णन का अभाव रहता है। हिन्दुओं मुसलमानों के झगड़ों का विस्तृत वर्णन किया जाता है और ब्रिटिश शासन के प्रसारों की प्रशंसा के पुल बाँध दिये जाते हैं।"

दूसरे देशों से हमारी शिक्षा की तुलना।

भारत सरकार प्रजा की शिक्षा के लिये भी धन खर्च करने में बड़ी कंजूसी करती है। यद्यपि भारत सरकार शिक्षा विभाग का खर्च दिनों दिन बढ़ा रही है और उसने पिछले बीस वर्षों में शिक्षा का खर्च चार करोड़ से साढ़े ग्यारह करोड़ कर दिया है तथापि जिस गति से यह शिक्षा बढ़ रही है वह संतोष दायक नहीं। अँग्रेजी राज्य के डेढ़ सौ

वर्षों के शासन काल से भारत के सौ आदमियों पीछे केवल ११ लिख पढ़ सकते हैं (इसमें जो केवल नाम भी लिखना जानते हैं और जिनकी संख्या अधिक है वह भी शामिल हैं) जब कि जापान ने केवल पचास वर्षों में ही ९० प्रति सैकड़ा मनुष्यों को शिक्षित कर दिया है। नीचे दिये हुए अँकों से पता लगेगा कि हमारी सरकार प्रति मनुष्य पीछे कितना ख़र्च करती है और दूसरे देश वाले कितना ख़र्च करते हैं।

नामदेश	प्रति मनुष्य पीछे ख़र्च	नाम देश	प्रति मनुष्य पीछे ख़र्च
अमेरिका	१५)	भारतवर्ष	।-)
इंग्लैण्ड	७॥)	देशी राज्य	
कैनेडा	७।-)	कोचीन	।=)
स्काटलैन्ड	७≡)॥	बड़ौदा	।=)॥
जर्मनी	५=)	ट्रावन्कोर	।≡)॥
आयर्लैण्ड	४॥।-)	माइसोर	॥।)

ऊपर दिये हुए अँकों से पता चलता है कि दूसरे राष्ट्र अपनी प्रजा को शिक्षित बनाने के लिये कितना उद्योग कर रहे हैं। अमेरिका में राज्य की ओर से केवल स्कूलों में ही नहीं परन्तु कालेजों में भी शिक्षा मुफ़्त दी जाती है। वहां का सिद्धान्त है कि प्रजा को हर तरह की पूरी शिक्षा देना समाज तथा राज्य का धर्म है। इंग्लैण्ड ने भी सन् १८७० में शिक्षा प्राप्ति अनिवार्य्य कर दी जिसका परिणाम यह हुआ कि बीस वर्ष बाद अर्थात् १८९२ में प्रत्येक बच्चा स्कूल जाने लगा। जापानी गवर्नमेंट ने तो १८७२ ई० में यह घोषणा की थी कि आज से शिक्षा प्रचार का ऐसा प्रयत्न किया जायगा कि किसी गाँव में एक भी परिवार और परिवार में एक भी आदमी मूर्ख न रह जाय।" पर भारत की दशा विचित्र है। माननीय गोपाल

कृष्ण गोखले ने प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य करने के लिये कई बार सरकार के सामने बिल पेश किया पर सरकार ने रुपये की कमी बताकर इस बिल को पास न होने दिया। सन् १८८४ में फ़ौजी खर्च १७ करोड़ था पर वह बढ़ता बढ़ता सन् १९१८ में ४५ करोड़ और १९२० में ८५.५ करोड़ हो गया। इस वृद्धि का भी कुछ ठिकाना है। सन् १९२० में फ़ौजी खर्च ६४ करोड़ कूँता गया था पर खर्च हुआ ८५.५ करोड़। इस हिसाब से ज़्यादा खर्च हुए रुपये २१ करोड़ तो सरकार को मिल गये पर शिक्षा के लिये शायद रुपये नहीं मिल सकते हैं। देश में ३ करोड़ ५० लाख बालक स्कूल जाने योग्य हैं। सरकारी अनुमान है कि फ़ी बच्चे पीछे ५॥) सालाना खर्च होता है। इस हिसाब से सबको प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़्त देने में केवल १९ करोड़ की ही जरूरत है। यह तो २१ करोड़ से कम ही है। अतएव यह कहने में कुछ भी पसोपेश नहीं है कि सरकार चाहती तो इतना रुपया पहले भी खर्च कर देती और अब भी खर्च कर सकती है।

खैर, यह भी मान लिया जाय कि फ़ौज की आवश्यकता की वजह से उस का खर्च बढ़ सकता है पर रेलों का खर्च यदि न बढ़ाया जाय तो देश पर कौनसी आफ़त आ जाय गी। जिस शिक्षा की बदौलत मनुष्य में मनुष्यत्व आता है, देश की धन सम्पत्ति बढ़ती है, दरिद्रता दूर हो कर पूरा पेट भरता है, क्या रेल बनाना उससे भी अधिक जरूरी है? सन १९०७ में सरकार ने रेलों के लिये १३.५ करोड़ रुपया अलग रख दिया था पर उसके तेरह वर्ष ही बाद अर्थात् सन् १९२०-२१ के चिट्ठे में ३१.५ करोड़ रुपया खर्च कर डालने का निश्चय किया है। अर्थात् तबसे २८ करोड़ या ढाई गुना अधिक खर्च

करने को यह तैय्यार हो गई है। शिक्षा के लिये तो केवल १८ करोड़ ही चाहिये पर असल बात यह है कि रुपये की थैली ठहरी सरकार के हाथ में, लोग क्या करें! रेलें खूब बनें चाहे ६६ फ़ी सदी बच्चे मूर्ख ही रह जायँ।

अनाज का विदेश भेजा जाना

प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र अपनी आवश्यकता का अन्न रखकर जो कुछ विशेष बचता है उसे बाहर भेजा करता है। इङ्गलैंड के अन्य उपनिवेश स्वतंत्र हैं इसलिये वहाँ पर अनाज के लिये लाखों प्राणियों को अपनी जान नहीं खोनी पड़ती। पर दुर्भाग्य से भारत पराधीन है। यहाँ के निवासियों के लिये पर्य्याप्त अन्न देशमें न होने पर भी भारत सरकार लाखों मन अनाज प्रतिवर्ष बाहर भेज देती है। जो किसान रात और दिन कड़ी धूप, वर्षा और सर्दी में मेहनत करते हैं, खेद है कि उनकी आँखों के सामने अनाज से लदे हरे भरे खेत होने पर भी उनके दल के दल भूखों मरते हैं। अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि भारत में अन्न कितना उत्पन्न होता है। जन संख्या की दृष्टि से कितना अन्न आवश्यक है और आवश्यकता पूर्ति के लिये यह पैदा हुआ अन्न काफ़ी है या नहीं।

इस विषय पर पं० दया शंकर दुबे एम० ए० ने बहुत महत्व पूर्ण लेख लिखा है। आपने सरकारी रिपोर्टों के अंकों के आधार पर सिद्ध किया है कि प्रथम तो देशमें आवश्यकता से कम अन्न पैदा होता है और उसमें से भी विदेशों में अन्न भेजे जाने से देश के आधे भोजनालों को हमेशा ही आधा पेट

भोजन कर जीवन बिताना पड़ता है। नीचे लिखे अंकों से पाठकों को इसकी सत्यता प्रकट होजायगी।

सन्	पैदाहुआ	जरूरत	कमी	विदेशभेजागया	कुलकमी
	लाख टन	लाख टन	लाख टन	लाख टन	लाख टन
१९११-१२	६१६.१	६४३.३	२७.२	५१.१	७८.३
१९१२-१३	५१३.१	६४०.०	६६.३	५५.०	१२१.३
१९१३-१४	५३६.१	३४१.१	१०४.४	४१.७	१४६.१
१९१४-१५	५६९.६	६४७.९	७८.३	२५.३	१०३.६
१९१५-१६	६७९.२	६४९.१	३९.९	२३.८	६३.७
१९१६-१७	६२९.४	३५०.३	२०.९	२९.१	५०.०
१९१७-१८	६१६.४	६४९.०	३२.६	४५.१	७७.७

आगे चलकर इन्हीं लेखक महाशय ने सिद्ध किया है कि नीचे लिखे अनुसार प्रतिवर्ष लोग आधे पेट भोजन कर जीवन व्यतीत करते हैं:—

सन्	आधा पेट भोजन करने वालों की संख्या		प्रति सैकड़ा
१९११-१२	५४९	लाख	४५.१
१९१२-१३	८४८	,	६९.७
१९१३-१४	१०१६	.	८३.५
१९१४-१५	७३१	"	६०.१
१९१५-१६	४५५	,	३७.४
१९१६-१७	३४७	,,	२८.५
१९१७-१८	५४५	,,	४४.८

ऊपर दिये हुए सात वर्षों का औसत निकालने से ५२.७ फी सैकड़ा अर्थात् आधे से ऊपर युवा पुरुष और स्त्रियाँ इस अभागे पराधीन देश में आधे पेट भोजन करके अपना जीवन व्यतीत करते हैं। ऊपर के दिये हुए अंकों से पाठक जान

सकते हैं कि सन् १९१६—१७ (जो कि कृषि की दृष्टि से बहुत अच्छा था) में लगभग आधे पेट भोजन करने वालों की संख्या ३.५ करोड़ थी पर वही सन् १९१३—१४ में दस करोड़ से ऊपर पहुंच गई थी।

ऊपर के अंकों से यह भी साफ़ प्रकट होता है कि भारत में आवश्यकता के अनुसार अन्न कम पैदा होता है; अतएव अनाज का एक दाना भी बाहर न जाना चाहिये। पर हमारी सरकार भारतवासियों के मुंह का ग्रास छीन कर अपने भाई बन्धुओं के लिये करोड़ों मन अनाज प्रति वर्ष भेजती जारही है। इस वर्ष भी अर्थात् सन् १९२१ में भी भारतवासियों के अनेक प्रार्थना करने पर भी ७२ करोड़ दस लाख मन केवल गेहूँ विदेश भेजा गया है।

खाद्यपदार्थों पर सरकार का नियन्त्रण

सरकार हमारे खाद्य पदार्थों पर नियन्त्रण दिनप्रति दिन बढ़ा रही है। अप्रैल सन् १९१५ में सरकार ने अपनी ओर से गेहूँ विदेशों को भेजना आरम्भ किया है। गेहूँ की दर भी सरकार द्वारा नियत की जाती है। अभी हाल में जो चार लाख टन अच्छा बढ़िया गेहूँ सरकार ने विदेशों में भेजा है उसका भी भाव ६) मन सरकार ने निश्चित किया था। इससे जो लाभ होगा वह सरकारी ख़ज़ाने में आयगा।

चांवल तथा तेलहन पर सरकार का नियन्त्रण।

सन् १६२० के आरम्भ ही में बाबू विपिन चन्द्र पाल ने *'Independent'* पत्र में " भयंकर खतरा " नामक एक लेख लिखा था। उसमें उन्हों ने यह दिखाया था कि इंग्लैण्ड के वढ़े हुए खर्च को सँभालने के लिये लार्ड मिलनर भारत के कच्चे माल पर इंग्लैण्ड के पूंजी पतियों का नियन्त्रण स्थापित करना चाहते हैं। इस ढंग का नियन्त्रण भारतके लिये बहुत ही हानिकर सिद्ध होगा। उन्होंने जिस वात का निर्देश किया था वह आँखोंके सामने आ गई। इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट की आर्थिक समिति की रिपोर्ट भारत के चाँवलों तथा तेलहन पर पृथक् पृथक् प्रकाशित हो गई। तेलहन के व्यापार के विषय में रिपोर्ट में भारत सरकार को निम्न लिखित सलाह दी गयी है:—

(१) हिन्दुस्तानी किसानों को रुपये देकर के वश में करो और सारा तेलहन इंग्लैण्ड रवाना कर दो।

(२) अफीम, तमाखू इत्यादि के सदृश ही तेलहन की उत्पत्ति को अपने कब्ज़े में कर लो और इन में भी ठेके तथा लाइसेन्स का प्रयोग करो।

(३) इंग्लैण्ड में तेल पेरने के जो बड़े २ कारखाने हैं उन्हें सहायता पहुंचाने के लिए विदेशी तेल पर बाधक सामुद्रिक कर लगा दो और उसे इंग्लैण्ड में न आने दो।

(४) इंग्लैण्ड में भारत के लिये तेलहन की समस्त राशि पहुंच सके, इसके लिये रेल तथा जहाज़ों का किराया ऐसा रक्खो कि उसे हम निर्दिष्ट स्थान तक सुविधा से पहुँचा दें। साथही भारत से तेलहन को इंग्लैण्ड के भेजने के लिये

सामुद्रिक कर इस सीमा तक घटा दो कि उसकी सम्पूर्ण राशि इंग्लैण्ड में सुगमता के साथ पहुंच जाय । चावलों के विषय में भी ऐसी ही बातें लिखी हैं। अब इससे भारत की क्या दशा होगी सो ईश्वर ही जाने । सरकार दो तीन साल तक तेलहन और चांवल पर अपना नियन्त्रण स्थापित करेगी । इसके बाद इन चीज़ों का स्थिर तौर पर महँगा हो आना स्वाभाविक है। भारत वासियो ! जागो, ताकि इस कूट नीति के भयंकर परिणाम से बच सको ।

भारत का कृषि प्रदेश बनना

भारतवर्ष अति प्राचीन काल से धन धान्य पूर्ण देश रहा है। यद्यपि इस अपार धन के कारण ही नादिरशाह और गज़नी आदि बादशाहों ने कई बार लूटा और अरबों रुपया ले गये, मुसलमानों ने सदियों तक राज्य किया पर इस देश का व्यापार कभी नष्ट नहीं किया गया। और यही कारण है कि इतने आक्रमण होने पर व इतनी बार लुटने पर भी देश फिर से धन धान्य पूर्ण हो जाया करता था। अंग्रेज़ वणिकों के आनेके पहिले भारत की कैसी समृद्धिशाली दशा थी वह पिछले अध्यायों में अच्छी तरह से बतलाया जा चुका है। इसके बाद जिस प्रकार यहाँ का व्यापार नष्ट हुआ वह भी पिछले अध्याय में दिखला चुके हैं। इन सब का परिणाम यह हुआ कि कारीगर लोग अपने अपने व्यवसाय छोड़ कर पेट पालन का कोई धन्धा न रहने से मजबूरन कृषि कार्य्य की तरफ़ झुकने लगे। और इस प्रकार

दिन व दिन दरिद्रता के दलदल में फंसते गये। इधर योरप के लोग दिन व दिन व्यापार के कारण मालामाल होते गये। सन् १९११ की सेन्सस रिपोर्ट में लिखा है कि १९०१ में इंग्लेन्ड के लोग प्रति सैकड़ा ५८ व्यवसायिक कामों में १३ व्यापार में और केवल ८ खेती के काम में लगे थे परन्तु भारत में ७१ प्रति सैकड़ा खेती पर ही निर्वाह करते हैं। नीचे दी हुई सारणी से पता चलेगा कि किस प्रकार लोग अपने व्यवसाय को छोड़ छोड़ कर कृषि कार्य्य में लगते जाते हैं:*—

सन् १८९१ से १९०१ तक भारतीयों का भिन्न भिन्न पेशों को छोड़ कर खेती करना।

पेशा	सन् १८९१	सन् १९०१	घटे या बढ़े
सरकारी नोकर	१२५७६६०१	१०६६२६६९	—१९१३९६२ घटे
घरेलू नोकर	११२१९९५१	१०७१७२९४	— ५०२६५७ घटे
व्यापारी	८६३८४८५	७७२५७३७	— ९१२७४० "
व्यवसायिक	४७५९४२५१	४५७१९६४५	—१८७४६०६ "
कृषक	१७५३७३४६०	१९५६६६८४३	—२०२९३३८५ बढ़े

१८७१ से १९११ तक ४० वर्षों में लोगों ने सैंकड़ा पीछे किस प्रकार अन्य कामों को छोड़ कर खेती में प्रवेश किया, उसका हिसाब इस प्रकार है:—

प्रान्त	सन् १८७१—	—१९११	कृषक कितने बढ़े।
उ० या प० प्रान्त	५६·०	७३·३	१७ प्रति सैंकड़ा बढ़े।
अवध	५०·९	७३·२	२३ " "
पंजाब	५५·०	६१·०	५ " "

*Census Report of India 1911 vol 1st Page. 432.

मध्य प्रान्त	३७·५	७८·७	४१	"	"
बरार	६१·०	७८·७	१७	"	"
माईसोर	२०·०	७३·०	५३	"	"
कुर्ग	१२·५	८२·५	७०	"	"
ब्रिटिशबर्मा	२७·०	७०·०	४३	"	"
बम्बई	२६·०	६७·०	४१	"	"

इस सूची से पता लगता है कि किस प्रकार प्रान्त के प्रान्त कारीगरों से खाली हो गये और कृषक बढ़ गये।

नीचे दी हुई सूची से मालूम होगा कि सन् १९०१ से सन् १९११ तक भारतीयों ने भिन्नभिन्न व्यवसायिक कामों को इस प्रकार छोड़ा और खेती के कामों में हाँथ डाला।

व्यवसायिक काम	कितने मनुष्यों ने १९०१ से १९११ तक काम छोड़ा	प्रति शतक कमी
कागज़ बनाना	—४३२२८०	५५ "
रासायणिक पदार्थ बनाना	—७१७०४	५६ "
खिलौने बनाना	—२४६६३	३५ "
गहने तथा जनेऊ बनाना	—२७९१०	६ "
सूत कातने का काम	—५२०५४५	६१ "
कपड़ा बनाना	—११८६५०	१३ "
चमड़े के जूते बनाना	—३३०४०२	३३·६ "

इस सूची से पता चलता है कि लोग अपना कारोबार किस तरह छोड़ते चले जा रहे हैं और कृषि कर्म करते जाते हैं।

भारत में कृषि कर्म दिनों दिन किस प्रकार बढ़ रहा है उसकी नीचे सूची दी जाती है।

	सन १८९१	१९०१	१९११
खेती का काम	१७५३७३४६०	१९५६६६८४३	२२०६७०–५

सारांश यह है कि हम पराधीन हैं और अन्य देश वाले स्वाधीन हैं। अंगरेज़ों ने भारत को धन कमाने का स्थान बनाया है। संसार की सभी सभ्य जातियों को आर्थिक स्वराज्य प्राप्त है। इससे आय व्यय तथा बजट का पास करना या न करना तथा व्यापार की रक्षा करना आदि सभी उन के हाथ में है। पर भारत पराधीन होने से उसको इन मामलों में कुछ कहने का अधिकार नहीं है। मॉटेगू चेम्स फोर्ड सुधार स्कीम ने भी यहाँ मौन धारण कर लिया है।

यह तो हुई भारतवर्ष की दशा। अब हम यह बताना चाहते हैं कि दूसरे देशों में किसानों की संख्या किस प्रकार घटती गई—

अमेरिका		जर्मनी	
सन्	कृषक संख्या	सन्	कृषक संख्या
१८६०	८८	१८८२	४२
१९००	३५	१९०७	२८

इंग्लैण्ड

सन्	कृषक संख्या
१८४१	३०
१८७७	१३
१९०१	८

इन अङ्कों से पता लगता है कि ज्यों ज्यों इन देशों में व्यापार बढ़ता गया त्यों त्यों वहां पर किसानों की संख्या कम होती गयी है और कारीगर बढ़ते गये। नीचे दिये हुए अङ्कों से पता लगेगा कि भारतवर्ष के मुकाबले में दूसरे देशों में कारीगरों और किसानों की कितनी संख्या है—

देश का नाम	कृषक	कारीगर	व्यापारी
इंग्लैण्ड	८	५८	११ ३६
अमेरिका	३५	२४	१६'००
जर्मनी	३२ ६	३७	११ ५
भारत	७१	१२	७

अब हम यह बताना चाहते हैं कि भारतवर्ष में किस प्रकार गाँवों में रहने वालों की अर्थात् किसानों की संख्या बढ़ती गई और नगरों में रहने वालों की अर्थात् कारीगरों व व्यापारियों की संख्या घटती गयी।

सन् १८५१ से १९११ तक सैंकड़ा पीछे ग्रामीणों की संख्या की वृद्धि।

सन्	ग्रामीण	नागरिक
१८५१	५० ०८	४९ ९२
१८७१	६१ ८०	३८ २०
१८८१	६७ ९	३२ १
१८९१	७२ ५	२७ ९५
१९०१	७७ ०	२३ ०
१९११	७८ १	२१ ९०

इन अँकों से पता लगता है कि भारतवर्ष किस प्रकार कृषि प्रधान देश बनता गया। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि इंग्लैण्ड जो कि डेढ़ सौ वर्ष पहले मामूली हालत में था, भारत के धन से किस प्रकार बढ़ता गया और वहाँ गाँवों की अपेक्षा व्यापार बढ़ जाने से नगर किस प्रकार बढ़ गये।

सन् १९११ में इंग्लैण्ड तथा भारत के नगरों की स्थिति

नगरों की आबादी	इं० तथा वे० में	भारत में	भारत में होना चाहिये
पचास हज़ार से ऊपर और एक लाख से कम बस्तीवाले	९८	७५	१४५०

एक लाख आबादी के नगर	४४	३०	६६०
दो लाख आबादी के नगर	१६	१०	२४०

यहां पर यह ध्यान रखना चाहिये कि भारतवर्ष इग्लेन्ड से १५ गुना बडा है। इसलिये यहां इग्लेण्ड से १५ गुना नगर होना चाहिये। पर ऊपर के अङ्कों से मालूम होता है कि जितने इग्लैन्ड में नगर हैं उतने भी भारत में नहीं हैं। पन्द्रह गुना तो अलग रहा। मतलब यह है कि भारत में व्यापार नष्ट होने से प्राय सब लोग कृषि की तरफ झुक रहे हैं और विलायत में व्यापार बढ़ जाने से नगरों की सख्या बढ रही है। यही बात सारे यूरोप में है। एशिया के व्यापार का नाश कर यूरोप बढा और इसी लिये वहां के नगरों की सख्या बढ़ती गई।

रोग और मृत्यु

भारतवर्ष में दरिद्रता के बढ़ने से रोगों की सख्या व मृत्यु की सख्या भी दिनों दिन बढ रही है। बडे २ डाक्टरों ने इस बात को स्वीकार किया है कि प्लेग आदि रोगों का कारण भारत का दारिद्रय या अन्न कष्ट है। अच्छा भोजन और अच्छे वस्त्र का अभाव तथा खराब जगह (इन सब बातों का अभाव देश में दरिद्रता बढने से हुआ करता है) में रहना ही इन रोगों का प्रधान कारण है। जिन देशों में लोगों के पास पुष्टि कारक भोजन सामग्री तथा स्वास्थ्य रक्षा के लिये अन्य आवश्यक सामग्री जुटाने के लिये काफी पैसा है उन देशों में प्लेग आदि रोगों की भरमार नहीं दीख पडती। पहले युरोप

में बार बार प्लेग होता था और उससे हज़ारों आदमी मरते थे; पर जब से वहाँ पर व्यापार बढ़ने के कारण दरिद्रता दूर हुई है तब से वहाँ रोगों की संख्या और मृत्यु संख्या घट रही है। मतलब यह है कि जैसे जैसे देश में धन बढ़ता जाता है वैसे वैसे रोग भी कम होते जाते हैं। दो सौ वर्ष पहले लंदन में प्रति सहस्र ७० मनुष्य मरते थे। सन् १८६५ में केवल ३० मरे और अब तो आबादी पहले से बहुत बढ़ जाने पर भी प्रति सहस्र कुल १५ मनुष्य मरते हैं। यह है धनवान देश होने का परिणाम— परन्तु भारतवर्ष दिन प्रति दिन दरिद्र हो रहा है जिसका परिणाम यह है कि लोगों को न खाने को शुद्ध अन्न मिलता है, न पहनने को काफ़ी कपड़ा और न रहने को स्वास्थ्य प्रद मकान। मि० डिग्बी लिखते हैं "भारतवासी, घनी बस्ती वाले गाँव के बीच में, एक २ मिट्टी की झोंपड़ी में रहते हैं जिसके चारों तरफ़ गोबर आदि खाद का पहाड़ लगा रहता है और पास ही गन्दे पानी की तलैया भी होती है। अकसर इसी तलैया का पानी पीने के काम में लाया जाता है"। आगे चलकर यही महाशय फिर लिखते हैं "He is born in sickness and dies almost like a beast of the field with only such rude care as his neighbours rude ignorance can afford अर्थात् भारतवासी रोगी ही पैदा होते हैं और रोग से ही जानवरों की तरह मर जाते हैं। उनकी चिकित्सा उतनीही होती है जितनी कि उनके अज्ञानी पड़ोसी कर सकते हैं"।

इसी प्रकार जीवन व्यतीत करने से भारतवासियों की मृत्यु संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है। नीचे

दिये हुए अंकों से स्पष्ट मालूम हो जायगा —

सन्	फीहजारमृत्यु	सन्	फीहजारमृत्यु
१८८५	२३ ००	१९१३	२८ ७२
१८८६	२८ ००	१९१४	३० ००
१८९९	३० ०१	१९१५	२९ ०४
१९००	३८ ९१	१९१६	२९ १०
१९०४	३३ ०५	१९१७	३२ ७२
१९०८	३८ २१	१९१८	६२ ४२

बच्चों का ठीक पालन पोषण न होने से दूसरे देशों की अपेक्षा यहाँ पर बहुत मृत्यु सख्या बढ़ गई। यह नीचे दिये हुए अङ्कों से मालूम होगा —

एक हजार बालकोंमें आठ नौ वर्ष तक के बालकों की मृत्यु सख्या

देश	फीहजारमृत्यु	देश	फीहजारमृत्यु
इग्लेन्ड	९८	मद्रास	१९९
फ्रॉन्स	७८	बगाल	२७०
आयर्लैंड	९७	सयुक्त प्रान्त	२५२
आस्ट्रेलिया		बम्बई	३२०
नार्वे		पजाब	
स्वीडन		बम्मा	

भारत की आदर्श राज्य पद्धति।

एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है कि किसी समय यदि किसी राष्ट्र में सभ्यता का अलौकिक सूर्य्य अपनी पूर्ण प्रभा के साथ चमका हो, बड़े बड़े विचारकों द्वारा महान् तत्वों का—सृष्टि के अलौकिक रहस्यों का—उद्घाटन या आविष्कार हुआ हो, मानसिक तथा आत्मिक संसार के गूढ़तम तत्व की अन्वेषणा हुई हो, तो समझना चाहिये कि उस समय उस देश की शासन पद्धति आदर्श रही है। आदर्श शासन पद्धति के कारण जहाँ शान्ति का अखण्ड साम्राज्य रहता है, वहीं महान् महान् विचारों का आविष्करण हो सकता है। इस दृष्टि से जब हम प्राचीन भारत को देखते हैं, इस कसौटी पर उसे कसते हैं, तो हमें जान पड़ता है कि उस समय यहाँ की शासन पद्धति अत्यन्त उच्च श्रेणी की रही होगी। पाश्चात्य विद्वान् भी यह मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि तत्वज्ञान में आज भी भारत संसार का शिरोमणि है। वे सिर नवा कर यह मानते हैं कि जहाँ भारत के तत्व ज्ञान का आरम्भ होता है, वहाँ पाश्चात्य तत्वज्ञान का अन्त हो जाता है। शताब्दियों की तीव्र प्रगति के बाद भी पाश्चात्य लोग हमारे हज़ारों वर्ष के पुराने तत्वज्ञान तक नहीं पहुँच सके। इसी प्रकार ज्ञान के अन्य कई क्षेत्रों में भी भारत ने जैसी अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है उस पर आज का घमण्डी पाश्चात्य संसार लट्टू है*। इससे क्या

* इस सम्बन्ध में जिन्हें अधिक जानना हो वे इसी लेखक का लिखा हुआ "जगद्गुरु भारतवर्ष" ग्रन्थ अवश्य देखें। यह ग्रन्थ भी हिन्दी साहित्य मन्दिर इन्दौर से मिलता है।

दिये हुए अंकों से स्पष्ट मालूम हो जायगाः—

सन्	फ़ीहज़ारमृत्यु	सन्	फ़ीहज़ारमृत्यु
१८८५	२३ ००	१९१३	२८ ७२
१८८६	२८ ००	१९१४	३० ००
१८९९	३० ०१	१९१५	२९ ०४
१९००	३८ ९१	१९१६	२९ १०
१९०४	३३ ०५	१९१७	३२ ७२
१९०८	३८ २१	१९१८	६२ ४२

बच्चों का ठीक पालन पोषण न होने से दूसरे देशों की अपेक्षा यहाँ पर बहुत मृत्यु संख्या बढ़ गई। वह नीचे दिये हुए अङ्कों से मालूम होगा —

एक हजार बालकोंमें आठ नौ वर्ष तक के बालकों की मृत्यु संख्या

देश	फ़ीहज़ारमृत्यु	देश	फ़ीहज़ारमृत्यु
इंग्लेन्ड	९८	मद्रास	१९९
फ्रॉन्स	७८	बंगाल	२७०
आयर्लेंड	९७	सयुक्त प्रान्त	२५२
आस्ट्रेलिया	७२	बम्बई	३२०
नार्वे	६८	पजाब	३०६
स्वीडन	७२	बर्मा	३३२
स्काटलेन्ड	१२०		

इन अङ्कों से स्पष्ट मालूम होता है कि एक तिहाई बालक मर जाते हैं। भारतवासियों की औसत आयु भी अन्य देशों के मुकाबले बहुत कम है। इंग्लेन्ड की औसत आयु ४० वर्ष, न्यूजीलेन्ड की ६० वर्ष और भारतवर्ष की केवल २३ वर्ष है।

उसकी सुखदायिनी गति हो। राज्य का इतना ऊँचा आदर्श,
हम दावे के साथ कह सकते हैं कि किसी आधुनिक राज्य
पद्धति में नहीं है। यहां की राज्य पद्धति की नींव धर्म पर
थी। विश्वव्यापी प्रेम, मानवी सुख का विकास, दया, सहानु
ति आदि उच्च गुणों का विकास उसका आदर्श था * इन
य गुणों से युक्त आदर्श राज्य-पद्धति के कारण यहाँ सुख
शॉति का साम्राज्य था। लोगों की वृत्तियां धार्मिक
ालु थीं। मनुष्य तो दूर रहा पर पशु पत्ती तक
होकर विचरण करते थे। राज्य के सञ्चालक
नहीं रहते थे, वरन् उन महात्माओं की सलाह
ाम चलता था। जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक
प कर अपने उदार अन्तःकरण में सारी
दिया था। राजा लोग उनकी आज्ञाओं
ऐसी सुखदायिनी परिस्थिति ही का
ने ऐसे *अलौकिक और गूढ तत्वों* का
जिनसे संसार भर में नया प्रकाश

ध्वनित होता है ? इससे इस बात का साफ पता चलता है कि प्राचीन भारत की शासन पद्धति अवश्य आदर्श रही होगी। क्योंकि जुल्मी और अत्याचारी शासन पद्धति में इस प्रकार के अलौकिक तत्वों का आविष्करण किसी प्रकार नहीं हो सकता। जब मनुष्यों के मन शान्त और निर्व्याकुल रहते हैं और जब उन्हें उदर निर्वाह की चिन्ता नहीं रहती जब उन्हें सब अनुकूल साधन और परिस्थिति मिलती है तब ही वे अपने आत्मिक विकास के द्वारा महान् तत्वों का आविष्करण कर सकते हैं और यह स्थिति आदर्श राज्यपद्धति ही में सम्भव हो सकती है। इससे कुछ पाश्चात्य लोगों का यह कहना कि भारत सदा स्वेच्छाचारिता का घर रहा है, यहां की शासन पद्धति हमेशा से अत्याचार पूर्ण और मानवी भावों को कुचलने वाली रही है, बिलकुल असत्य और निःसार है।

इसके अतिरिक्त जब हम अपने प्राचीन ग्रन्थों पर दृष्टि डालते हैं, तब हमें यह मालूम होता है कि यहां की राज्य पद्धति के कुछ आदर्श, आधुनिक सभ्य राज्य-पद्धतियों के ऊँचे से ऊँचे आदर्शों से भी अधिक उच्च और दिव्य हैं। आधुनिक राज्य-पद्धति मनुष्यों के आर्थिक, सामाजिक और मानसिक विकास ही तक अपनी इति कर्तव्यता समझती हैं। पर हमारी प्राचीन राज्य-पद्धति प्रजा की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक उन्नतियों पर तो दृष्टि रखती ही थी, पर प्रजा की इह लौकिक उन्नति के अतिरिक्त पारलौकिक उन्नति की ओर भी उसका लक्ष्य रहता था। अर्थात् वह प्रजा के लिये उन साधनों को प्रस्तुत करना भी अपना धर्म समझती थी जिससे प्रजा को इह लौकिक सुख तो मिले ही, पर परलोक में भी

उसको सुखदायिनी गति हो। राज्य का इतना ऊँचा आदर्श, हम दावे के साथ कह सकते हैं कि किसी आधुनिक राज्य पद्धति में नहीं है। यहां की राज्य पद्धति की नींव धर्म पर थी। विश्वव्यापी प्रेम, मानवी सुख का विकास, दया, सहानुभूति आदि उच्च गुणों का विकास उसका आदर्श था * इन दिव्य गुणों से युक्त आदर्श राज्य-पद्धति के कारण यहाँ सुख और शांति का साम्राज्य था। लोगों की वृत्तियां धार्मिक और दयालु थीं। मनुष्य तो दूर रहा पर पशु पक्षी तक यहाँ निडर होकर विचरण करते थे। राज्य के सञ्चालक मदान्ध राजा नहीं रहते थे, वरन् उन महात्माओं की सलाह से राज्य का काम चलता था। जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक वृत्तियों का विकास कर अपने उदार अन्त:करण में सारी प्राणी सृष्टिको स्थान दिया था। राजा लोग उनकी आज्ञाओं के अनुसार चलते थे। ऐसी सुखदायिनी परिस्थिति ही का प्रभाव था कि यहाँ से ऐसे ऐसे अलौकिक और गूढ तत्वोंका आविष्करण हुआ कि जिनसे संसार भर में नया प्रकाश फैल गया।

इनके अतिरिक्त यहाँ महर्षियों और विद्वानों के द्वारा, प्रजा-निर्वाचित प्रतिनिधियों की सभाओं के द्वारा राज्य शासन होने के जहाँ तहाँ अनेक उल्लेख मिलते हैं। यहाँ प्रजा तन्त्र राज्य के कई ऐतिहासिक उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

* प्राचीन भारत की आदर्श राज्य पद्धति के विषय में लेखक के "जगद्गुरु भारतवर्ष" का दूसरा अध्याय देखिये। इसके अतिरिक्त लेखक की दूसरी पुस्तक "रवीन्द्र दर्शन" में "संसार को संदेशा" वाला लेख पढ़िये। यह दोनों पुस्तकें भी हिन्दी साहित्य मन्दिर इन्दौर में मिलती हैं।

हमारे पास यहाँ इतना स्थान नहीं है कि हम इन सब बातों का विस्तृत विवेचन करें। हमने अपने "जगद्गुरु भारतवर्ष" नामक ग्रन्थ में इस पर एक अध्याय लिखा है। यहाँ हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि प्राचीन काल में बहुत दिनों तक यहाँ स्वराज्य रहा है, आदर्श राज्य-पद्धति रही है, लोक सभाएँ रही हैं, राजाओं का अधिकार प्रजा की शक्ति के द्वारा नियन्त्रित रहा है। अयोग्य लम्पट और प्रजाद्रोही राजा को प्रजा ने कान पकड़ कर राज्य च्युत कर दिया है। यहा नियम कानून और कायदों की सृष्टि हुई है। अगर हमारे पाठक "कौटिल्य का अर्थशास्त्र" पढ़ेंगे तो उन्हें आश्चर्य होगा कि हमारे भारत की राज्य-पद्धति का सङ्गठन कितना साङ्गोपाङ्ग और आदर्श रहा है।

आजकल कितने ही लोग कहते हैं कि भारतवासी स्वराज्य के योग्य नहीं हैं, क्योंकि उनमें प्रबन्ध करने का माद्दा नहीं है। हमेशा वे शासित जाति के रूप में रहे हैं। हमें साफ तौर से कहना चाहिये कि ऐसे लोग या तो भारत के असली इतिहास के जानकार नहीं हैं और या वे लोगों की आँखों में धूल डालने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं। क्या वे यह नहीं जानते कि पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार भी संसार में भारत सब से प्राचीन राष्ट्र है। यह सभ्यता का आदि जनक है। आठ दस हजार वर्ष पहले भी यह सभ्यता के प्रकाश से प्रकाशित था। तीन चार हजार वर्षों के पहले तो यह संसार को ज्ञान के आलोक से प्रकाशित ही कर रहा था। ऐसी दशा में क्या उस समय यह अशासित दशा में था? क्या उस समय यहाँ किसी प्रकार की राज्य-पद्धति नहीं थी? क्या उस समय यहाँ लोग जंगली जानवरों की तरह बिना किसी राज्य-पद्धति के

रहते थे? क्या उस समय सात समुद्र पार से गोरे लोग इनकी दशा पर तरस खा कर शासन करने के लिये यहाँ पधारे हुए थे? हमें तो सचमुच ऐसे लोगों की समझ पर दया आती है। इन्हें यह सोचने की भी बुद्धि नहीं कि जिस जाति में स्वराज्य की योग्यता नहीं, उसने हजारों वर्षों तक कैसे स्वराज्य किया? यह कहना कि भारत ने कभी स्वराज्य नहीं किया अपनी अज्ञानता प्रकट करना है। उसने हजारों वर्ष तक स्वशासन किया और अपने आदर्श इतने ऊँचे रखे हैं कि जिनका आधुनिक संसार को संसार की भलाई और शान्ति के लिये अनुकरण करना चाहिये।

समय परिवर्तनशील है। सबका समय सदा एकसा नहीं रहता। समय के चक्र में पड़ कर उन्नतिशील राष्ट्र नीचे गिर जाते हैं और गिरे हुए अवनत राष्ट्र अपना मस्तक ऊँचा कर लेते हैं। राष्ट्रों के उत्थान और पतन में कुछ शक्तियाँ काम करतीहैं। पर इनका ठीक ठीक रहस्य इतिहास की सहायता से यद्यपि कुछ कुछ समझ में आ जाता है, पर पूरी तरह से समझ में नहीं आता। भारत के गिरने का असली रहस्य क्या है, इस सम्बन्ध में विशेष तर्क वितर्क करने की हमारी इच्छा नहीं है। फ़िलहाल इसका निर्णय हम इतिहास के फ़ैसले पर छोड़ते हैं। हाँ, आगे की पंक्तियों में कई ऐसी बातें आवेंगी, जिनसे यद्यपि इस सम्बन्ध का पूरा नहीं, तो भी थोड़ा सा रहस्य अवश्य खुलेगा।

सवा दो हजार वर्ष का अरसा हुआ कि भारत पर महान प्रतापी सिकन्दर बादशाह का हमला हुआ। सिकन्दर को क्यों सफलता होती गई, इस पर कुछ इतिहास वेत्ताओं ने थोड़ा सा प्रकाश डाला है। सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्ता मि०

हेवेल ने अपने "'History of Aryan Rule में लिखा है कि उस समय भारत में अनेक राष्ट्र आपस में लड रहे थे। देश छोटे छोटे राज्यों में बट गया था। उन में एकता का सूत्र टूट चुका था। एक राजा दूसरे के मन का प्यासा हो रहा था। भाई की तलवार भाई के गर्दन पर गिर रही थी। इसी स्थिति का फायदा उठाकर सिकदर ने ईसवी सन् के ३२६ वर्ष पहले भारत पर हमला बोल दिया। शक्तियों के बिखर जाने के कारण हिन्दुस्थान की सीमा को लाँघते वक्त उसका किसी से मुकाबला नहीं हुआ। वह बेखटके आगे बढता गया और बढते बढते वह आर्य विद्या के केन्द्र तक्षशिला तक पहुच गया। वहां का राजा, उस समय भारत के किसी अन्य प्रान्त के राजा से युद्ध में प्रवृत्त था। अतएव उसने देश की भलाई बुराई का कुछ खयाल न कर सिकदर का अभिनंदन किया और पुरु या पोरस राजा पर हमला करने के लिये उसे सैनिक तथा अन्य कई प्रकार की सहायता दी। पोरस ने एक बडी सेना से सिकन्दर का मुकाबला किया। पर पोरस में सैनिक चतुराई का प्राय अभाव था। सिकन्दर इसमें बडा पटु था, अतएव एक बडी फौज के होते हुए भी पुरु या पोरस को शिकस्त खाना पडी। वह पकडा गया। सिकन्दर ने उसके साथ कैदी का सा बर्ताव नहीं किया। वह एक बडे राजा की तरह सम्मान के साथ रखा गया। और जब उसने सिकदर की अधीनता स्वीकार कर ली, सिकदर ने उसे केवल उसका मुल्क ही नहीं लौटा दिया बल्कि अपने फतह किये हुए मुल्क का बहुत सा हिस्सा भी उसे दे दिया। इसके बाद वह लौट गया। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि सिकन्दर ने हिन्दुस्थान के बहुत थोडे हिस्से को

फ़तह किया था। वह दिल्ली तक भी नहीं पहुंच पाया था। कहा जाता है कि वह अपने फ़तह किये हुए मुल्क पर शासन करने के लिये अपने कुछ आदमी छोड गया था। पर जब हिन्दू सम्राट महाराजा चन्द्रगुप्त से सिल्यूकस का युद्ध हुआ, और जब इसमें सिल्यूकस को बुरी तरह हार माननी पड़ी तब इन दोनों में सुलह हो गई। इस सुलह में सिल्यूकस ने भारत की पूर्ण स्वाधीनता स्वीकार की। इस समय से प्रसिद्ध महाराज चन्द्रगुप्त अखण्ड प्रताप के साथ विंध्याचल पर्वत के उत्तर की ओर के सारे प्रदेश के सम्राट् हो गये। बंगाल आसाम, पंजाब, और अफ़गानिस्तान तक पर उनकी ध्वजा फहराने लगी। उस समय ग्रीक प्रवासी यहां आये थे, उन्होंने महाराजा चन्द्रगुप्त की शासन-पद्धति का बड़ा मनोहर चित्र खींचा है। इसके अतिरिक्त कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी इस विषय पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। सुप्रसिद्ध ग्रीक प्रवासी मेगास्थिनीज़ ने उनकी राज्य—पद्धति का जो वर्णन किया है, उस पर प्रत्येक भारतवासी को अभिमान करना चाहिये। आधुनिक यूरोप में शासन के जितने रूप हैं, उनमें से बहुत से उस समय वर्तमान थे। उस समय कौन्सिलें थीं, उस समय प्रजा प्रतिनिधियों के चुनने की रीति मौजूद थी, उस समय प्रधान मण्डल, न्याय विभाग, शासन विभाग, व्यवस्था पक-सभा, अर्थ विभाग, व्यापार और उद्योग विभाग, सेना विभाग आदि कई विभागों में राज्य कार्य बड़ी योग्यता से बाँटा गया था। इन सबकी इतनी बढ़िया और सुन्दर व्यवस्था की गई थी, कि जिसे पढ़-सुनकर आज भी आश्चर्य होता है और भारतीय सभ्यता की प्राचीन झलक सामने आ जाती है। राजनीति के धुरन्धर विद्वानों से तथा शासन-वि-

थे, पर दुःख के साथ यह कहना पड़ता है कि राजनीति से वे बिलकुल कोरे थे। उन्होंने यह नहीं समझा कि शत्रु को इस प्रकार छोड़ देने का परिणाम बुरा होगा। आखिरी युद्ध में महम्मद की छल कपट युक्त नीति के कारण पृथ्वीराज की हार हुई। वे पकड़ लिये गये और कैद कर लिये गये। उनकी आँखें तक फोड़ दी गई!! इस प्रकार अत्यन्त निर्दयता और क्रूरता से उनका वध किया गया। बस, हिन्दू साम्राज्य का अन्त यहां से हुआ। जिस राजपूत कुलकलंक जयचन्द ने महम्मद गोरी को निमन्त्रित किया था, उसकी भी बड़ी दुर्दशा हुई। महम्मद और उसके बीच में युद्ध ठन गया। इसमें जयचन्द बुरी तरह हारा और वह मार डाला गया उसने अपने किये का समुचित फल पा लिया। महम्मद गोरी ने हिन्दुस्थान में कैसे कैसे ज़ुल्म किये और वह कितनी सम्पत्ति लूट लेगया,इसका विवेचन करना इतिहास का काम है। हमें यहाँ इतनाहीं कहना है कि उसी समय से यहाँ मुसलमानों की सत्ता का वास्तविक आरम्भ हुआ है।

मुसलमानों का शासन

इस प्रसंग पर मुसलमानों के शासन के सम्बन्ध में दो शब्द लिखना अनुचित न होगा। इसमें शक नहीं कि महम्मद गोरी, नादिरशाह, औरंगज़ेब प्रभृति कुछ मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुस्थान पर ज़ुल्म किये, हिन्दुओं के पवित्र धर्म ग्रन्थों को जलाया और हिन्दुओं के मंदिरों की मूर्तियाँ तक

तोड़ीं; पर इन तीन चार बादशाहों के इन कृत्यों से हम सारे मुसलमानी शासन पर दोषारोपण नहीं कर सकते। मुसलमानों में कुछ बादशाह ऐसे भी हो गये हैं, जिनका शासन सर्वांग रूप से निर्दोष न होते हुए भी प्रशंसनीय था। उन्होंने हिंदुओं के साथ बराबरी का बर्ताव किया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में वैसा अंतर नहीं रखा था, जैसा आज अंग्रेज़ और हिन्दुस्थानी के बीच रखा जाता है। उन्होंने हिन्दुओं को बड़े से बड़े ओहदे पर नियुक्त किया था। सेनाओं के प्रधान सेनापति तक हिन्दू होते थे। वे हिंदुओं को अपना समझने लगे थे। भेद भाव की मात्रा बहुत कम थी। हालही में भोपाल राज्य के पुराने कागज़ पत्रों में सम्राट् बाबर की अपने पुत्र हुमायूं के नाम लिखी हुई एक चिट्ठी मिली है। उसमें उन्होंने अपने पुत्र को उपदेश दिया है कि बेटा, कोई ऐसा कार्य नहीं करना, जिससे प्रजा नाखुश हो और हिन्दुओं का दिल दुखे। प्रजा की प्रसन्नता ही पर राज्य की नींव दृढ़ हो सकती है। सम्राट् अकबर ने तो हिन्दुओं को प्रसन्न रखने में कोई कसर नहीं उठा रखी थी। सम्राट् अकबर की नीति उच्च उदार और लोक हित कर थी। सम्राट् अकबर ने राजा के कर्तव्यों का वर्णन इस प्रकार किया है:—

"राजा सब मङ्गल का निदान है। सब कामों की सफलता उस पर निर्भर है। गुण का समादर और न्यायानुमोदित शासन प्रथा द्वारा ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना उसका कर्तव्य है। राजाओं को ऐसे कार्यों द्वारा ईश्वर की पूजा करनी चाहिये। अत्याचारी होना सभी के लिये अनुचित है। राजा पृथ्वी की रक्षा करने वाला है, सुतरां उसका अत्याचारी होना अत्यन्त घृणास्पद है। कठ

ज्ञान के प्रेमियों से हम बहुत जोर देकर अनुरोध करेंगे कि कृपा कर एक बार कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र * को अवश्य देख जायें जिससे उन्हें पता लग जाय कि भारत में प्रबन्ध करने का माद्दा था या नहीं।

महाराजा चन्द्रगुप्त के बाद परम परोपकारी और दया की साक्षात् मूर्ति महाराजा अशोक सम्राट हुए। इनके धर्मशील साम्राज्य में हिन्दुस्थान में एकता का अच्छा सञ्चार हुआ। इस महापुरुष ने शक्ति के बल पर नहीं, पर प्रेम के उच्चतम तत्त्व के आश्रय पर राज्य किया। इनका प्रेम केवल मनुष्य जाति तक ही परिमित नहीं था, बल्कि पशु भी उनके विशाल प्रेम साम्राज्य में समा गये थे। उन्होंने मनुष्यों की तो बात ही क्या, पर पशुओं तक के लिये अस्पताल खोले थे। उनका राज्य स्वर्गीय राज्य था। आज के ऊँचे से ऊँचे राजनीति के पाश्चात्य आदर्श उनकी राजनीति को नहीं पहुंच सकते थे। अपनी प्रजा की आधिभौतिक उन्नति के भी वे परम अभिलाषी थे। दया, प्रेम, विश्वबधुत्व आदि दिव्य गुण इस महापुरुष के मूर्तिमत आदर्श थे। उन्होंने अपने राज्य में समय समय पर जो आज्ञायें निकाली हैं, वे दिव्य हैं। उनके राम राज्य में मनुष्य तो क्या, पशु पक्षी तक निर्भयता से विचरण करते थे। बड़ा ही दिव्य और स्वर्गीय साम्राज्य था। महाराजा अशोक के समय सारे भारतवर्ष पर भारत वासियों का राज्य था। इस वक्त यहा विदेशियों की सत्ता का नामो निशान भी न था। हाँ, मध्य एशिया की थोड़ी सी

* यह मूल ग्रन्थ संस्कृत में है। इसका अंग्रेजी अनुवाद हो चुका है। यह कलकत्ते बम्बई या मद्रास के किसी सुप्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक विक्रेता के यहां मिल सकता है।

भ्रमणशील या खानाबदोश (Nomad) जातियाँ इस वक्त हिन्दुस्थान में घुस आई थीं, पर धीरे धीरे आर्य्यों ने उन्हें अपने में मिला लिया। महाराजा अशोक के बाद कई शताब्दियों तक यहाँ हिन्दुओं की ही राज्य पताका उड़ती रही।

आठवीं सदी में हिन्दुस्थान के इतिहास ने पलटा खाया। आठवीं सदी के मध्य में मुसलमानों ने हिन्दुस्थान पर धावा किया। इसके बाद ४०० वर्ष तक हिन्दुस्थान के सीमा द्वार पर मुसलमान सिर टकराते रहे, पर उन्हें सफलता नहीं हुई। बाद में उन के पैर जमे। इस समय महाराजा पृथ्वीराज दिल्ली के सम्राट थे। उनमें और कन्नौज के राजा जयचन्द में किसी बात पर अनबन हो गई। दोनों एक दूसरे के खून के प्यासे होगये। जयचन्द ने मुहम्मद गोरी को महाराजा पृथ्वीराज पर हमला करने के लिये निमन्त्रित किया। उस वक्त मूर्ख जयचन्द ने यह नहीं समझा कि मैं अपनी व्यक्तिगत दुश्मनी का बदला कितनी अदूरदर्शिता से ले रहा हूँ वह मूर्ख यह भूल गया कि उसके इस देश-द्रोही कार्य्य से भारत की स्वाधीनता का सूर्य्य विलीन होजायगा, और इस पाप का फल उसे अपने जीवन ही में मिल गया। "विनाश काले विपरीत बुद्धि" की कहावत बिलकुल सच है। मनुष्यका जब विनाशकाल समीप आ जाता है, तब वह अपने भले बुरे को भूल जाता है। उस समय उसके सिर पर शैतान सवार हो जाता है। भारत कुल कलंक जयचन्द ने केवल मुहम्मद गोरी को निमन्त्रित ही नहीं किया पर महाराजा पृथ्वीराज के विरुद्ध उसे भरपूर सहायता भी दी। तौ भी पृथ्वीराज ने महम्मद गोरी को कई बार भारी शिकस्त दी और शिकस्त देकर ही उसे छोड़ दिया। पृथ्वीराज यद्यपि वीर शिरोमणि

बोलना सभी के लिये अनुचित है। राजा पृथ्वी की रक्षा करने वाला है परन्तु राजाओं के लिये अत्याचारी होना अत्यन्त ही गर्हित है। प्राणी जगत दया से जितना वशीभूत हो सकता है उतना और किसी वस्तु से नहीं। इसीलिये सब के प्रति दया करना हमरा कर्तव्य है। दया और परोपकार समाज के सुख के निदान है। भारत की भिन्न भिन्न जातियों और भिन्न २ धर्मों को देखकर मेरे चित्त में बडी अशांति होती है, परन्तु धर्म मत में किसी को उत्पीडन करना बहुत अनुचित है, क्योंकि जो ईश्वर के निर्दिष्ट पथ पर जा रहा है उसको बाधा देना अत्यन्त अनुचित है'।

ऊपर के वाक्यों स पाठकों को अकबर का शासन नीति के आदर्श का कुछ ज्ञान हुआ होगा। इसके अतिरिक्त अकबर ने अपने समय में हिन्दू मुसलमानों में एकता उत्पन्न करने का भी स्तुत्य प्रयत्न किया था। उसने यह अभिलाषा प्रकट की थी—' मैं अपने साम्रज्य को हिंदू मुसलमानों के सम्मिलित साम्राज्य में परिणत करूगाँ " इस कार्य की सिद्धि के लिये उसने मुसलमानों की तरह हिन्दुओं को भी बडे बड़े पदों पर नियुक्त किया था। हिन्दुओं पर उसने यहा तक विश्वास किया था कि अपनी सारी सेना का सञ्चालन जयपुर के राजा मानसिंह के हाथ सौपा था। वह हिन्दुओं को प्रसन्न करने के लिये हिन्दुओं के ऋषि और आचार्यों का बडा सम्मान करता था। सुप्रसिद्ध हरिभद्रसूरी को वह गुरु की तरह सम्मान करता था और उसने जैनियों के पर्युषण पर्व में जीव हिंसा न करने की आज्ञा प्रकाशित की थी। अर्थात् प्रजा, जिस कार्य्य से खुश हो, जिससे प्रजा का कल्याण हो, उसे सहर्ष करता था और कोई ऐसा काम नहीं करता था

जिससे प्रजा का विरोध बढ़े। इसी मिलनसारी की नीति के कारण उसने मुसलमानी साम्राज्य की नींव इतनी दृढ़ करदी थी कि वह कई शताब्दियों तक बनी रही। पर पीछे औरंगज़ेब की कठोर नीति के कारण वह ढीली पड़ती गई और अन्त में खिसक पड़ी।

यद्यपि सब मुसलमान बादशाह अकबर के सदृश नहीं थे, तो भी यह कहना पड़ेगा कि मुसलमानी शासन विदेशी नहीं था। इसमें शक नहीं कि मुसलमान हमला करने वाले लोग असल में उसी प्रकार विदेशी थे। इनकी ठीक वही हालत थी जो पहले पहल इंग्लैण्ड में पहुँचनेवाले नॉर्मन और डेन्स लोगों की थी। पर ज्योंही मुसलमान लोग हिन्दुस्थान में बस गये, यहाँ उन्होंने अपने घर बना लिये तथा यहां शादी व्यवहार करने लग गये त्योंही वे भी यहां के हो गये। जिस प्रकार आज के मुसलमान हिन्दुस्थान को अपनी मातृभूमि मानते हैं उसी प्रकार अकबर और औरंगज़ेब भी मानते थे। शेरशाह और इब्राहीम लोदी भी विदेशीय न थे। वे हिन्दुस्थानी हो गये थे। जब तैमूरलंग, नादिरशाह और अहमदशाह अब-दाली ने हिन्दुस्थान पर हमला किया तब, मानों उन्होंने उस राज्य पर हमला किया जिसपर हिन्दुस्थानी मुसलमानों का अधिकार था। वे हिन्दुस्थानी मुसलमानों के भी वैसेही शत्रु थे जैसे हिन्दुओं के।

जिन मुसलमानों ने तेरहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी तक हिन्दुस्थान पर राजनैतिक अधिकार रखा, वे जन्म से मृत्यु के समय तक हिन्दुस्थानी ही थे। वे हिन्दुस्थान में जन्मे, हिन्दुस्थान में उनकी विवाह शादी हुई, हिन्दुस्थान में वे मरे और हिन्दुस्थान ही में दफ़न हुए। उनका

मालगुज़ारी का वसूल किया हुआ पैसा हिन्दुस्थान ही में खर्च होता था। वे प्राय उन्हीं लोगों को नौकर रखते थे जो हिन्दुस्थान में वसने को राजी हो जाते थे। उनका हिन्दुओं के साथ कोई राजनैतिक द्वेश नहीं था। अगर कुछ द्वेश था तो वह धार्मिक द्वेश था। आज हिन्दुस्थानी और अंग्रेज के बीच में जो भेद भाव रखा जाता है वैसा मुसलमान बादशाहों के समय हिन्दू और मुसलमानों में नहीं रखा जाता था। अगर कभी जातीय श्रेष्ठत्व का प्रश्न आता था तो वह हिन्दू मुसलमानों के बीच नहीं, वरन् मुसलमान और मुसलमानों के बीच में आता था। अर्थात् ऐसा प्रश्न पठानों या मुग़लों और लोधियों में उपस्थित होता था।

शेरशाह, अकबर, जहाँगीर आदि मुसलमान बादशाहों के समय में हिन्दू लोग ऊँचे से ऊँचे राज्याधिकार पर पहुँचा करते थे। जातीय भेद की दीवार उनकी उन्नति के मार्ग में बाधा नहीं पहुँचा सकती थी। उस समय हिन्दू गवर्नर थे। फौजों के जनरल थे। ज़िलों और प्रान्तों के शासक थे। प्रधान मन्त्री तक के पद पर बिना किसी भेद भाव के हिन्दू लोग लिये जाते थे। हिन्दू और मुसलमानों के बीच किसी प्रकार का राजनैतिक भेद नहीं था। राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से देखने पर मुसलमानों का शासन उतना ही देशी (indigenous) था जितना हिन्दुओं का। मुसलमानों ने कभी जनता से शस्त्र छीन कर उसे नामर्द और शक्ति हीन बनाने का नीच और कायर प्रयत्न नहीं किया। उनके ज़माने में सबको हथियार बांधने का अधिकार था। फौज के सब लोग यहीं से भरती किये जाते थे। उन्हों ने कभी अफगानिस्तान, ईरान और अरब से फौजी रिक्रूट नहीं बुलाये। उन्होंने अपने मूल देश की उन्नति के लिये हिन्दुस्थान के उद्योग धन्धों को डुबाने का कभी हत्याकारी

प्रयत्न नहीं किया। उन्हों ने हिन्दुस्थान के उद्योग धन्धों को हर तरह से उत्तेजन दिया। वे अपने साथ अपनी भाषा और साहित्य लाये सही, पर थोड़े ही दिनों में हिन्दुस्थान की परिस्थिति का ख्याल कर उन्होंने एक ऐसी भाषा बना डाली जो वैसी ही हिन्दुस्थानी है, जैसी कि हिन्दुस्थान में बोली जाने वाली अन्य भाषायें हैं। इस भाषा का नाम उर्दू या हिन्दुस्थानी है और हिन्दुस्थान के चारों कोनों में प्रायः यह समझी जा सकती है। अगर कोई मुसलमान बादशाहों का संरक्षण चाहता था तो उसे हिन्दुस्थान में आकर बसना पड़ता था। हिन्दुस्थान के मुसलमान शासकों को ईरान और अफगानिस्तान के मजदूरों या व्यापारियों के हिताहित देखने की आवश्यकता ही नहीं रहती थी। क्योंकि उन्होंने अपना सारा दारोमदार हिन्दुस्थान ही पर रखा था। कहने का मतलब यह है कि मुसलमानों की बादशाहत विशुद्ध हिन्दुस्थानी थी। वह किसी प्रकार विदेशी नहीं कही जा सकती थी।

इतिहास एक भी उदाहरण ऐसा नहीं देता, जिससे यह सिद्ध होता हो कि ब्रिटिश राज्य के पहले हिन्दुस्थान पर किसी ऐसी जाति ने शासन किया हो जिसमें हिन्दुस्थानी खून का नामों निशान न हो और जिसने दूसरे * देश और दूसरे लोगों

* सुप्रसिद्ध अंग्रेज वक्ता एडमण्ड बर्क ने सन् १७८३ में ब्रिटिश पार्लमेंट के सामने व्याख्यान देते हुए इस आशय के वचन कहे थे—हिन्दुस्थान के एशियाई विजेताओं ने अपनी भीषणता (ferocity) को शीघ्र ही बन्द कर दी; क्योंकि उन्होंने विजित भूमि को अपनी भूमि बना लिया। हिन्दुस्थान की भूमि के साथ उनका रक्त-सम्बन्ध हो गया। वे अपनी आशा भरोसा और सर्वस्व हिन्दुस्थान

के हित या स्वार्थ के लिये राज्य किया हो। भारत हमेशा भारतीय साम्राज्य के अन्तर्गत रहा है। वह ब्रिटिश शासन के पहले कभी दूसरे साम्राज्य का टुकड़ा नहीं रहा। उसके पास हमेशा अपने निज की जल और स्थल सेना रही है। हिन्दुस्थान की मालगुजारी हमेशा हिन्दुस्थान ही में खर्च होती थी। उसमें बड़े बड़े उद्योग धंधे थे और वह अपनी आवश्यकता की

ही को समझने लगे। सन्तान अपने पूर्वजों के स्मारक यहीं खड़े करने लगी। पर अँग्रेजों की बात इससे बिलकुल विपरीत है। इसमें शक नहीं कि हिन्दुस्थान पर तातारों का हमला दुष्ट भावों से युक्त (*mischievous*) था। पर हमारी रक्षा ने तो हिन्दुस्थान का सत्यानाश ही कर दिया। उनकी दुश्मनी ने हिन्दुस्थान का जितना बुरा नहीं किया, उतना हमारी मित्रता ने किया। विजय के बीस वर्ष बाद भी हमारा शासन वैसा ही कठोर और भद्दा है जैसा कि पहले पहल आरम्भ में था। हिन्दुस्थान के निवासियों को गोरी चमड़ी के कभी भाग्य ही से दर्शन हो जाते हैं। प्राय' नवयुवक या छोकरे वहाँ शासन करते हैं। वे हिन्दुस्थानियों के समाज से दूर रहते हैं और हिन्दुस्थानियों के लिये उनके दिल में कोई हमदर्दी नहीं रहती। हिन्दुस्थान में रह जाने के बाद भी वे वैसेही अनजान रहते हैं मानो वे अभी इंग्लैण्ड ही में रहे हों। हिन्दुस्थानियों की आँखों के सामने घोर निराशा के बादल छा रहे हैं। उनकी दरिद्रता और भूख बढ़ती जा रही है। वे दीनहीन और दुर्बल होते जा रहे हैं। अँग्रेज जो नफा कमाते हैं। उनका एक एक रुपया सदा के लिये हिन्दुस्थान से निकल जाता है।

पूर्ति अपने ही यहाँके बने हुए मालसे करता था। जो विदेशी लोग यहाँ व्यापार करना चाहते थे, उन्हें ख़ास तौर से इजाज़त लेना पड़ती थी जैसे कि ईस्ट इंडिया कम्पनी को लेनी पड़ी थी। आज कल लण्डन में जैसा ईस्ट इण्डिया आफिस है और जिस प्रकार भारत को उसकी ओर टकटकी लगा कर देखना पड़ता है, वैसे मुसलमानों के ज़माने में ईरान या अफ़ग़ानिस्तान में भारत के शासन का सूत्रधार कोई इण्डिया आफिस नहीं था।

हिन्दुस्थान और ब्रिटिश राज्य।

मुसलमानों के शासन काल में हिन्दुस्थान की जो स्थिति थी, वह ब्रिटिश राज्य में नहीं रही। उसमें बड़ा परिवर्तन हो गया है। यह पहला ही मौक़ा था कि हिन्दुस्थान एक दूसरे साम्राज्य का हिस्सा बना। आज हिन्दुस्थान अपने निज के साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं है। आज वह ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा समझा जाता है। इतिहास में यह पहला अवसर है कि वह दूर देश में रहनेवाले विदेशी शासकों द्वारा शासित किया जाता है। यह पहला मौक़ा है कि वह ऐसे साम्राज्य के शासन में है जो सात समुद्र पार विलायत में रहते हैं और हर पाँचवें साल हिन्दुस्थान पर शासन करने के लिये एक वाइसरॉय को भेजते हैं। यह पहला वक्त है कि हिन्दुस्थान के राज्य का कारोबार ऐसे लोग चलाते हैं जो आते हैं और चले जाते हैं। यह पहला ही समय है कि राज्य के प्रायः सभी बड़े बड़े ओहदे पर, सेनापति या सेना विभाग के ओहदे पर

न्याय विभाग के सर्वोत्कृष्ट स्थानों पर ऐसे लोग नियुक्त कि जाते हैं जिनके दिल में भारत के लिये नाम मात्र की हमदर्द रहती है। वे विलायत से मुकर्रर हो कर आते हैं और अपनी मियाद खतम हो जाने पर वापिस चले जाते हैं। बड़े बड़े पदों पर प्राय अंग्रेजही अंग्रेज देख पडते हैं। नाम मात्र के लिये, अब कुछ हिन्दुस्थानी रखे जाने लगे हैं। डेढ सौ वर्ष के ब्रिटिश शासन के बाद हाल में केवल एक हिन्दुस्थानी का-लार्ड सिंह को-विहार की गवर्नरी की जगह मिली है। अपने देश की सिविल सर्विस की योग्यता पाने के लिये बेचारे हिन्दुस्थानियों का अपना देश छोडकर छ हजार मील की दूरी पर ठेठ लंडन पहुंचना पडता है।

हिन्दुस्थान के राजनैतिक इतिहास में यह पहला ही मौका है कि जिसमें राजनैतिक दृष्टि से हिन्दुस्थानी अयोग्य समझे जाते हैं। अगर कोई अंग्रेज का बच्चा हिन्दुस्थानी रिवाजों को अख्तियार कर ले और हिन्दुस्थानी स्त्री के साथ शादी कर ले तो वह अपना मान मरतबा खो देता है। अपने समाज में उसका दर्जा बहुत नीचा हो जाता है। इसी प्रकार किसी हिन्दुस्थानी से किसी अंग्रेज स्त्री के लड़का हो तो वह अंग्रेजों के नागरिकत्व के अधिकारों से वञ्चित रहता है। बात यह है कि आजकल के जमाने में बहुत से गोरों के द्वारा हिन्दुस्थानी खून ही नालायक समझा जाता है। यह बात मुसलमानों के राज्यकाल में नहीं थी। उस समय अगर कोई मुसलमान हिन्दू स्त्री के साथ शादी कर लेता तो इससे उसके राजनैतिक अधिकारों पर कुछ असर नहीं होता था। पर आज के हिन्दुस्थान में यह बात नहीं है। यहाँ तक कि अगर कोई हिन्दू ईसाई हो जाता है तो इससे भी उसके राजनैतिक स्वत्व जैसे के तैसे ही

बने रहते हैं । हिन्दुस्थानियों की राजनैतिक अयोग्यता धार्मिक भेद भाव पर निर्भर नहीं करती । हिन्दुस्थान में जन्म लेने ही से, फिर चाहे वह किसी धर्म का अनुयायी क्यों न हो, अयोग्य हो जाता है । मानो हिन्दुस्थान के जल वायु ही में अयोग्यता के परमाणु भरे हों । बेचारे हिन्दुस्थानी, अपनेही मुल्क में अच्छी नौकरियाँ नही पाते । तमाम ऊंची ऊंची नौकरियां पर विदेशी भरे हुए हैं । अधिकांश छोटी छोटी नौकरियाँ ही इनके नसीब में लिखी रहती हैं ।

इसके अतिरिक्त हिन्दुस्थानी एक ऐसे नैसर्गिक अधिकार से वञ्चित हैं जिस अधिकार से संसार के किसी सभ्य देश के नागरिक नहीं हैं। बेचारे हिन्दुस्थानी आत्म-रक्षा केसाधन से भी वञ्चित हैं । उन्हें, अपने ही प्यारे देश में बिना लाइसेन्स लिये शस्त्र रखने का अधिकार नहीं । दुःख इस बात का है कि हिन्दुस्थान मे रहने वाले युरोपियन युरेशियन्स, अर्मेनियन और ज्यू लोग बिना लाइसेन्स के शस्त्र रख सकते हैं । पर हिन्दुस्थानी बिना खास इजाजत के इस नैसर्गिक अधिकार से वञ्चित हैं । कितने अफसोस की बात है कि जिस पवित्र भूमि पर हम भारतीयों का नैसर्गिक अधिकार है जहाँ हमारे वीरों ने अपनी तलवार की करामात से अपनी अलौकिक वीरता का परिचय दिया है जहाँ हमने स्वाधीनता माता की रक्षा के लिये अपना खून बहाया है, उसी वीर भूमि भारत माता की सतानों को शस्त्र रखने का पूरा अधिकार नहीं है ।

राजनैतिक पराधीनता के कारण भारतवासियों का आदर न घर में होता है और न बाहर। दूसरी जगह की तो बात ही क्या पर खास ब्रिटिश उपनिवेशों के द्वार भी हिन्दुस्थानियों के लिये बन्द हैं । ब्रिटिश उपनिवेशों मे हिन्दुस्थानियों के कैसे

कैसे भीषण अपमान किये जाते हैं, उन पर कैसे कैसे अत्याचार किये गये या किये जाते हैं, इन सब का विवेचन हम किसी अगले अध्याय में करेंगे। बात यह है कि हिन्दुस्थानी सारे संसार में पतितों के समान समझे जाते हैं। सच है, जिस मनुष्य का घर में आदर नहीं, उसका बाहर भी आदर नहीं। ब्रिटिश नौकरशाही नहीं चाहती कि हिन्दुस्थानी लोग बाहर जायँ इसका कारण साफ है। विदेशों में जाने से बुद्धिमान हिन्दुस्थानी भारत की नौकरशाही के शासन की तुलना अन्य देशों के शासन से करेंगे और इससे उनके चित्त पर नौकरशाही के लिये अच्छा असर नहीं होगा। स्वतंत्र देशों के स्वतंत्र वायु-मण्डल में रहने से लोगों की आकांक्षाओं का विकास होता है और नौकरशाही, इसमें अपना नुकसान समझती है। वह समझती है कि आकांक्षाओं के बढने से नौकरशाही की मजबूत दीवार कमजोर हो जायगी। लोग अपने अधिकारों के लिये आन्दोलन करने लगेंगे और वे अपने प्यारे देश को अन्य देशों के मुकाबले में ऊँचा उठाने की चेष्टा करेंगे। इससे स्वेच्छाचारी नौकरशाही के स्वार्थ में बाधा पड़ेगी और शायद ऐसा मौका आ जाय कि नौकरशाही का स्थान देश के चुने हुए जिम्मेदार प्रतिनिधि ले लें। इस प्रकार के अनेक ख़यालों को सामने रखकर नौकरशाही बुद्धिमान हिन्दुस्थानियों के विदेश गमन को उत्तेजन नहीं देती। वह ऊपर से तो यही कहती है कि भारतवासी विद्याध्ययन और कलाकौशल सीखने के लिये बाहर जायँ। पर भीतर ही भीतर उसका ऐसा प्रयत्न होता है, जिससे उनके मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाएँ पड़ती रहें।

इसके अतिरिक्त बेचारे हिन्दुस्थानियों के लिये न्याय की व्यवस्था भी संतोषजनक नहीं है। हम सुना करते थे कि

संसार में ब्रिटिश न्याय पद्धति आदर्श समझी जाती है। पर दुःख है कि हम भारतवासियों को पद पद पर इसके विपरीत अनुभव हो रहा है। जहाँ किसी अँग्रेज़ और हिन्दुस्थानी के बीच फ़ौजदारी का मामला उपस्थित होता है, वहाँ बहुधा अन्याय ही किया जाता है। आज तक गोरों के बूटों की ठोकरों से कितने ही अभागे हिन्दुस्थानियों की जानें गई। पर क्या किसी ने कभी स्वप्न में भी यह सुना है कि अमुक गोरे को हिन्दुस्थानी की जान लेने के लिये फाँसी की सज़ा हुई? ऐसे मौके पर कह दिया जाता है कि जो हिन्दुस्थानी ठोकर से मारा गया है, उसके पेट की तिल्ली बढ़ी हुई थी! एक छोटे दर्जे के गोरे मेजर के द्वारा दिल्ली का एक सुप्रसिद्ध रईस पीटा जाता है और इसके बदले में अँग्रेज़ों के न्यायालय से उस गोरे पर सिर्फ़ दस रुपया दंड होता है! सैकड़ों ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे यह साफ़ प्रकट होता है कि अँग्रेज़ों के न्यायालय में उसी मामले में न्याय की आशा की जा सकती है जो हिन्दुस्थानी, हिन्दुस्थानी के बीच हो। हमने एक भी उदाहरण ऐसा नहीं देखा जिसमें किसी हिन्दुस्थानी और अँग्रेज़ के बीच के फ़ौजदारी मामले में अँग्रेज़को यथेष्ट दण्ड मिला हो। ये बातें मुसलमानी न्यायालयों में नहीं हुआ करती थीं। बेचारे हिन्दुस्थानियों की जान को कई अनेक मदोन्मत्त गोरे कुछ भी नहीं समझते। क्योंकि उन्हें इस बात का विश्वास रहता है कि हिन्दुस्थानी की जान तक ले लेने के अपराध में हम बहुत सस्ते छूट जायँगे। उन्हें इस बात का अभिमान रहता है कि परमात्मा ने हमें गोरी चमड़ी दी है, और इससे वे हर प्रकार से सुरक्षित हैं।

इस वक्त बेचारे हिन्दुस्थानियों की दशा, उन्हीं के देश में, सम्मान पूर्ण नहीं है। वे हर प्रकार गोरों से नीचे दर्जे के समझे जाते हैं। गोरों के लिये, प्राय रेलो में सेकेण्ड क्लास के डिब्बे खास तौर से रिजर्व रहते हैं। उन पर लिखा रहता है "For Europeans only" अर्थात् ये डिब्बे केवल युरोपियनों के लिये हैं। पर क्या कभी किसी ने किसी रेल के डिब्बे पर यह शब्द भी देखा है "For Indians only"? कभी नहीं देखे होंगे। सेकेण्ड क्लास में गोरों के द्वारा बड़े बड़े इज्जतदार हिन्दुस्थानियों की जो बेकदरी होती है, उसके हाल समाचार पत्रों के पाठकों को मालूम होंगे। देखा गया है कि सेकेण्ड क्लास में कोई इज्जतदार हिन्दुस्थानी सोया है। उसमें कोई गोरा आता है और बूट की ठोकर देकर उसे जगा देता है। उसका सामान फेंक देता है और उसे धक्के देकर बाहर निकाल देता है। वह बेचारा स्टेशन के अधिकारियों के पास फर्याद करता है पर उस गौराङ्ग का कुछ नहीं होता। सेकेण्ड क्लास में स्वामी श्रद्धानन्द जेसे परम पूज्य नेताओं का अपमान हुआ। कई भारतीय महिलाओं का सतीत्व भग करने का प्रयत्न किया गया! बात यह है कि पराधीन हिन्दुस्थानियों को कुछ गोरे जानवर से भी बदतर समझते हैं। और देखिये! कई स्टेशनों पर गोरों के लिये खास वेटिंग रूम बने रहते हैं। उनमें हिन्दुस्थानी नहीं ठहर सकते। उनमें जो सुभीताऍं रहती हैं, वे उन रूमों में नहीं रहती जो केवल हिन्दुस्थानियों के लिये रहते हैं।

गोरों और कालों के दूसरे भेद देखिये। कोई हिन्दुस्थानी मजिस्ट्रेट गोरे पर मुकद्दमा नहीं चला सकता। गोरों के मुकद्दमे गोरे ही मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश के सामने चलेंगे। गोरे लोग

इस बात का अभिमान कर सकते हैं कि हमारी जाति शासक है। शासित जाति के मजिस्ट्रेट के सामने खड़े होना हमारी शान के खिलाफ है।

जेलखानों में गोरों के लिये विशेष प्रबन्ध रहता है। वे साफ सुथरे कमरों में रखे जाते हैं। उनसे हिन्दुस्थानियों की तरह कड़ा काम नहीं लिया जाता। उनके खाने पीने का प्रबन्ध उत्तम रहता है। हमारे हिन्दुस्थान के नेताओं से, जेल में ऐसे ऐसे काम लिये जाते हैं जिनके विषय में लिखते हुए भी हमें सङ्कोच होता है। हमने देखा है कि शासन पर निर्भीक और कड़ी टीका करने के अपराध में हिन्दुस्थान के किसी प्रतिष्ठित पत्र के सम्पादक को सख़्त सजा होती है। उससे चक्की पिसवाई जाती है। उसकी शक्ति के बाहर उससे नीच श्रेणी का कार्य्य लिया जाता है और इनकार करने पर उसे कोड़ों की मार पड़ती है। संसार के किसी सभ्य देश में राजनैतिक कैदियों के साथ वैसा निर्दय व्यवहार नहीं किया जाता, जैसा इस अभागे देश में किया जाता है। जिसे लोग देवता के समान पूजते हैं, जिसे लोग अपना नेता मानते हैं, किसी राजनैतिक अपराध के कारण जेल जाने पर उसकी ऐसी दुर्दशा की जाती है मानो उसने कोई शैतानी काम किया हो। जो रिआयतें और सुविधायें खूनियों और डाकुओं को, जेल में दी जाती हैं, वह भी राजनैतिक कैदियों को नहीं दी जातीं—जो लोग किसी राजनैतिक अपराध में जेल गये हैं वे अपनी अपनी राम कहानी लिखकर प्रकाशित करें तो एक प्रकार का हृदयद्रावक रहस्य खुलेगा। जहां जेल में युरोपियन लोग अच्छे और हवादार कमरों में रखे जाते हैं और उन्हें कानून के अनुसार सब प्रकार की सुविधायें दी जाती हैं, वहाँ

हमारे कितनेही राजनैतिक कैदियों को अन्धेरी कोठरियों में सड़ना पड़ता है और उनके साथ पशुओं से भी नीच व्यवहार किया जाता है ।

इस प्रकार बेचारे हिन्दुस्थानियों को अपने ही देश में वह अधिकार नहीं, जो सात समुद्र पार के गोरे नागरिकों को हैं । क्या यह स्थिति वाञ्छनीय है ? क्या अंग्रेज लोग, अगर उनपर ऐसी स्थिति जबरदस्ती लादी जाय, तो उसे बरदाश्त कर सकते हैं ? इस समय हिन्दुस्थानियों की क्या दशा हो रही है, इसका अनुमान उन लोगों को नहीं हो सकता जिन्होंने जन्म भर दूसरों पर हुकूमत करने का और दूसरों की स्वाधीनता को कुचलने का प्रयत्न किया है । इसके सम्बन्ध में विस्तृत रूपसे यथावसर हम आगे लिखेंगे, । अब हम संक्षेप में ब्रिटिश राज्य के आरम्भ से लेकर अब तक के शासन पर थोड़ासा प्रकाश डालना चाहते हैं ।

सन् १७५७ से १८५७ तक की

भारत की स्थिति ।

सन् १७०७ में औरंगजेब बादशाह की मृत्यु हो गई । उसकी मृत्यु के पचास वर्ष बाद हिन्दुस्थान से मुग़ल साम्राज्य का नामों निशान भी उठ गया । मुग़ल साम्राज्य का क्यों अन्त हुआ, इस पर यहाँ दो शब्द लिखना अनुचित न होगा । हमने पहले दिखलाया है कि औरंगजेब के परदादा सम्राट्

अकबर ने अपनी लोक प्रियता के कारण साम्राज्य की नींव बहुत मज़बूत कर दी थी। उसने हिन्दुओं से मिलकर उन्हें हर तरह प्रसन्न रख कर शासन किया था। इसी से वह अपने साम्राज्य का इतना अधिक विस्तार कर सके। उसने हिन्दुओं के दिल दुखाने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया। हिन्दुओं के सहयोग से सम्राट् अकबर ने जो काम बनाये, वे इतिहास के पाठकों से छिपे नहीं हैं। सम्राट् अकबर के पोते औरंगज़ेब ने उस की नीति का अनुकरण नहीं किया। यद्यपि सम्राट् औरंगज़ेब के समय में हिन्दुओं के राजनैतिक अधिकारों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था और हिन्दू लोग बड़े बड़े पदों पर थे, पर उसने धार्मिक अत्याचार बहुत किये। उसने हिन्दुओं पर जज़िया कर लगाया। उसने कई हिन्दुओं को मुसलमान होने के लिये मजबूर किया। हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं पर अत्याचार किये। इन्हीं अत्याचारों के कारण उसने मुग़ल साम्राज्य के खिलाफ़ एक ज़बरदस्त नैतिक शक्ति (moral force) खड़ी कर दी। इसी का यह परिणाम हुआ कि मुग़ल साम्राज्य का सूर्य्य अस्ताचल को जाने लगा। औरंगज़ेब का कुशासन मुग़ल साम्राज्य को जड़ से खोद देने में ख़ास कारण हुआ जैसा हम ऊपर कह चुके हैं। धार्मिक द्वेष के कारण औरंगज़ेब ने मुग़ल साम्राज्य के ख़िलाफ़ कई शत्रु खड़े कर लिये। पंजाब में सिख लोग, गुरु गोविन्द सिंह के झण्डे के नीचे और दक्षिण में महाराष्ट्र लोग छत्रपति शिवाजी की अधीनता में मुग़ल साम्राज्य की जड़ खोद देने के लिये अपनी शक्तियों को केन्द्रीभूत कर रहे थे। ये दो शक्तियाँ औरंगज़ेब के समय में यद्यपि मुग़ल साम्राज्य को नष्ट न कर सकी थीं, पर उन्होंने उसे बहुत कमज़ोर कर दिया था।

औरंगजेब के पापों का फल आगे चल कर पूर्ण रूप से उसके वशजों को भुगतना पड़ा। साम्राज्य की कमजोरी देखकर हैदराबाद के निजाम और मैसोर के नवाब ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। बंगाल और अवध के नवाब भी नाम मात्र के लिये मुगल बादशाह के आधीन थे। दक्षिण हिन्दुस्थान और मध्य भारत का बहुत सा मुल्क मराठों के अधिकार में आगया था। उस समय हिन्दुस्थान की शक्तियाँ बिखर गई थीं, हिन्दुस्थान कई शक्तियों में विभक्त हो गया था। चारों ओर गड़बड़ी और अराजकता फैली हुई थी। आपस ही में युद्ध हो रहे थे। हर एक अपनी अपनी प्रभुता चाहता था। एक दूसरे को गिराने की चेष्टा में थे। एकता की डोर बहुत कुछ टूट चुकी थी। इसी स्थिति का फायदा उन युरोपियनों ने उठाया, जो पहले केवल व्यापार करने की इच्छा से यहाँ आये थे। अबतक तो इनका प्रधान उद्देश व्यापार ही था, पर हिन्दुस्थान की इन बिखरीहुई शक्तियों को देखकर उन्होंने यहाँ राज्य स्थापित करने का यह उपयुक्त अवसर समझा।

हिन्दुस्थान मे अँग्रेज़ों और फ्रेन्चो की लड़ाइयाँ।

जैसा-हम ऊपर कह चुके हैं हिन्दुस्थान में एक भाई दूसरे भाई के खिलाफ एक शक्ति दूसरी शक्ति के खिलाफ, राजपूत जाटों के खिलाफ जाट राजपूतों के खिलाफ, मराठे जाटों के खिलाफ; एक राज्य दूसरे राज्य के खिलाफ तलवार उठाये हुए हैं। भारतवर्ष का शक्तियों का एकीकरण होने के बदले विभाग हो रहा है। ऐसी गड़बड़ी की अवस्था में अँग्रेज और

फ्रेन्च दोनों मेदान में उतरते हैं। वे देखते हैं कि सोने की चिड़िया हिन्दुस्थान पर अधिकार करने का यह उपयुक्त और ठीक अवसर है। इन दोनों शक्तियों की अर्थात् अंग्रेज़ और फ्रेन्चों में इस समय बड़ी प्रतिस्पर्धा थी। अंग्रेज़ चाहते थे कि हम हिन्दुस्थान के मालिक बन बैठें और फ्रेन्च चाहते थे कि हम। हिन्दुस्थान के राजा या नवाब अपने प्रतिस्पर्धी के खिलाफ़ इनमें से किसी एक की सहायता लेते थे। अंग्रेज़ अगर किसी राज्य की सहायता करते तो फ्रेन्च अक्सर उनके प्रतिस्पर्धी को सहायता देते थे। इस सहायता के बदले में इनका ख़ूब मतलब बनता था इनके जेब ख़ूब गर्म होते थे, उस समय इन लोगों ने, हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है, नीति नियमों को भुला दिया था, विवेक की आत्मा को एक ओर रख दिया था। विजय और राज्य प्राप्ति के लिये जो चाहते थे वह करते थे। विधवाओं और नाबालिगों तक पर अत्याचार करने में कसर नहीं की जाती थी। अगर उस वक्त इन लोगों का कोई लक्ष्य-कोई ध्येय-था तो ज्यों त्यों करके अपना मतलब बनाना था। इस वक्त इन लोगों ने क्या २ किया, इस बात की जानकारी प्राप्त करने की जो लोग इच्छा रखते हैं उन्हें बर्क का "Impeachment of Warren Hastings" होरेन का 'Our Empire in India' और बेलका "Annexation' नामक ग्रन्थ देखना चाहिये। इन्हें देख कर उनका हृदय दहल जायगा।

फ्रेंचों की यहाँ दाल न गली। इसका सबब क्या है, इसका विवेचन यहां ठीक नहीं। अंग्रेज़ों ने पहले पहल सन् १७५७ में प्लासी में विजय प्राप्त की। यह विजय कैसे प्राप्त की गई, इसमें क्या क्या चालें चली गईं, किसप्रकार नमक-हराम मीर

जाकर फोड़ा गया, इन बातों के रहस्य सभी इतिहास के पाठकों से छिपे नहीं हैं। इसे यहाँ दोहराना अनावश्यक है, हम सिर्फ यहाँ यही कहना चाहते हैं कि प्लासी की विजय अँग्रेजों की सैनिक विजय नहीं कही जा सकती। यह केवल अँग्रेजों की कूटनीति (diplomacy) की विजय थी। आगे चलकर भी अँग्रेजों की कूटनीति विजय पाती गई। भोले, भाल हिन्दुस्थानी बहुत दिनों तक इस कूट नीति (diplomacy) को न समझ सके। नीति नियम सन्धिपत्र, ताक में रख दिये गये। इन्हें ज्यों त्यों कर साम्राज्य स्थापित करने की लालसा लगी। इसके लिये कैसे कैसे उपाय किये गये, कैसी कैसी चालें चली गईं, नीति नियमों को भुलाकर कैसी कैसी ज्यादतियां की गईं, इन सबके हृदय विदारक वर्णन खास अँग्रेजों के ग्रन्थों ही में मिलते हैं। इसका थोड़ा सा दिग्दर्शन पिछले अध्यायों के पढ़ने से भी हो गया होगा।

हिन्दुस्थान और ब्रिटिश जनता।

इसमें शक नहीं कि हिन्दुस्थान में की जानेवाली ज्याद तियों से स्वतत्रता प्रेमी ब्रिटिश जनता उस समय वैसी ही अज्ञान थी, जैसी कि अभी एक दो वर्ष के पहले थी। वह केवल यही जानती थी कि हिन्दुस्थान में इग्लैंड के लिये साम्राज्य सगठित किया जा रहा है। पर इसके लिये हिन्दुस्थान में क्या क्या कारस्वाइयाँ की जा रही हैं इससे वह अपरिचित थी, पर उसने वास्तविक दृश्य जानने की भी विशेष चिन्ता न की। चाहे जो हो हिन्दुस्थान में ब्रिटिश साम्राज्य

स्थापित हो गया। इससे अँग्रेजी जनता को जो अपूर्व आर्थिक और राजनैतिक लाभ हुआ उसका थोड़ा सा हाल पिछले अध्यायों में दिया गया है। हिन्दुस्थान की बदौलत ब्रिटिश राज्य समृद्धिशाली हो गया। वहां के उद्योग धन्धे खूब चमक निकले। राजनैतिक संसार में वह प्रथम श्रेणी की शक्ति मानी जाने लगा। हिन्दुस्थान के व्यापार से उसे बड़ा मुनाफा मिलने लगा। इससे वहां की जनता को भी असीम लाभ पहुँचने लगा। मनुष्य अपने स्वार्थ और लोभ वृत्ति के आगे दूसरों के हिताहित को भूल जाता है, यह मनुष्य स्वभाव है। इसी स्वार्थ वृत्ति के वश होकर ब्रिटिश जनता ने उस समय कई बातें जानकर भी उनकी उपेक्षा की। लॉर्ड हेस्टिंग्ज के अमानुषिक अत्याचारों के लिये ब्रिटिश राष्ट्र के रत्न स्वाधीनता प्रिय बर्क महोदय ने ब्रिटिश पार्लयामेण्ट में अपनी अलौकिक वक्तृत्व शक्ति और अपूर्व तर्कना शक्ति के द्वारा ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सामने लार्ड हेस्टिंग्ज के जुल्मों को-अत्याचारों-को रखा। जब ये इन जुल्मों को अपनी अत्यन्त प्रभावोत्पादक वाणी से सुना रहे थे तब छत पर बैठी हुई अंग्रेज महिलाओं पर इतना असर होता था कि वे बेहोश हो होकर गिर पड़ती थीं। पार्लमेण्ट के भवन में एक अपूर्व स्तब्धता छा जाती थी। पर इसका नतीजा क्या हुआ? कुछ नहा। लॉर्ड हेस्टिंग्ज केवल इस बिना पर मुक्त कर दिया गया कि उसने भारतवर्ष में ब्रिटिश राज्य का बड़ा हित किया है। हमारे कहने का अर्थ यह है कि स्वार्थ के आगे मनुष्य न्यायान्याय सब भूल जाता है। ब्रिटिश जनता स्वतन्त्रता प्रिय होते हुए भी मनुष्य स्वभाव से बाहर नहीं, और यह स्वभाव भी आध्यात्मिक वायु मण्डल

का संगठित नहीं, वरन् जड़वाद के वायु मण्डल में संगठित हुआ है जिसमें केवल स्वार्थी परमाणुओं के सिवा और कुछ है ही नहीं। हाँ, कुछ लोग हैं, जिन्हें हमें मामूली मनुष्यों की इयत्ता से ऊंची श्रेणी के कहना चाहिये। वे अलबत्ता हिन्दुस्थान के लिये, आवाज उठाते थे। और अपने भाइयों द्वारा किये गये अन्यायों की भी तीव्र निंदा करते थे। पर ऐसे लोगों की सख्या उँगली पर गिनने योग्य भी नहीं थी।

बात यह है कि सन् १७५७ से लेकर सन् १८५७ तक का समय राजनैतिक धूर्तता, कूटनीति, विश्वासघातकता आदि दुर्गुणों के तत्वों से परिपूर्ण था। कूटनीति (diplomacy) अपना कार्य सफलता के साथ सम्पादन करती जा रही थी। सच है, बड़े बड़े साम्राज्यों का सङ्गठन अधिकतर कूटनीति ही पर निर्भर है। जो लोग कूटनीति में दक्ष होते हैं-जो समय का फायदा तुरन्त उठाना जानते हैं-जो दूसरों के हिताहित या स्वार्थ को पैरों तले कुचलने में कुछ आना कानी नहीं करते, ऐसे ही लोगों के द्वारा प्राय बड़े बड़े साम्राज्यों का सङ्गठन होता है। इतिहास इस प्रकार की दुःख पूर्ण घटनाओं का साक्षी है।

तूफ़ान और दमन नीति

आजकल भारत के स्कूलों में जो इतिहास पढ़ाये जाते हैं, उनमें अंग्रेजों के कार्यों का अत्यन्त उज्वल रूप और भारतीयों तथा मुसलमानों के शासन का गन्दे से गन्दा रूप दिखलाया

जाता है । उदाहरण के लिये आप सन् १८५७ के गदर को ले लीजिये। किसी कारण से, चाहे वह क्षुद्र ही क्यों न हो, उत्तेजित होकर हिन्दुस्थानी सिपाहियों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ बलवा कर दिया था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन बलवाइयों का सङ्गठन अच्छा नहीं था। हिन्दुस्थान के लोग पहले ही अनेक विपत्तियां और अशान्ति से ग्रस्त थे। लोग स्वभावतया शान्ति चाहते थे। बहुत से लोगों का बलवाइयों में विश्वास भी नहीं था। क्योंकि बलवाइयों के उद्देश्य ऊँचे नहीं थे। इसीसे बलवाइयों को उचित सहायता भी नहीं मिली, और वे विफल हुए। इसके अतिरिक्त इस वक्त भी अंग्रेज़ों की कूटनीति (diplomacy) ने बड़ा काम किया। उन्हों ने विविध प्रकार के आश्वासनों द्वारा वीर पराक्रमी सिक्खों को अपनी ओर मिला लिया। गुरखों ने भी मुक्त हस्त से अंग्रेज़ों की सहायता की। इससे भारतवासियों ही की सहायता से अंग्रेज़ लोग इस भारी तूफ़ान को शान्त करने में समर्थ हुए। यहाँ हम इतना अवश्य कहेंगे कि सन् १८५७ में अंग्रेजी शासन की हिलती हुई नींव भारतवासियों ने ही जमाई। इस बात को, कई अंग्रेज लेखकों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है।

कहा जाता है कि अंग्रेज़ लोग दमन नीति को पसन्द नहीं करते। उनके शासन में निर्दयता का नाम नहीं। सरकारी स्कूलों में हमें जो इतिहास पढ़ाये जाते हैं, उनमें हमें अंग्रेज़ों की एक भी दमन नीति का उदाहरण नहीं मिलता। उसमें केवल मुसलमानों और हिन्दू राजाओं के अत्याचारों और लूट मार ही के उल्लेख हैं। अंग्रेजों के शासन को दिव्य और ईश्वरीय शासन के सदृश बतलाया है। पर दुःख की बात है कि कई अंग्रेज लेखकों ने अपने ग्रन्थों में उन ज़्यादतियों को दिखलाया है

जो ईस्ट इण्डिया कंपनी के नौकरों द्वारा तथा सन् १८५७ के गदर के बाद ब्रिटिश सिपाहियों द्वारा की गई थी। स्कूलों में हमारे बच्चों को पढ़ाया जाता है कि गदर करने वालों को माफी दी गई। हम स्वीकार करते हैं कि श्रीमती स्वर्गीय सम्राज्ञी विक्टोरिया ने पीछे जाकर अपने दिव्य घोषणा पत्र द्वारा बलवाइयों के प्रति क्षमा की आज्ञा प्रदान की थी। श्रीमती की दयालुता और प्रजा प्रेम को देखकर आज भी हम आदर के साथ उन का स्मरण करते हैं। एक महान स्त्री में जो गुण होना चाहिये वे उनमें थे। पर उनकी दया का फायदा, लोगों को पीछे मिला। इसके पहले, हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि बलवाइयों के साथ उचित से अधिक दमन नीति का व्यवहार किया गया। कई बलवाई अंग्रेजी सिपाहियों द्वारा पशुओं की तरह मारे गये। सैकड़ों गोलियों के शिकार बनाये गये। इस में कई निर्दोषी भी पिस गये! सैकड़ों फाँसी पर लटका दिये गये। अंग्रेज सैनिकों ने इस वक्त जुल्म करने में कोई कसर नहीं रक्खी। कई गाँव के गाँव जला दिये गये! कई लोगों को तोपों से उड़ा दिया गया? इस प्रकार सन १८५७ में अनेक अमानुषिक अत्याचार किये गये जिनके हाल पढ़कर "जल्यानवाला बाग" से भी विशेष भीषण दृश्य आँखों के सामने उपस्थित हो जाते हैं।

सन् १८५७ के बाद का भारत।

गदर दबाया जा चुका। बलवाइयों के कितने ही नेता तो मारे गये। कितने ही फाँसी पर लटकाये गये और कितने ही

गोली से उड़ा दिये गये। इनके पीछे कितने ही निर्दोष अभागों की भी बलि पड़ी। पीछे जाकर श्रीमती परम दयालु महाराणी विक्टोरिया की कृपा से कुछ को माफी दी गई। हिन्दुस्थान में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा हो गई। पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का अन्त हो गया। महारानी ने हिन्दुस्थान के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। अब लूट खसोट बन्द हुई और कुछ शान्ति का काल आरम्भ हुआ। अब लोग कम से कम बाहरी लूट खसोट और अशान्ति से अपने आपको रक्षित समझने लगे। श्रीमती महारानी ने इस समय जो घोषणा पत्र प्रकाशित किया, उसने लोगों के मन पर जादू सा असर किया। वास्तव में वह घोषणापत्र दिव्य था। उसमें हिन्दुस्थानियों और अँग्रेज़ों के बीच भेद भाव न रखने का आश्वासन दिया गया था। अगर महारानी के घोषणापत्र का व्यावहारिक उपयोग होता तो आज हम भारत को एक दूसरे ही स्थिति में पाते पर दुःख है कि भारत की स्वार्थान्ध नौकरशाही ने महारानी साहब के घोषणापत्र पर कुछ भी अमल नहीं किया। इस घोषणा पत्र की नौकरशाही के द्वारा अवहेलना की गई। भारत के भूतपूर्व वाइसराय लॉर्ड कर्ज़न ने तो उसे "अव्यवहार्य" तक कह डाला। श्री मती महारानी साहिबा ने जो घोषणाप. प्रकाशित किया था, उसका सारांश यह है:—

"हम लोगों ने दूसरे आधीन देशों की प्रजा के पास जिस राजधर्म्म के पालन करने की प्रतिज्ञा की है, उसी के अनुसार अपनी भारत की प्रजा के साथ बर्ताव करने की हम लोग प्रतिज्ञा करते हैं। सर्व शक्तिमान परमेश्वर की कृपा से सरल चित्त और ईमानदारी से हम लोग उस प्रतिज्ञा का पालन करेंगे।"

"हम लोगों की यह भी इच्छा है कि हम लोगों की प्रजा में जो लोग सुशिक्षा, कार्य्य दक्षता और ईमानदारी से राज कार्य्य करने के योग्य हुए हैं, वे जहाँ तक हो सके, जाति धर्म्म आदि का बिना विचार किये, बिना पक्षपात के हम लोगों के अधीन राजकार्य्य में बहाल किये जायँ।"

"भारत में शान्ति पूर्ण शिल्पादि की उन्नति करने की, नहर खोदना आदि जन हितकर काम करने की, जीर्णोद्धार करने की तथा भारतवासियों के लिये मंगल कर शासन—पद्धति चलाने की हम लोगों की आन्तरिक इच्छा है। भारत वासियों की सुख समृद्धि ही हम लोगों की शक्ति है, तथा उनके सन्तोष से ही हम लोगों का राज्य निर्विघ्न होगा।"

श्रीमती महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र के बाद अर्थात् सन् १८५७ का गदर दब जाने पर हिन्दुस्थान की स्थिति ने कौन कौन से पलटे खाये, उस वक्त किन किन लोगों ने ब्रिटिश साम्राज्य के सङ्गठन में सहायता दी, आदि कुछ बातों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

ब्रिटिश और बंगाली बाबू।

सन् १८५७ के बाद ब्रिटिश सरकार का विशेष प्रभाव के साथ पाया जमा। इस वक्त अँग्रेज़ी पढ़े लिखे लोग केवल बंगाल, बंबई और मद्रास प्रान्तों में मिलते थे। इन प्रान्तों में भी इनकी संख्या अधिक न थी। इस लिये गदर के बाद जब अँग्रेज़ लोग राज्य सङ्गठन के काम में लगे हुए थे, इन बाबुओं को अच्छे मौके मिले। अँग्रेजी जानने वाले तो बहुत कम थे, और इनकी

ज़रूरत बहुत बड़ी थी। कई स्थान ऐसे थे जिनमें अँग्रेज़ी ज्ञान के सिवा काम ही नहीं चलता था। इससे इन अँग्रेज़ीदाँ लोगों की उस समय बड़ी कदर हुई। उन्हें अच्छी तनख्वाहें मिलीं। इन बड़ी बड़ी तनख्वाहों ने इन्हें "राज्यभक्त और सुखी" बनाया। अँग्रेज़ी जानने वाले बंगाली बाबू केवल बंगाल ही में नहीं पर सारे उत्तरीय हिन्दुस्थान में फैल गये। उन्होंने गदर के बाद हिन्दुस्थान की स्थिति को ठीक करने में बड़ी सहायता की। ये लोग इस समय सरकार और लोगों दोनों ही के प्रिय पात्र थे। दोनों ही इनकी इज़्ज़त करते थे। बंगाली अकसर भावुक हुआ करते हैं। वे अपने आपको ऊंची स्थिति में देखकर अभिमान में फूले नहीं समाते थे और उनमें राज्यभक्ति फूटी पड़ती थी। अँग्रेज़ भी उन्हें पसन्द करते थे, क्योंकि वे बुद्धिमान थे, कुशाग्र और धूर्त थे। उनमें सेवा भाव भी काफ़ी से ज़्यादा था। सब बौद्धिक काम वे कर लेते थे। जिससे अँग्रेज़ों को खेलने कूदने का काफ़ी समय मिल जाता था। बहुत से डिपार्टमेंटों के अफसर बंगाली मस्तिष्क से राज्य करते थे। वे अँग्रेज़ों की पोशाक पहनने में–उनके रस्म रिवाजों को अख़्तियार करने में–हर तरह से अँग्रेज़ों सा रूप दिखलाकर उनका अनुकरण करने में अपना सौभाग्य समझते थे। नकली अँग्रेज़ बननेही में, उस वक्त के हमारे बाबू साहब अपने मनुष्य जीवन की सार्थकता मानते थे। वह मानों उनका आदर्श बन गया था। धीरे धीरे बाबू समाज अँग्रेज़ी साहित्य का भी प्रेमी होने लगा। वह अँग्रेज़ों की तरह अपने विचारों को ढालने लगा। शुरू शुरू में बंगालियों ही ने अपने बच्चों को अँग्रेज़ी शिक्षा की प्राप्ति के लिये इंग्लैण्ड भेजा था। पहले पहल बंगाली और पार्सी ही बैरिस्टर हुए। इंग्लैंड की स्वाधीन वायु का इन बंगाली विद्यार्थियों पर

प्रभाव पड़े विना न रहा। वे भी स्वतन्त्र विचार करना सीखे।

पहले पहल बगाली पूरे अग्रेज बन गये थे। केवल चमडे और दर्जे का फर्क था। अग्रेज गोरे थे और बगाली काले थे। ऊँचे ऊँचे पद अग्रेजों के हाथ में थे और मातहती के पद बगालियों के हाथ में थे। दोनों में स्वामी सेवक का अन्तर था। उन वक्त के अंग्रेजीदाँ बगाली अपने धर्म को नीची निगाह से देखते थे। हिन्दू समाज सगठन पर उनका विश्वास नहीं था। वे अपने गौरवशाली पूर्व इतिहास को भूल गये थे। साहब बनने ही में वे ईश्वर प्राप्ति सा पुण्य और सौभाग्य मानने लगे थे। कुछ तो क्रिश्चियन भी हो गये थे। दशा इतनी भयावनी हो गई थी कि स्वर्गीय महामति राम मोहनराय जैसी आत्माओं से वह देखी न गई। इस विनाशक प्रवाह को उन्होंने रोकना चाहा। उन्हें आशिक सफलता भी हुई। कुछ बगालियों ने इस प्रवाह के साथ बहना ठीक नहीं समझा। अग्रेजी के पण्डित होकर भी उन्होंने हिन्दू धर्म और हिन्दू रीति रस्मों से बँधे रहना ठीक समझा। हाँ, उन्होंने इस बात का अवश्य अनुभव किया कि हिन्दू समाज में बहुत से सुधारों की आवश्यकता है, पर उन्होंने अपने समाज को बिलकुल अग्रेजी समाज के रूप में ढालना मुनासिब नहीं समझा। ऐसे ही महानुभावों के द्वारा आधुनिक बगला सा हित्य समृद्धिशाली हुआ। भाषा कोष की वृद्धि के लिये उन्होंने सस्कृत का अध्ययन भी प्रारम्भ किया। इस प्रकार बगाल में राष्ट्रीय सस्कृति की रक्षा करने वाला एक समुदाय खडा होगया। हिन्दुस्थान के प्रारम्भिक राष्ट्र निर्माताओं में राजा राममोहनराय का नाम सबसे पहले लिया जायगा।

अग्रेजी शिक्षा का प्रचार अन्य प्रान्तों में भी हुआ। अन्य

प्रान्तों के लोगों की भी पहले पहल ठीक वैसी ही दशा हुई जो कि बंगालियों की हुई थी। अंग्रेज़ों को " माई बाप " समझने में, अंग्रेज़ों की तरह पोशाक पहनने में, अंग्रेज़ों सा खाना खाने में, अंग्रेज़ों से रीति रिवाज रखने में अपने जीवन की सार्थकता समझने लगे थे। वे अंग्रेज़ों की पूरी नकल करने में अपना गौरव समझने लगे थे। अपनी काली चमड़ी पर वे पश्चाताप तक करने लगे थे क्योंकि पूरी पूरी नकल करने पर भी चमड़ी का फ़र्क ज्यों का त्यों मालूम होता था। पर कुछ अर्से में जाकर उनकी आंखें खुलीं। उनके होश हवास ठिकाने आये–उनकी बुद्धि दुरुस्त हो गई। जब उन्होंने देखा कि हज़ार अंग्रेज़ से बन जाने पर भी–साहबी ठाठ बाट रखने पर भी–अंग्रेज़ों के बराबर सब तरह की योग्यता पा लेने पर भी, अंग्रेज़ों की तरह ऊँची जगहें हमें नहीं मिलती, हमें मातहती ही में काम करना पड़ता है, हमारी आकाँक्षाओं की सीमा में बड़ा बंधन है, विशेष योग्यता होते हुए भी प्रायः कम योग्यता वाले अंग्रेज़ों से हमें नीचे दर्जे पर रहना पड़ता है, तब उनकी आंखें खुलीं। इससे जागृति होने लगी। लोगों को आत्म भान होने लगा। वे अपनी असलियत को समझने लगे। इसी बीच में कुछ शक्तियां प्रकट हुईं। उन्होंने दिखलाया कि भारतीय संस्कृति दिव्य है–सर्वोत्कृष्ट है। उन्होंने दिखलाया कि गौरव पूर्ण जीवन ही वास्तविक जीवन है और दासत्व का जीवन मृत्यु है। उस समय ऐसी जागृति उत्पन्न करने वाली आत्माओं में राम मोहनराय, देवेन्द्रनाथ टैगोर, राजेन्द्रलाल मित्र, स्वामी विवेकानन्द, जस्टिस रानाडे, लो० तिलक, विष्णुशास्त्री चिपलूनकर, स्वामी दयानन्द, सर सैयद अहमद आदि महा पुरुषों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

जागृति का आरम्भ ।

भारतवासियों की आकाँक्षाओं के पथ में, जैसे जेसे कॉटे बिछाने के उद्योग किये जाने लगे, वैसे वैसे उनकी अधिकाधिक आँखें खुलने लगीं । सिविल सर्विस में उस समय हिन्दुस्थानियों को जो थोडी सी सफलता हो गई, उससे नौकरशाही को डर होने लगा । इसीलिये उसने एक युक्ति की, जिससे भारतवासी अधिक संख्या में सिविल सर्विस में पास न हो सकें । सिविल सर्विस की परीक्षा में जानेवाले उम्मेदवार की उम्र २१ वर्ष से ज्यादा न होने का नियम बना दिया गया । इतनी थोडी उम्र में इंग्लेण्ड जैसे दूर देश में जाकर सिविल सर्विस की योग्यता प्राप्त कर परीक्षा पास करना महान् दुष्कर कार्य्य था । । इसमें उन्हीं लोगों को सफलता हो सकती थी, जिन्हें छोटी उम्र में विलायत जाने का सुअवसर मिल जाय और जो असाधारण प्रतिभाशाली हों । इस प्रकार के प्रतिभाशाली मस्तिष्क बहुत कम होते हैं, इससे सिविल सर्विस में जाने का बहुत कम लोगों को सौभाग्य प्राप्त होने लगा। नौकरशाही के इस प्रति वधक कार्य्य से हिन्दुस्थानी जनता में गहरा जोश भर गया । सारे शिक्षित हिन्दुस्थान ने सरकार की इस नीति का विरोध किया। इसके बाद लॉर्ड लिटन ने वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट बनाया और लकाशायर के हित के लिये रूई के निकास का महसूल माफ कर दिया। इससे देश में और भी अशान्ति छागई । उस वक्त देश में अँग्रेजी शिक्षा का कुछ अधिक प्रचार हो चुका था । कई लोग शिक्षा के लिये इग्लैण्ड जा चुके थे ।

ससे उन्हें वह तरीके मालूम थे, जिनसे इंग्लैण्ड में राजनैतिक आन्दोलन किया जाता है। भारत में भी इस समय से अँग्रेजी पढ़े लिखे आज़ाद दिमाग़ मनुष्यों के द्वारा विलायती ढंग के आन्दोलन कुछ अंशों में शुरु किये गये। उस वक्त से स्वराज्य और स्वाधीनता की दबी हुई आवाज़ सुनाई देने लगी। इस तरह भारतवर्ष में नवीन जागृति की नींव पड़ी। यहां यह मुक्त कण्ठ से स्वीकार करना पड़ेगा कि ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के बाद शुरू शुरू में उन्हीं लोगोंने स्वराज्य की आवाज़ उठाई थी, जिन्होंने अँग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन किया था, जिन्होंने यूरोप की स्वाधीनता का इतिहास पढ़ा था, जिन्होंने यूरोप के स्वाधीन भावों का मनन किया था, या जिन्होंने यूरोप जाकर स्वाधीनता के वायु मण्डल का प्रभाव देखा था।

सन् १८५७ के गदर के बीस वर्षों के बाद ठीक उसी समय स्वराज्य का आन्दोलन कुछ अंशों में प्रारम्भ हुआ था, जब लॉर्ड लिटन की अध्यक्षता में दिल्ली में दरबार हो रहा था और वे यह घोषणा कर रहे थे कि श्रीमती विक्टोरिया महाराणी हिन्दुस्थान की सम्राज्ञी का पद धारण कर रही है। इसके बाद इस आन्दोलन को कैसा कैसा रूप प्राप्त होता गया और स्वराज्य की आकाँक्षा का कैसा कैसा विकास होता गया, इसका उल्लेख यथा क्रम अगले अध्यायों में होगा।

राष्ट्रीय कांग्रेस की उत्पत्ति और विकास।

राष्ट्रीय कांग्रेस की उत्पत्ति कुछ कौतूहलजनक है। इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्रीय कांग्रेस के कुछ वर्ष पहले ही भारत में

राजनैतिक जागृति का आरम्भ हो चुका था। भारत के कुछ प्रान्तों में ऐसी संस्थाएँ भी उत्पन्न हो चुकी थीं, जिनका उद्देश्य भारत की राजनैतिक आत्मा को जागृत करना था। कुछ नेता भी इसके लिये प्रयत्न कर रहे थे। राष्ट्रीय एकता की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी थी। लोग इस बात का अनुभव करने लगे थे कि सारे भारतवर्ष की राजनैतिक आकांक्षाओं को प्रकट करने के लिये एक लोक सत्तात्मक संस्था की आवश्यकता है। पर राष्ट्रीय कांग्रेस की उत्पत्ति एक विचित्र रूप से हुई। भारत के तात्कालिक वाइसरॉय लार्ड डफरिन ने मि० ह्यूम नामक एक अत्यन्त उदार और सहृदय अँग्रेज सज्जन से कहा कि भारत में एक ऐसी संस्था की जरूरत है जिस से भारत सरकार भारत की असली राय को जान सके। आप इसके लिये प्रयत्न कीजिये। मि० ह्यूम ने लार्ड महोदय की यह इच्छा कुछ नेताओं पर प्रकट की। नेताओं ने और देश ने यह बात बड़े हर्ष और उत्साह से सुनी। मि० ह्यूम, सर विलियम वेडर्बर्न और भारत के तात्कालिक, कुछ नेताओं ने लॉर्ड डफरिन से प्रार्थना की कि कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई के तात्कालिक गवर्नर लार्ड रे के सभापतित्व में होने की इजाजत दीजिये। कहा जाता है कि लार्ड डफरिन ने इस बात को पसन्द तो किया पर उन्होंने ऐसी कई अड़चनें दिखलाई जिससे लार्ड रे का सभापति स्वीकार करना ठीक नहीं था। कुछ भी हो कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सरकार की पूरी सहानुभूति के साथ हुआ। यहाँ यह कहने में कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी कि कांग्रेस का पुराना ढांचा सरकारी अधिकारियों की प्रेरणा से बनाया हुआ है और इसी से आप जान सकते हैं कि वह देश के लिये कहां तक उपयुक्त हो सकता था। संसार में ऐसा कहीं देखने में नहीं आया कि किसी

स्वेच्छाचारी नौकरशाही ने लोगों को स्वाधीनताकेपथ पर लगाने वाला कोई मार्ग दिखलाया हो। जो लोग यह समझते हैं कि कांग्रेस का पुराना ढाँचा ही उपयुक्त है उन्हें कांग्रेस की उत्पत्ति का हाल ज़रा गौर से पढ़ लेना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि जिस उद्देश से लॉर्ड डफ़रिन ने कांग्रेस को जन्म दिल वाया था उससे कांग्रेस उन्हीं के समय में कुछ दूर चली गई थी। फिर भी कांग्रेस का पुराना ढाँचा भारत को स्वतंत्र जि म्मेदार शासन का अनुमोदक नहीं है। वह किसी न किसी रूप में पराधीनता की बेड़ी बनाये रखना चाहता है।

लॉर्ड डफ़रिन के दिमाग़ में जब कॉंग्रेस की कल्पना आई तब यह बात शायद उनसे कोसों दूर रही होगी कि हिन्दुस्थान को भी बहुत नहीं तो कम से कम औपनिवेशक स्व–राज्य के अधिकार दिये जायँ। लॉर्ड डफ़रिन कांग्रेस को रक्षक की ढाल बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि कांग्रेस के द्वारा भारत की बढ़ती हुई अशान्ति दबा दी जाय। हां मि० ह्यूम भारत के हितैषी थे। वे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत को स्वराज्य दिलाने के पक्षपाती थे। पर वे पक्के स्वदेश भक्त थे। इससे वे भारत से ब्रिटिश का सम्बन्ध सदा रखना चाहते थे। उन्होंने देखा कि भारत में भीतर ही भीतर अशान्ति की आग सुलग रही है, इससे कभी न कभी ब्रिटिश शासन को धोखा होने की सम्भावना है। इसलिये कॉंग्रेस रूपी ढ़ाल तैयार कर देना चाहिये। बंबई के तात्कालिक गवर्नर सर ऑकलेण्ड कॉलविन के एक प्रश्न के उत्तर में कहा गया था कि ब्रिटिश शान की रक्षा के लिये कॉंग्रेस रूपी ढाल की आवश्यकता है। सर ऑकलेण्ड कॉलविन और मि० ह्यूम के बीच इस सम्बन्ध में जो पत्र व्यवहार हुआ,

उसमें अद्भुत रहस्य का आविष्कार होता है और हम समभते हैं कि भारत के किसी हितैषी को इन रहस्यों से अपरिचित नहीं रहना चाहिये।

हमारे उपर्युक्त कथन से पाठक यह न समझें कि हम मि० ह्यूम को नीची निगाह से देखते हैं। हम भारतवासी आज भी मि० ह्यूम का नाम आदर के साथ स्मरण करते हैं। वे उदार हृदय अंग्रेज थे। वे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत उपनिवेशों के ढङ्ग पर भारत को स्वराज्य दिलवाने के पक्के पक्षपाती थे। उन्होंने आगे चलकर कांग्रेस में नयी जान फूकी थी। उन्होंने भारतवासियों को अपने पैरों पर खड़े होने का उपदेश दिया था। पर इस उदार ढङ्ग से वे हिन्दुस्थान में ब्रिटिश साम्राज्य का पाया पक्का करना चाहते थे।

उनकी कदापि यह इच्छा नहीं थी कि भारत बिलकुल स्वतंत्र होकर अपनी जिम्मेदार शासन प्रणाली स्थापित करे। कुछ वर्षों तक कांग्रेस की यह स्थिति रही कि वह लोकमत के बजाय सरकारी मत की विशेष परवाह करती थी। कॉंग्रेस के प्रारम्भिक सञ्चालकों में ऐसे बहुत कम लोग थे जिनकी दिल से भारत को ऊँचा उठाने की आकाँक्षा हो। वे या तो सरकारी नौकर थे या ऐसे धन्धों में लगे हुए थे जो करीब करीब सरकारी नोकरी ही के सदृश कहे जा सकते हैं। इनमें कई लोग ऐसे थे जो सरकार के कृपापात्र होने में, सरकार से बड़ी बड़ी उपाधियाँ प्राप्त करने में अपना अहो भाग्य समझते थे। वे तब तक सार्वजनिक कार्यों में हिस्सा लेते थे जब तक कि सरकार की ओर से उनके हित में कोई बाधा उपस्थित न हो। चाहे वे दिल से स्वदेश भक्त हों, पर उनमें वह स्वार्थ-त्याग और आत्मबलि देने की शक्ति न थी

जो राष्ट्रीय जीवन के लिये आवश्यक है। इसी से शुरू शुरू में कांग्रेस में वास्तविक जीवन की न्यूनता रही। कांग्रेस के प्रारम्भिक नेता लोगों से मिले जुले हुए नहीं रहते थे। उनका कार्य्यक्षेत्र कुछ सुशिक्षित अंग्रेज़ी दाँ लोगों तक ही परिमित था। ये जो कुछ कार्रवाई करते थे, सिर्फ़ अंग्रेज़ी भाषा में करते थे। इससे भारत की करोड़ों जनता यह भी नहीं जानती थी कि कांग्रेस किस चिड़िया का नाम है। कांग्रेस अपना उद्देश्य केवल यही समझती थी कि अधिकारियों के कानों तक अपनी प्रार्थनायें पहुंचादी जावें। साधारण लोगों के सुख दु:ख जानने की इन प्रारम्भिक नेताओं ने विशेष चेष्टा नहीं की। ये लोग हमेशा नवयुवक लोगों को हतोत्साह करते थे। उन्होंने नवयुवकों के विचार प्रदर्शन के पथ में बाधायें डालीं। इससे कई वर्ष तक कांग्रेस भारत को करोड़ों आत्माओं में जीवन शक्ति का कुछ भी सञ्चार न कर सकी। भारत की आत्माओं में इससे उल्लेखनीय जागृति न हो सकी हां, इसमें दादाभाई नौरोजी, तिलक प्रभृति कुछ ऐसी आत्मायें थीं, जो अपने स्वार्थों की बलि देकर देशहित साधन के पवित्र कार्यों में लगी हुई थी, पर इनकी संख्या दो चार से अधिक न थी। उस समय कांग्रेस में अधिकांश भर्ती "जी-हुजूर" करने वालों ही की थी। कांग्रेस में पूरा एक तंत्री शासन था। बुड्ढों और 'जी हां' करनेवालों ने कांग्रेस को हथिया रखा था। लोगों का स्वतन्त्र विचार प्रकाशित करने की मनाही थी। आजकल मॉडरेट कॉन्फरेन्स जिस ढंग से होती है, उससे भी उस समय का कांग्रेस की दशा गई बीती थी। देश की प्रकाश मय आत्मायें यद्यपि अनुभव कर रही थीं कि जिस कांग्रेस में केवल कुछ रिआयतों के लिये आवाज़ उठाई जाती है और

जिसमें मुल्क की आज़ादी के लिये एक शब्द तक नहीं बोला जाता, वह राष्ट्रीय कॉंग्रेस होने का दावा नहीं कर सकती और इस प्रकार की कॉंग्रेस से लाभके बदले उलटी हानि की सम्भावना है। पर उनकी कुछ भी न चलती थी, क्योंकि कॉंग्रेस को पुराने ढ़ाँचे ने हथिया रक्खा था और उस समय सर्व साधारण में राजनैतिक जागृति का प्रायः अभाव सा था। इस प्रकार कई वर्षों तक निर्जीव ढ़ङ्ग से थोड़े से जी हुजूरोंके हाथ में कॉंग्रेस की बागडोर रही। इससे देशको भारी हानि पहुंची। वह यह भी नहीं जानने पाया कि सम्पूर्ण स्वाधीनता किस चिड़िया का नाम है।

कांग्रेस में नई जागृति।

कॉंग्रेस की स्थिति तब तक निर्जीव सी बनी रही, जब तक कि लॉर्ड कर्ज़न के स्वेच्छाचारी शासन का लोगों को अनुभव नहीं हुआ। सारे बंगाल के बल्कि यों कहिये कि सारे हिन्दुस्थान के एक स्वर से विरोध करने पर भी अहंमन्य लॉर्ड कर्ज़न ने बङ्गाल के दो टुकड़े कर डाले। तब लोगों की आँखें खुलीं। तब लोग समझने लगे कि कांग्रेस निर्जीव है, शक्ति हीन और बेदम है। वे समझने लगे कि वर्तमान कांग्रेस के द्वारा हमारे दुःखों का दूर होना असम्भव है। अब देशकी कुछ प्रकाशमय आत्माएं देश की राजनैतिक स्थिति का विशेष ध्यान से अध्ययन करनेलगी। उन्हें मालूम हुआ कि कांग्रेस न केवल ग़लत रास्ते परही जा रही है, बल्कि उसके अधिकांश

नेताओंमें स्वार्थत्याग की भावना का भी अभाव है। इस वक्त से देश में स्वदेशी और स्वराज्य की प्रबल आवाज उठी। उस समय देश में जागृति की ज्योति चमकने लगी। देश में एक नयी लहर वह चली। उसने लोगों के भावों को उत्तेजित किया। उन भावों का सन् १६०५ और सन् १६०६ की कांग्रेस पर भी प्रभाव पडा। सन् १६०५ में ही कांग्रेस भंग होजाती पर उस समय उसके प्रेसिडेन्ट के आसन पर स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी जेसो उच्च और दिव्य आत्मा थी।। उन्होंने समय का गति को पहचान लिया। उन्होंने स्वराज्य की आवाज उठादी। उन्होंने साफ तौर से कह दिया कि स्वशासनके बदले सुशासन नहीं रखा जा सकता। अभी तक कांग्रेस केवल सुशासन के लिये आवाज उठा रही थी। कलकत्ते की कांग्रेस में उसका ध्येय बदला और उस समय उसने स्वराज्य के लिये आवाज उठाई। यहांसे राष्ट्रीय जागृति का वास्तविक आरम्भ हुआ।

दुख है कि सन १६०७में कांग्रेस के संचालकों की अनुदार नीति के कारण कांग्रेस का भंग हो गया। वह सन् १६१७ तक प्राय. निर्जीव अवस्था में रही। पाठक जानते हैं कि वग भग से देश में जो नवीन जीवन शक्ति का सञ्चार हो गया था उसी को लोकमान्य तिलक और उनके अनुयायी तथा अन्य सच्चे देश सेवक कांग्रेस में भी सञ्चारित करना चाहते थे और इस तरफ कांग्रेस का पुराना ढाँचा उसे सन् १६०६ के भी पीछे घसीटना चाहता था। कांग्रेस वाले यही चाहते थे कि कांग्रेस भीख माँगने और प्रार्थना करने की नीति ही का अवलम्बन करती रहे। वह 'जी हुजूर' करनेवालों ही के हाथ की कठ पुतली बनी रहे। यह बात स्वाधीनता की उज्ज्वल मूर्ति प्रात. स्मरणीय लोकमान्य तिलक, भारतीय नेताओं के मुकुटमणि

महात्मा अरविंद घोष तथा अन्य सच्चे स्वार्थ त्यागी देश सेवकों को पसन्द न थी। वे कांग्रेस को वास्तविक राष्ट्रीय कांग्रेस में परिणत करना चाहते थे। पर कांग्रेस के पुराने लोग इस बात को कब पसन्द करने वाले थे? इन्हें तो बड़ी बड़ी नौकरियों की, लम्बी लंबी उपाधियों के दुमों का जरूरत थी। वे लोग कौन्सिलों में जाना चाहते थे। आलीशान बंगलों में सुख की नींद सोना चाहते थे। लोगों पर प्रभाव डालकर अपना आर्थिक लाभ करना चाहते थे। और इसके विपरीत लोकमान्य प्रभृति सच्चे राष्ट्रीय वीर भारत माता के लिये हर तरह के कष्ट उठाने के लिये-अपने स्वार्थों का बलिदान करने के लिये तैयार हो रहे थे। जहाँ कांग्रेस के पुराने नेता ब्रिटिश राष्ट्र से भीख मांग या प्रार्थना कर कुछ रिआयतें चाह रहे थे, वहाँ हमारे राष्ट्रीय वीर शिरोमणि महानुभाव अपने ही लोगों से-भारतमाता के पुत्रों से-अपने पैरों पर खड़े होने के लिये अपील कर रहे थे। जहां उपर्युक्त 'जी हुजूर' करनेवाले कांग्रेस के सञ्चालक गवर्नरों और कमिश्नरों को गार्डन पार्टियाँ देने में-विविध प्रकार से उन्हें खुश रखने की चेष्टा कर रहे थे, वहां हमारे राष्ट्र के सच्चे सपूत भारत माता के करोड़ों दीन दुःखियों की सेवा कर उन की आत्म विस्मृति मिटाने में तथा उन्हें अपने मनुष्योचित अधिकारों का ज्ञान करवाने में लगे हुए थे। इस प्रकार दोनों दलों में स्वाभाविकतया ही मतभेद हो रहा था। हम पहले कह चुके हैं काँग्रेस की उत्पत्ति लॉर्ड डफरिन के प्रेरणा से हुई। इससे वह अर्से तक भारत के लिये जोर से आवाज न उठा सकी। वह कुछ रिआयतों ही के लिये प्रार्थना करती रही। उसका सञ्चालन पूजनीय दादाभाई नौरोजी, गोखले प्रभृति कुछ उन्नत आत्माओं को छोड़कर ऐसे लोगों के हाथ में रहा जिनके

पीछे उपाधियों की बड़ी बड़ी दुमें लगी हुई थीं और जो भीख माँगने या प्रार्थना करने के परे कांग्रेस को नहीं लेजाना चाहते थे। बंग भंग से इन लोगों की करतूतों से देश का शिक्षित दल वाक़िफ़ हो चुका था। वह काँग्रेस को आगे बढ़ाना चाहता था। वह उसे राष्ट्र की सच्ची प्रतिनिधि संस्था बनाने का अभिलाषी था। वह यह चाहता था कि काँग्रेस कुछ मुट्ठी भर अहमन्य लोगों के हाथ में न रहे। वह राष्ट्र की वास्तविक प्रतिनिधि संस्था बने। जब इन पुराने नेताओं ने देखा कि सन् १९०७ की कांग्रेस में राष्ट्रीय दल आगे बढ़ना चाहता है तब उन्हों ने अनेक प्रकार की चाल बाज़ियाँ खेलना शुरू कीं। काँग्रेस नागपुर में होने वाली थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उस समय नागपुर में राष्ट्रीय दल के लोगों की ही विशेषता थी। चालें चली गईं और कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में तबदील किया गया। वहाँ नर्म नेताओं की अधिकता थी। कई भाड़े के डेलीगेट बना लिये गये थे। "येन केन प्रकारेण" राष्ट्रीय दलवालों को गिराने की पूर्व से ही तैयारी कर ली गई थी। राष्ट्र की बढ़ती हुई आकाँक्षाओं को कुचलने का घृणित और नीच प्रयत्न पहले ही से कर रखा था। लोकमान्य तिलक, महात्मा अरविंद घोष, बाबू विपिन चन्द्र पाल आदि राष्ट्रीय दल के नेताओं ने खूब प्रयत्न किया जिससे काँग्रेस में विघ्न न हो और देश की सच्ची आकाँक्षाएँ कांग्रेस के सामने रखी जा सकें। पर उनकी एक न सुनी गई। उनके साथ सज्जनता का व्यवहार तक नहीं किया गया। बेचारे लोकमान्य तिलक नर्म नेताओं से मिलने के लिये इधर उधर घूमते रहे। उन्होंने मेल करने का प्रयत्न किया पर किसी प्रकार सफल न हुए। कांग्रेस के पुराने लोगों ने सब मनमानी कार्रवाई कर

ली। राष्ट्रीय दल की पूरी उपेक्षा की गई। आखिर को स
जेक्ट कमेटी में विशेष रुप से सर फीरोजशाह मेहता के अ
यायी भर दिये गये। इस कमेटी ने मनमाने रूप से डॉक्टर
रास बिहारी घोष को सभापति चुन लिया। राष्ट्रीय दल क
इच्छा थी कि लाला लाजपतराय, जो देश निकाले का दुः
भुगत कर आये हुए थे सभापति बनाये जायँ, पर कांग्रेस
इन ठेकेदारों ने उनके इच्छा की तनिक भी पर्वाह न की। मत
लब यह कि इन पुराने लोगों ने स्वेच्छाचारिता का पूरा परि
चय दिया।

एक बात और ध्यान देने लायक है। राष्ट्रीयदल के नेता
ओं को कांग्रेस में प्लेटफॉर्म तक पर जगह न दी गई। राष्ट्रीय
दल के नेता प्लेटफर्म के नीचे बैठाये गये। यहांतक कि भारतीय
राष्ट्र के प्रधान सूत्रधार लोकमान्य तिलक, जिन्हें सारा राष्ट्र
अपना उद्धार कर्ता समझता था और अब भी समझता है
प्लेटफॉर्म पर न बैठाये गये। लोकमान्य तिलक जब अपना
प्रस्ताव रखने के लिये प्लेटफॉर्म पर चढने लगे तब एक गुँडे
ने आकर उन्हें धक्का देना चाहा। स्वर्गीय मि० गोखलेके मना
करने पर वह गुँडा एक तर्फ हुआ। लोकमान्य तिलक बडी
मुश्किल से प्लेटफॉर्म पर चढ सके। प्रेसीडेन्टने उन्हें अपना
प्रस्ताव उपस्थित करनेकी आज्ञा न दी। इस पर लोकमान्य
ने प्रेसीडेन्ट से कह दिया कि आप वैध रीति से नहीं चुने गये
हैं। इतने ही अर्से में चारों तरफ शोर गुल मचने लगा। जूते,
पैजार तक का मौका आया। सरफीरोजशाह मेहता ने कांग्रेस
में कई गुंडों की भर्ती कर रखी थी। वे लोग लोकमान्य पर
झपटे। लोकमान्य के अनुयायियों ने उन्हें सुरक्षित स्थान पर
पहुँचा दिया। इस गडबड का या यों कहिये कि नर्म नेताओं

की स्वेच्छाचारिता का यह परिणाम हुआ कि उस दिन अधिवेशन न हो सका। दूसरे और तीसरे, दिन भी ज्यों; त्यों कार्रवाई कर ली गई। इस प्रकार नर्म दल के नेताओं की स्वेच्छाचार पूर्ण कार्रवाई से दस वर्ष तक कांग्रेस मृत्यु शय्या पर पड़ी रही। दूसरे साल नागपुर में कांग्रेस होने वाली थी। पर स्वेच्छाचारी नौकरशाही ने नहीं होने दी।

इसके बाद सन् १६१६ तक कांग्रेस के जो अधिवेशन हुए उनमें कुछ नर्म नेताओं और उनके चन्द अनुयायियों के सिवा कोई नहीं जाता था। वह नाम मात्र की कांग्रेस रह गई थी। उसमें जीवन नहीं था। वह मृत प्राय थी। देशकी सच्ची आकाँक्षायें उसमें प्रकट नहीं की जा सकती थीं। जो लोग नर्म नेताओं की हाँ में हाँ मिलाने को राज़ी होते थे उन्हीं की काँग्रेस में गुज़र होती थी। स्वतन्त्र विचार के लोग उसमें नहीं जा सकते थे। कांग्रेस में डेलीगेट के रूप में जाने के पहले उनसे इस प्रकार के प्रतिज्ञा पत्रपर दस्तख़त करवा लिये जाते थे कि हम कांग्रेस के अमुक अमुक उद्देश्यों को ध्यान में रख कर कार्रवाई करेंगे। ये उद्देश्य राष्ट्र के नहीं थे। नर्म नेताओं के थे उस समय कांग्रेस मानसिक गुलामी के लिये अच्छा साधन बनी हुई थी। ख़ैर, हम यहां इतनाही कहना चाहते हैं कि सन् १६०६ की कांग्रेस को छोड़कर सन् १६१६ तककी कांग्रेस नाटक का एक भूठा दृश्य था। उसमें वास्तविक राष्ट्रीय भावना नहीं थी। वास्तविक राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म सन् १६१७में लखनऊ में हुआ। इसके आगे कांग्रेस का कैसा कैसा विकास होता गया, इसका वर्णन किसी अगले अध्याय में यथावसर करेंगे।

वङ्ग भङ्ग और देश में
अशांति की लहर ।
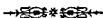
हिन्दुस्थान की राष्ट्रीय जागृति में वङ्ग भङ्ग ने बड़ी सहायता की। लार्ड कर्जन महोदय ने कुत्सित उद्देश्य से बङ्गाल के दो टुकड़े किये थे। उनका उद्देश्य बङ्गालियों में अनैक्य फैलाना था। पर इसका परिणाम लॉर्ड महोदय की कल्पना के विपरीत हुआ। सारे वगालने एक स्वर से वङ्ग भङ्ग का विरोध किया। जब उनके विरोधकी पर्वाह न की गई, तब उनकी आँखें विशेष रूप से खुलीं। उन्हें नि सहाय अवस्था का पता लगा। उन्हें मालूम होने लगा कि दो भाइयों में विच्छेद कराने का कुत्सित प्रयत्न किया जा रहा है। सारे वगाल के बङ्गाली मिल गये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि लॉर्ड कर्जन बङ्गाल के दो टुकड़े कर सकते हैं, पर वे हमारे हृदय के दो टुकड़े नहीं कर सकते। इसी दिव्य भावना को लिये हुए उस वक्त सारा वङ्गाल एक हृदय सा होगया। अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये सब बङ्गाली सपूत मिल गये। क्या अमीर क्या गरीव सब लोग एक हृदय से-वङ्ग भङ्ग का विरोध करने लगे। सारे वङ्गाल प्रान्त में या यों कहिये कि सारे भारतवर्ष में लॉर्ड कर्जन के इस कार्य से सनसनी फैल गई। सन् १९०३ के दिसम्बर मास स सन् १९०५ के अक्टूबर मास तक वङ्गाल में लगभग २००० स भाएँ हुईं। पाठक यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि उस समय की कुछ कुछ सभाओं में ५०००० आदमी तक इकट्ठा होते थे,

हिन्दू और मुसलमान समान रूप से उत्साह प्रदर्शित करते थे, ढाके के स्वर्गीय नवाब सर सलीमुल्ला ने लॉर्ड कर्ज़न के इस कार्य्य को पाशविक व्यवस्था (beastly arrangement) कहा था। सन् १६०५ की ११ वीं मार्च को डॉक्टर राश बिहारी घोष के सभापतित्व में जो सभा हुई थी, और जिसमें बङ्गाल के हज़ारों सपूत जमा हुए थे, उसमें लॉर्ड कर्ज़न के इस कुत्सित कार्य्य के प्रति तीव्र घृणा प्रकट की गई थी। इसके पहले भारत के ब्रिटिश शासन के इतिहास में ऐसा मौक़ा कभी न आया कि किसी वाइसराय के कार्य्य पर इस तरह घृणा प्रकट की गई हो। लॉर्ड कर्ज़न को इससे बहुत बुरा मालूम हुआ। वे आग बबूला होगये। अब वे यह प्रयत्न करने लगे कि किसी तरह हिन्दू मुसलमानों में फूट हो जावे। इसके लिये जनाब कर्ज़न साहब पूर्वीय बङ्गाल को तशरीफ़ ले गये और मुसलमानों की बड़ी सभाएँ करवाकर यह संदेशा सुनाया कि बङ्ग भङ्ग केवल शासन के सुभीते ही के लिये नहीं किया गया है, पर इसका एक उद्देश्य यह भी है कि नया मुसलमानी प्रान्त क़ायम हो जाय और उसमें मुसलमानों की प्रधानता रहे। इससे मुसलमानों के चित्त पर कुछ असर हो गया। जिन नवाब सर सलीमुल्लाओं ने पहले लॉर्ड कर्ज़न के बङ्ग भङ्ग कार्य्य को "पाशविक व्यवस्था" कहा था, वे भी दूसरी ओर झुक गये। हां, कुछ दूरदर्शी और सुशिक्षित मुसलमान अटल बने रहे और वे बङ्ग भङ्ग का बराबर विरोध करते रहे।

बङ्ग भङ्ग का आन्दोलन ज़ोर शोर से चलता रहा। पहले सरकार के पास सैकड़ों आवेदन पत्र (Memorial) भेजे गये। एक आवेदन पत्र पर जो स्टेट सेक्रेटरी को भेजा गया था, कोई ७००००' बङ्ग निवासियों के हस्ताक्षर थे। पर सरकार ने

बहुत दिनों तक चुप्पी साधी। किसी का कुछ जवाब नहीं दिया। बङ्गालियों ने आन्दोलन बराबर शुरू रक्खा। आख़िर में सन् १९०५ में अकस्मात् यह सूचना प्रकट हुई कि स्टेट सेक्रेटरी ने बङ्ग भङ्ग को मंजूर कर लिया है, और भङ्ग किये हुए नये प्रान्त में उत्तरीय बंगाल के छः ज़िले मिलाये जायँगे। सारे देश के मत का निरादर कर सरकार ने बङ्ग भङ्ग का प्रस्ताव मंजूर कर लिया! इससे बड़ी भारी आग भभक उठी। लोगों को मालूम होने लगा कि निर्बलों की आवाज़ की कहीं पर्वाह नहीं की जाती। प्रार्थनाओं से कुछ लाभ नहीं होता। जबतक मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा रहना नहीं सीखता, तब तक उसकी कोई क़दर नहीं होती। सरकार के इस कार्य से बङ्गाल निवासी निराश नहीं हुए। उनकी जीवन शक्ति दूनी हो गई। उनमें अपूर्व उत्साह और अद्वितीय देश भक्ति की लहर बह चली। बाबू कृष्णकुमार मित्र ने बङ्गाल के सुप्रसिद्ध पत्र, 'सञ्जीवनी' में ज़ोरदार लेख लिखकर बङ्गालियों से ब्रिटिश माल का बहिष्कार करने के लिये अपील की। "इण्डियन असोसिएशन" में बंगाल के दस बारह नेताओं ने मिलकर बङ्ग भङ्ग के विरोध में विदेशी माल का बहिष्कार करने का निश्चय किया। इसी साल की ७ अगस्त को कलकत्ते में एक बृहत् सभा हुई जिसमें स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात किया गया। इसके बाद बङ्गालियों का उत्साह अत्यन्त तीव्रता धारण करता गया। १६ अक्तूबर सन् १९०५ को बंगाल में जो अपूर्व दृश्य देखा गया, वह भारत के इतिहास में अनोखा है। कहा जाता है कि जब महाराजा नंदकुमार को वारन हेस्टिंग्ज़ ने अन्याय से फाँसी पर चढ़ाया था, उस वक्त को छोड़कर ऐसा दृश्य कभी उपस्थित नहीं हुआ था। महाराजा नंदकुमार को फाँसी हो जाने के बाद बङ्गाल के लाखों नर नारी

नंगे पैर और नंगे सिर इस लिये गंगा स्नान करने गये थे कि उन्होंने एक निर्दोष ब्राह्मण को फाँसी पर लटकते हुए देखने का महा पाप किया था। इसी प्रकार १६ अक्टूबर को हज़ारों लाखों बङ्गाली राष्ट्रीय गीत गाते हुए नंगे पैर और खुले बदन बंधुत्व की राखी बांधते हुए तथा वंदेमातरम् का जयघोषणा करते हुए गंगा स्नान के लिये जा रहे थे। बड़ा ही अपूर्व और हृदयस्पर्शी दृश्य था। जहां लॉर्ड कर्ज़न ने भाई भाई को आपस में विभक्त कर देना चाहा था वहाँ उस दिन बङ्गाल के लाखों करोड़ों सपूत एक हृदय और एक मन हो रहे थे। आँखों में प्रेमाश्रु लाकर एक दूसरे से गले लग कर मिल रहे थे। वे ईश्वर और भारत माता के सामने हाथ करके यह प्रतिज्ञा कर रहे थे कि हम सदा के लिये एक हो रहे हैं। संसार का कोई प्रलोभन अब हमें जुदा न कर सकेगा। आज हजारों लाखों बङ्गाली विदेशी माल का बहिष्कार कर रहे थे और स्वदेशी माल का व्रत ले रहे थे। इस अपूर्व सम्मेलन में स्त्री पुरुष बच्चे सब शामिल थे। देश के नवयुवक गण भारत माता के उद्धार के लिये चिन्तवन कर रहे थे। इतना अधिक उत्साह बढ़ा हुआ था कि बंगाल के कई प्रान्तों में अधिकारियों ने शान्तिभङ्ग होने के डर से असाधारण उपायों का (Extra-ordinary) अवलम्बन किया। बङ्गाली भाई भी इससे न डरे। उन्होंने निश्चय किया था कि अगर अधिकारी दमन नीति का अवलम्बन करेंगे तो हम सत्याग्रह करेंगे। पर इस समय सब काम सकुशल और वैध रीति से हो गया। बङ्गाली बंधुओं ने विभक्त बंगाल का नाम संयुक्त बङ्गाल रखा। कई वर्षों तक यह आन्दोलन बड़े ज़ोरों के साथ चलता रहा।

लॉर्ड कर्ज़न ने जो मन में विचारा था, कर डाला। लोक

मत को उन्होंने बुरी तरह ठुकराया। एङ्गलो इण्डियन पत्र जो हमेशा भारतीय आकाँक्षाओं का विरोध करते रहते हैं, उन्होंने भी लॉर्ड कर्ज़न के इस कार्य्य को पसन्द नहीं किया।

बंग विच्छेद के सम्बन्ध में स्टेट्समेन पत्र के सम्पादक ने एक बड़ा ही अच्छा लेख प्रकाशित किया था। उसने भी इस कार्य्य की घोर निन्दा की थी। टाइम्स ऑफ़ इण्डिया ने ये भाव प्रकाशित किये थेः—

"One might well wish that Lord Curzon had not returned to India for the Second time, for he could not have chosen a more effective way of recking his reputation than he has done" इसका भाव यह है कि अच्छा होता अगर लॉर्ड कर्ज़न दूसरी मर्तबा हिन्दुस्थान को लौटकर न आते। क्योंकि इससे वे अपनी इ ज़्ज़त बरबाद करनेवाले मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकते। इसी प्रकार 'इंगलिशमैन' स्टेट्समैन 'डेलीन्यूज़' आदि कई एङ्गलो इण्डियन पत्रों ने लॉर्ड कर्ज़न के इस अदूरदर्शी और स्वेच्छाचारी कार्य्य की तीव्र निन्दा की थी।

लॉर्ड कर्ज़न के इस कुत्सित कार्य्य से केवल बंगाल में न हीं सारे भारतवर्ष में आग लग गई। राष्ट्रीय दल की तो बात जाने दीजीये। मि० सुब्बाराव, माननीय मि० गोखले, माननीय मि० मुधोलकर जैसे नर्म नेताओंने भी एक स्वर से लॉर्ड कर्ज़न के इस कार्य्य का तीव्र विरोध किया। माननीय मि० गोखले ने सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौन्सिल में वाइसराय को सम्बोधन करते हुए कहा कि "My Lord, consiliate Bengal" सारे भारतवर्ष में विरोध सभाएँ हुईं। सब समाचार पत्रों ने एक स्वर से विरोध की आवाज उठाई। सैकड़ों आवेदन पत्र और

तार विलायत भेजे गये पर ये सब व्यर्थ हुए। भारत के वाइसराय के किये हुए काम को चाहे वह अनुचित ही क्यों न हो रद्द करना विलायत के अधिकारियों ने भी ठीक नहीं समझा। क्योंकि इससे सरकार का रुआब कम होने का डर था। लॉर्ड मोर्ले उस समय हिन्दुस्थान के सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट थे। उन्हें दिल से लॉर्ड कर्ज़न का काम पसन्द न था। उन्होंने ये भाव प्रकट भी किये थे कि बङ्ग भङ्ग का कार्य सम्पूर्ण रूप से लोगों की मनशा के ख़िलाफ़ किया गया है और यह उचित नहीं हुआ है। पर उन्होंने इसे "Settled fact" (निश्चित कार्य) कह कर टाल दिया। उनके पहले के सेक्रेटरी लॉर्ड मिडलटन को भी यह कार्य्य पसन्द नहीं था। पर शायद प्रतिष्ठा के भूत के डर से उन्होंने इसे मंजूर कर लिया। पार्लमेण्ट के हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स में भारत के भूतपूर्व वाइसरॉय मारक्विस ऑफ़ रिपन ने अपने बुढ़ापे में लॉर्ड कर्ज़न के इस अदूरदर्शिता के कार्य्य के ख़िलाफ़ ज़ोर की आवाज़ उठाई थी। लॉर्ड मेकडानल ने तो बङ्ग भङ्ग के कार्य्य के लिये यहाँ तक कह डाला था:—

"The hugest blunder committed since the battle of Plassy" अर्थात् प्लासी के युद्ध के बाद की भूलों में यह सबसे भारी भूल थी।"

सन् १९११ में लॉर्ड मॉर्ले के स्थान पर लॉर्ड क्रू महोदय नियुक्त हुए। इसी साल इण्डियन असोसिएशन की ओर से बाबू भूपेन्द्रनाथ बसु नये स्टेट सेक्रेटरी के सामने बङ्ग भङ्ग का मामला पेश करने के लिये भेजे गये। लॉर्ड रे की सहायता से लॉर्ड क्रू से बाबू भूपेन्द्रनाथ बसु की मुलाक़ात हो गई। लॉर्ड महोदय ने बाबू साहब की बातें अच्छी तरह सुन लीं। इसी

अर्से में लॉर्ड मिन्टो का कार्य्य-काल समाप्त हुआ। और उनकी जगह उदार हृदय लॉर्ड हार्डिञ्ज पधारे। हम यहा इतना अवश्य कहेंगे कि लॉर्ड हार्डिञ्ज लॉर्ड कर्जन और लार्ड मिन्टो से कहीं अच्छे थे। वे करीब करीब लॉर्ड रिपन से थे। उनके सामने भी बगाल का मामला रक्खागया था। आन्दोलन जोर शोर से जारी था। लॉर्ड महोदयने बाबू सुरेन्द्रनाथ वैनर्जी से कहा कि मैं आपके पेश किए हुये मामले पर अत्यन्त गम्भीरता से विचार करूगा। आप उत्तेजना के भाव न फैलाइये। सन् १९११ की १२ जून को नये लार्ड महोदय की सेवा में बगाल प्रान्त की ओर से एक मेमोरीयल और भेजा गया। इसकी एक नकल सर विलियम वेडनबर महोदय की सेवा में भी भेजदी गई। सर महोदय इसे लेकर तत्कालीन स्टेट सेक्रेटरी लॉर्ड क्रू से मिले और उन्होंने बडी योग्यता के साथ देशकी उचित माँग को लॉर्ड महोदयके सामने रखी और भारत केसाथ उचित न्याय करनेके लिये अनुरोध किया। इग्लैण्ड के उदार दल के लोगों को (Liberals) और कई अधिकारियों को इन सब बातों से विश्वास होगया कि दर असल बगाल पर अन्याय किया गया है और इससे सारे भारतवर्ष में अशान्ति की आग फैली हुई है। इस ओर उदार हृदय लार्ड हार्डिञ्ज महोदय भी परिस्थिति का बारीकी से अध्ययन करने लगे। उन्हें यह ठीक जँचा कि बङ्ग भङ्ग रद्द करके देश में बढती हुई अशान्ति की आग शान्त कर दी जाय। दिल्ली दरबार का मौका नजदीक था। श्रीमान् सम्राट् का अभिषेकोत्सव होनेवाला था। अतएव श्रीमान् सम्राट्ही के कर कमलों से बङ्ग भङ्ग रद्द करने की आज्ञा निकलजाना ठीक समझा गया। दिल्ली दरबार के आखिर में श्रीमान् सम्राट् ने बङ्ग भङ्ग रद्द करने की

घोषणा की। श्रीमान् सम्राट् की यह घोषणा सारे देश में बड़े आनन्द से सुनी गई। सारा देश एक हृदय से श्रीमान सम्राट् को धन्यवाद देने लगा। लॉर्ड हार्डिञ्ज की दूरदर्शी नीति ने हिन्दुस्थान के बढ़ते हुए जोश को, इस तरह कुछ समय के लिये ठंढा कर दिया।

बङ्ग भङ्ग के बाद।

बङ्ग भङ्ग ने भारतवर्ष को जगा दिया। इससे भारत को अपनी निःसहाय अवस्था का ज्ञान हुआ। उसमें नया जीवन और नयी स्फूर्ति का सञ्चार हुआ। उसके वायुमण्डल में राष्ट्रीय भावों के भाव मंडराने लगे। उसे मालूम होने लगा कि अपने देश का सूत्र अपने हाथ आये बिना कभी कल्याण हो नहीं सकता। देश की स्वतन्त्रता के भाव उठते हुए नवयुवकों के हृदयों को फड़काने लगे। मतलब यह कि देश ने एक नये युग में प्रवेश किया। उसमें एक प्रकार की मानसिक क्रान्ति होने लगी। सारे देश में जीवनशक्ति की विद्युत् लहर चलने लगी। देश का नवयुवक समाज अपने प्यारे देश की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नवान होने लगा। पहले पहल उन्होंने स्वदेशी का शस्त्र धारण कर विदेशी माल का बहिष्कार करना शुरू किया। इसमें आंशिक सफलता भी हुई। पर देश के नवयुवक समाज को यह उपाय भी अपूर्ण जँचा। देश के स्वाधीन करने की अग्नि उनमें बड़े ज़ोर से प्रज्वलित हो रही थी। इस कार्य की सफलता के लिये उन्होंने उस वक्त

कुछ ऐसे मार्गों का अवलम्बन किया, जो पाश्चात्य थे, जो भारत के उच्च आदर्श के अनुकूल नहीं थे। यद्यपि भारत की नौकरशाही इनके इन कार्यों की जिम्मेदार थी, पर तो भी ये उपाय भारत के उच्चतम ध्येय के प्रतिकूल थे। ये उपाय प्राय: वही थे जो रूस के विप्लवकारियों ने, जार के भयङ्कर अत्याचारों से तङ्ग आकर अङ्गीकार किये थे। हम यहां संक्षेप से यह दिखलाना चाहते हैं कि भारत की नौकरशाही से तङ्ग आकर देश की स्वाधीनता के लिये हमारे कई नवयुवकों ने कैसे कैसे प्रयत्न किये। यहाँ हम यह संकेत कर देना उचित समझते हैं कि उनके ये उपाय असामयिक और अनुचित थे, क्योंकि भारत का आदर्श हमेशा से गुप्त षड्यन्त्रों से खिलाफ़ रहा है।

——:o:——

विशेष रूप से प्रकाश में आया। बमकाण्ड (Bomb-outrage) की घटना इस प्रकार है। ३० अप्रैल को मुज़फ़्फ़रपुर में बम फेंका गया। इस गाड़ी में दो निर्दोष युरोपियन महिलाएँ बैठी हुई थीं। ये दोनों बम की शिकार बनीं। जाँच करने से मालूम हुआ कि बम फेंकनेवालों का इरादा इन्हें मारने का नहीं था। वे मि० किंग्ज़फोर्ड की, जो कि कलकत्ते के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट रह चुके थे, शिकार करने मुज़फ़्फ़रपुर आये थे। किंग्ज़फोर्ड के बदले दो निर्दोष महिलाओं की जान गई। इस भीषण हत्या के दो दिन बाद, इसी के सम्बन्ध में दो नवयुवक पकड़े गये। एक ने अपना अपराध स्वीकार किया और उसको फाँसी की सज़ा हो गई !! दूसरे नवयुवक ने गिरफ़्तारी के समय आत्महत्या कर ली !!

इस घटना ने कोहराम मचा दिया ? अब बड़ी जोर शोर से धर पकड़ होने लगी। २ मई को, इसी हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में, पुलिस ने माणिक होला बाग़ की तलाशी लेकर बम्ब, डिनामाईट आदि कुछ आपत्तिजनक चीज़ें प्राप्त कीं। ३४ मनुष्यों को भी उसने, इस सम्बन्ध में गिरफ़्तार किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इनमें कई निर्दोष थे और वे पीछे जाकर छुटभी गये। स्वनाम धन्य अरविंद घोष जैसे महान् और दिव्य पुरुष को भी पुलिस ने इस मद्दे अपराध में गिरफ़्तार कर लिया था। पीछे जाकर इनकी निर्दोषिता सिद्ध हुई और ये दोषमुक्त कर दिये गये। ३४ आदमियों में हायकोर्ट के द्वारा केवल १५ अपराधी सिद्ध हुए। शेष छोड़ दिये गये। यह अभियोग अलिपुर अभियोग के नाम से मशहूर है और इसमें हमारे वर्तमान नेता श्रीयुत चितरंजन दास बैरिस्टर ने अभियुक्तों की ओरसे

कुछ ऐसे मार्गों का अवलम्बन किया, जो पाश्चात्य थे, जो भारत के उच्च आदर्श के अनुकूल नहीं थे। यद्यपि भारत की नौकरशाही इनके इन कार्यों की जिम्मेदार थी, पर तो भी ये उपाय भारत के उच्चतम ध्येय के प्रतिकूल थे। ये उपाय प्राय: वही थे जो रूस के विप्लवकारियों ने, जार के भयङ्कर अत्याचारों से तङ्ग आकर अङ्गीकार किये थे। हम यहां संक्षेप से यह दिखलाना चाहते हैं कि भारत की नौकरशाही से तङ्ग आकर देश की स्वाधीनता के लिये हमारे कई नवयुवकों ने कैसे कैसे प्रयत्न किये। यहाँ हम यह संकेत कर देना उचित समझते हैं कि उनके वे उपाय असामयिक और अनुचित थे, क्योंकि भारत का आदर्श हमेशा से गुप्त षड्यन्त्रों से ख़िलाफ़ रहा है।

—:o:—

बंगाल में क्रान्तिकारक उपाय।

जब से बङ्ग भङ्ग हुआ, तभी से बङ्गाल में एक क्रान्तिकारक दल उत्पन्न हुआ। यद्यपि इस दल का अन्तिम आदर्श स्वराज्य प्रशंसनीय पवित्र था पर उसकी प्राप्ति के मार्ग जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, ठीक नहीं थे। बङ्ग भङ्ग के बाद ही से इस दल की ओर से कुछ कार्य्य होने लगे, पर सन् १९०८ के दिन ३० अप्रेल को जो बमकाण्ड हुआ उसने यह दल

३००००) का माल लेकर चंपत हुए। गांव के चौकीदार ने उन्हें रोकने की चेष्टा की। इस पर कहा जाता है कि वह मार डाला गया। गांव वालों ने उनका बहुत लम्बे दूर तक पीछा किया। उन्हो ने इन गांव वालों पर भी गोलियां चलाईं। तीन आदमी ज़खमी हुए।

इसी साल के अर्थात् सन् १६०८ के ३० अक्टूबर को फ़रीदपुर डिस्ट्रिक्ट के नरिया जिले में एक और भीषण डाका पड़ा। इस गांव के पास ही नदी आ गई है। बड़ी दूर से कोई ४० या ५० सशस्त्र लोग नांव के द्वारा उक्त गांव पर पहुँचे। उन्होंने इस गांव में स्टीमर ऑफिस और तीन घरों को लूटा। इनका पता चलाने के लिये सरकार की ओर से १०००) का इनाम निकला। पर इसका कुछ फल नहीं हुआ। रॉलेट रिपोर्ट के लेखक इन दोनों डाकों का सम्बन्ध डाका समिति से बतलाते हैं *

इसी प्रकार इसी साल में बजितपुर, मैमनसिंह ज़िले आदि में भी कुछ इसी प्रकार के डाके गिरे। इनके सम्बन्ध में कुछ आदमी पकड़े गये और उनमें से कुछ को सज़ा हुई।

सन् १६०६ में भी यह अशान्ति बराबर बनी रही। १० फ़रवरी को सरकारी वकील मि० आशुतोष विश्वास मार डाले गये। ये नारायण गोस्वामी की हत्या के मामले में सरकार की ओर से पैरवी करते थे। हत्यारा पकड़ा गया और उसे फांसी की सज़ा हुई। ३ जून सन् १६०६ को, षड्यन्त्री दल के द्वारा प्रियनाथ चैटर्जी का ख़ून हुआ। कहा जाता है कि यह

*रॉलेट रिपोर्ट के लेखकों के मतानुसार यह समिति षड्यंत्र कारियों की थी।

जिस अद्भुत् योग्यता और निःस्वार्थ भाव से पैरवी की, वह परम प्रशंसनीय है।

इस अभियोग में नरेन्द्रनाथ गोस्वामी नामक नवयुवक सरकारी गवाह बन गया था। उसको जेल ही में अभियुक्त बा० कन्हैयालाल दत्त और सत्येन्द्रनाथ ने मार डाला। जेल में अभियुक्तों के हाथ पिस्तोल आदि कहाँ से लगे, इस बात का पता पुलिस नहीं लगा सकी। कन्हैयालाल बड़ी निर्भीकता से फाँसी पर गया। सुप्रसिद्ध एङ्गलो इण्डियन पौयनीयर ने उसकी तारीफ़ में एक लेख लिखा था। कन्हैयालाल का शव बड़ी धूमधाम से स्मशान पर पहुंचा। हज़ारों मनुष्य और बङ्गाली महिलाएँ शव के साथ थीं। कन्हैयालाल की राख लेने के लिये हज़ारों मनुष्य आतुर होने लगे। गुरु के शव का बड़ा सन्मान हुआ। कन्हैयालाल के शव का यह अपूर्व सन्मान देख कर दूसरे अभियुक्त सत्येन्द्र का शव उसके कुटुम्बियों को नहीं दिया गया।

१५ मई सन् १९०८ को कलकत्ते के ग्रे स्ट्रीट में बमकाण्ड हुआ। इसमें ४ आदमी ज़खमी हुए। इसके अतिरिक्त इस साल इस प्रकार की और भी कुछ छोटी मोटी घटनाएँ हुईं। रेल्वे पर भी कहीं कहीं बम फेंके गये। कुछ खुफिया पुलिस के अफ़सर भी षड् यन्त्र कारियोंके शिकार बने।

सन् १९०८ से सन् १९१४ या १९१५ तक बङ्गाल में कुछ ऐसे डाके गिरे जिन्हें पुलिस राजनैतिक डाके कहती है। सन् १९०८ में ढाका जिले के बरेह ग्राम में एक भीषण डाका गिरा। कहा जाता है कि पचास आदमियों का एक झुण्ड रिवालवर्स और अन्य शस्त्र लेकर नांव में बैठकर उक्त ग्राम में आया और वहां एक धनिक के घर में हमला किया। वे २५०००) या

३००००) का माल लेकर चंपत हुए। गांव के चौकीदार ने उन्हें रोकने की चेष्टा की। इस पर कहा जाता है कि वह मार डाला गया। गांव वालों ने उनका बहुत लम्बे दूर तक पीछा किया। उन्हों ने इन गांव वालों पर भी गोलियां चलाई। तीन आदमी ज़ख़्मी हुए।

इसी साल के अर्थात् सन् १९०८ के ३० अक्तूबर को फ़रीदपुर डिस्ट्रिक्ट के नरिया ज़िले में एक और भीषण डाका पड़ा। इस गांव के पास ही नदी आ गई है। बड़ी दूर से कोई ४० या ५० सशस्त्र लोग नांव के द्वारा उक्त गांव पर पहुँचे। उन्होंने इस गांव में स्टीमर ऑफ़िस और तीन घरों को लूटा। इनका पता चलाने के लिये सरकार की ओर से १०००) का इनाम निकला। पर इसका कुछ फल नहीं हुआ। रॉलेट रिपोर्ट के लेखक इन दोनों डाकों का सम्बन्ध डाका समिति से बतलाते हैं *

इसी प्रकार इसी साल में बजितपुर, मैमनसिंह ज़िले आदि में भी कुछ इसी प्रकार के डाके गिरे। इनके सम्बन्ध में कुछ आदमी पकड़े गये और उनमें से कुछ को सज़ा हुई।

सन् १९०९ में भी यह अशान्ति बराबर बनी रही। १० फ़रवरी को सरकारी वकील मि० आशुतोष विश्वास मार डाले गये। ये नारायण गोस्वामी की हत्या के मामले में सरकार की ओर से पैरवी करते थे। हत्यारा पकड़ा गया और उसे फांसी की सज़ा हुई। ३ जून सन् १९०९ को, षड्यन्त्री दल के द्वारा प्रियनाथ चैटर्जी का ख़ून हुआ। कहा जाता है कि यह

*रॉलेट रिपोर्ट के लेखकों के मतानुसार यह समिति षड्यंत्र कारियों की थी।

आदमी अपने भाई के बदले में गलती से मारा गया। इसके भाई ने एक मामले में सरकार की ओर से गवाही दी थी।

इसी साल की १६ अगस्त को खुलना जिले के नेगला ग्राम में डाका पड़ा। ८या ६ मुँह ढके हुए सशस्त्र डकैत एक धनिक के घर में घुस पड़े और उसका बहुत सा माल लेकर चम्पत हुए। इस सम्बन्ध में कई संदेहास्पद लोगोंकी खाना तलाशी हुई जिनमें कुछ आपत्ति जनक साहित्य और विस्फोटक पदार्थ मिले। कुछ लोग गिरफ्तार किये गये और उन्हें सज़ा हुई।

इसी साल के दिसम्बर मास में नासिक के कलेक्टर मि० जेकसन की हत्या हुई। इस सम्बन्ध में ७ आदमी गिरफ्तार किये गये। जिनमें से तीन को बहुत कड़ी सज़ा हुई। इसी सिल-सिले में नासिक षड्यन्त्र का पता लगा जिसमें ३८ आदमी गिरफ्तार किये गये और २७ को सज़ा हुई।

इधर तो भारत में, इस वक्त, यह काण्ड हो रहे थे और उधर विलायत में एक बिगड़े दिमाग़ भारतीय विद्यार्थी के द्वारा सर कर्ज़न वाइली की हत्या हुई।

गवालियर राज्य में भी एक षड्यन्त्र का पता लगा। इसमें कोई २२ ब्राह्मण गिरफ्तार किये गये। कहा जाता है कि ये नव भारत समिति नामक एक क्रान्तिकारक संस्था के सदस्य थे। इनकी जाँच के लिये एक खास अदालत बैठाई गई। अदालत द्वारा बहुत से नवयुवक दोषी पाये गये और उन्हें अज़हद कड़ी सज़ा हुई। बङ्गाल में वहां के छोटे लाट सर एण्ड्र फ्रेज़र की हत्या करने की एक नवयुवक विद्यार्थी ने असफल चेष्टा की। नवयुवक का निशाना चूक गया और लॉट महोदय बाल बाल बच गये! मुजरिम पकड़ा गया और उसे दस वर्ष के कालेपानी की सजा हुई।

लोकमान्य तिलक पर मुक़द्दमा

और ६ वर्ष की सज़ा।

मुज़फ़्फ़रपुर के हत्याकांड के सम्बन्ध में हम पीछे लिख चुके हैं। इसी सम्बन्ध में भारत के परम पूज्य नेता लोकमान्य तिलक का सुविख्यात पत्र "केसरी" में अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण लेख निकले थे। कहा जाता है कि ये लेख ख़ास लोकमान्य की लेखनी से नहीं लिखे गये थे, वरन् सम्पादकीय विभाग के किसी अन्य सज्जन ने लिखे थे। लोकमान्य तिलक ने इन लेखों की सब ज़िम्मेदारी अपने सिर पर लेली। इन लेखों में रूस आदि देशों के उदाहरणों से यह दिखलाया गया था कि प्रजा की इच्छाओं को, प्रजामत-को, ठुकराने से दमन-नीति के ज़ोर से-किस प्रकार का क्रान्तिकारक दल उत्पन्न होता है। इन लेखों में रूस की घटनाओं की तुलना भारतवर्ष की तात्कालिक घटनाओं से की गई थी और यह दिखलाया गया था कि इनकी ज़िम्मेदार नौकरशाही की ज़ुल्मी और अत्याचार पूर्ण नीति है। लोकमान्य राज्य विद्रोह के अपराध में गिरफ़्तार किये गये। बम्बई की मैजिस्ट्रेटी कोर्ट में उन पर मुक़द्दमा चलाया गया। लोकमान्य ने एक सप्ताह तक बड़ीही योग्यता और गम्भीर विद्वत्ता से अपनी पैरवी आप की। बड़े बड़े वकील आपका कानून सम्बन्धि अगाध ज्ञान देखकर दङ्ग रह गये। आपने, अपने बचाव में कानून के तत्वों का जो स्पष्टीकरण किया, वह कानून के इतिहास में लिखे जाने योग्य है। आपने, अपने बचाव में एक

सप्ताह तक निरन्तर जो व्याख्यान दिया, उससे सहसा किसी को यह विश्वास नहीं हो सकता कि लोकमान्य दोषी थे। आपने पूर्ण रूपसे अपनी निर्दोषिता सिद्ध की। पर इसका कुछ परिणाम नहीं हुआ। आपको ६ वर्ष के द्विपान्तर वास की सज़ा होगई। पीछे जाकर यह सज़ा सादी सज़ा में तबदील हो गई। यहां यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि आप के मुक़दमे में जो *ज्यूरी बैठे थे, उन में ७ अंग्रेज़ और २ हिन्दुस्तानी थे।* दोनों हिन्दुस्थानियों ने आपको निर्दोष बतलाया।

लोकमान्य के सज़ा होने का समाचार विद्युत वेग की तरह सारे देशमें फैल गया। चारों ओर अजब सन्नाटा छा गया। भारतवर्ष पर शोक की घनघोर घटा छा गई!! प्रायः सारे भारतवर्ष में हड़ताल हुई! बम्बई में सात दिन तक निरन्तर हड़ताल रही। लोगों ने गिड़गिड़ा कर निर्दोष लोकमान्य को छोड़ देने की प्रार्थना की, पर उनकी एक न सुनी गई। लोकमान्य सज़ा भुगतने के लिये मन्डाले जेल में भेज दिये गये।

लोकमान्य के मित्र श्रीयुत खापर्डे ने प्रिव्हो कौन्सिल की ज्युडीशियल कमेटी के सामने अपील की। हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इस वक्त मि० खापर्डे के साथ इंग्लैण्ड में हमेशा डिटेक्टिव लगे रहते थे। मि० हिन्डमन ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि "जब मि० खापर्डे मेरे मकान पर मुझ से मिलने आये तब उनके आस पास कई डिटेक्टिव लगे हुए थे। एक तो मेरे घर के द्वार पर बैठा था और कुछ इधर उधर चक्कर काट रहे थे। मुझे तो इस अपील की सफलता में पहले से ही संदेह था।"

सरकार की दमन नीति इस वक्त बड़े ज़ोर पर थी। ज़रा ज़रा से अपराधों पर लोगों को अत्यन्त कड़ी सज़ाएँ दी जाती थीं। राजनैतिक कैदियों के साथ जेल में जैसा क्रूर व्यवहार किया जाता था वह एक दम ही हृदयद्रावक था। कई होनहार नवयुवक नौकरशाही की दमन नीति के शिकार बने। कैदियों की ज़िन्दगी बरबाद हो गई। राजनैतिक कैदियों के साथ जेल में कैसा व्यवहार किया जाता था, इसका एक ज्वलन्त उदाहरण हम "न्यू इण्डिया" नामक पत्र से यहाँ देते हैं:—

"स्वराज्य के भूतपूर्व सम्पादक मि० रामचरण लालकी दुःखी अवस्था ज्यों की त्यों बनी हुई है। नागपुर के सिटी मैजिस्ट्रेट ने आपको सज़ा की मियाद ख़त्म हो जाने पर भी और छः मास के कठोर कारावास का दण्ड दिया है। आपका अपराध केवल यही था कि आपने काम करने से इन्कार किया था। हमारे पाठकों को इस मामले का हाल मालूम होगा। इस हतभाग्य राजनैतिक कैदी के इतनी क्रूरता के साथ कोड़े मारे जाते हैं कि वह बेहोश तक हो जाता है। जेल के डॉक्टर को यह कहना पड़ा है कि कोड़ों की मार के कारण कैदी चार दिन तक काम करने में असमर्थ होगा। छः दिन तक इस बेचारे के मार के निशान नहीं मिटे! इन्हें फिर छः मास की कड़ी सज़ा हुई। यह देखिये एक राजनैतिक कैदी के साथ किस प्रकार का व्यवहार हो रहा है? क्या हाउस ऑफ़ कामन्स में ऐसा कोई भी सदस्य नहीं है जो इस मामले के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे और इस बात की जाँच करने के लिये ज़ोर दे कि ब्रिटिश भारत में राजनैतिक कैदियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है।"

भारत के तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ् स्टेट फॉर इण्डिया ने हालही में "My Recollections" नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें आपने अपना वह पत्रव्यवहार भी प्रकाशित किया है, जो उनके और लॉर्ड मिन्टो के बीच हुआ था। इस पत्र व्यवहार से मालूम होता है कि खुद लॉर्ड मार्ले भारत सरकार की उस भयङ्कर दमननीति के खिलाफ़ थे जो उस समय यहाँ काम में लाई जा रही थी। हम यहाँ केवल एक दो उदाहरण देकर यह दिखलाना चाहते हैं कि उस समय की दमननीति को खुद लॉर्ड मार्ले किस दृष्टि से देखते थे। आपने अपने एक पत्र में लॉर्ड मिन्टो को लिखा था:—

"I must confess that I am watching with the deepest concern and dismay the thundering sentences that are now being passed for Sedition etc. I read today that stone throwers in Bombay are getting twelve month's. This is really outrageous The sentences on the two Tinneveli men are wholly indefensible; one gets transportation for *life, the other for ten years. I am to have the judge*ment by the next mail, and meanwhile thinks he has said enough when he tells me that "the learned judge was in no doubt as to the criminality of the two men." This may have been all right, but such sentences ! ! They can not stand. I can not on any terms consent to defend such monstrous things. I do therefore urgently solicit your attention to these wrongs & follies. We must keep order,

but excess of severity is not the path of order. On the contrary it is the path to the bomb." अर्थात् राज विद्रोह के लिये आज कल जो भयानक सज़ायें दी जारही हैं, उन्हें मैं अत्यन्त चिन्ता और भय के साथ देख रहा हूँ। मैंने आज पढ़ा है कि बम्बई में पत्थर फेंकने के अपराध में लोगों को बारह बारह मास की सज़ायें हुई हैं। दर असल यह बहुत सख़्त हैं। तिनवेली के दो मनुष्यों को यथाक्रम जो आजन्म कालेपानी और दस वर्ष की कड़ी सज़ायें हुई हैं, वे पूर्ण रूपसे असमर्थनीय हैं। दूसरी डाक से मेरे पास इसका फ़ैसला पहुंच जायगा। यह बात सत्य हो सकती है कि जज को इनके अपराधों के विषय में सन्देह न होगा। पर इस पर ऐसी सज़ाएं! इन सज़ाओं का समर्थन हो ही नहीं सकता! मैं इस प्रकार की भयानक बातों का पक्ष नहीं ले सकता। अतएव मैं आपका ध्यान इन भूलों और बेहूदगियों की ओर आकर्षित करता हूँ। हमें व्यवस्था रखना चाहिये, पर अधिक सख़्ती व्यवस्था का मार्ग नहीं है। इसके विपरीत वह तो बम का मार्ग है। (अर्थात् लॉर्ड मार्ले के कथनानुसार ज़रूरत से ज़्यादा सख़्ती ही बम काण्ड का कारण होता है।)

इस प्रकार लॉर्ड मार्ले ने और भी अनेक अत्याचारों का वर्णन किया है। ये बातें ऐसे वैसे आदमी की नहीं, ख़ास स्टेट सेक्रेटरी की हैं। पाठक, सोच सकते हैं कि भारत सरकार की दमन नीति को जब ख़ुद स्टेट सेक्रेटरी इस बुरी दृष्टि से देखते थे, तब साधारण भारतीय जनता किस दृष्टिसे देखती होगी। अगर वह अपने नवयुवकों को ज़रा ज़रा से अपराधों पर इतनी भयानक सज़ाएं भुगतते हुए देखती होगी तो क्या उसका ख़ून नहीं उबल पड़ता होगा। यह मनुष्य स्व-

भाव है। इस क्रोध के जोश में हमारे कुछ कच्चे दिमाग नौजवानों ने कुछ वेसमझी और नादानी के काम किये तो इसके जिम्मेदार जितने वे नवयुवक हैं, उससे भी अधिक जिम्मेदार दमन का आश्रय लेने वाली नौकरशाही है। ससार का इतिहास हमें यह दिखलाता है कि दमननीति ही क्रान्ति और राज विद्रोह के बीज बोती है। अतएव एक प्रख्यात् अमेरिकन लेखक मि० थॉरो का कथन है कि जो सरकार जितना अधिक दमन नीति का आश्रय लेती है, वह उतनी ही अयोग्य है। सबसे अच्छी सरकार वही है, जिसे सबसे कम शासन करना पड़े।

नौकरशाही की दमन नीति ने भारत में क्रान्तिकारक दल उत्पन्न किया। भारत सदा से राज भक्त रहा है और उसे अपनी राजभक्ति से च्युत करने वाली नौकरशाही की दमन नीति ही है। इस बात को कुछ सहृदय अंग्रेजों ने भी मुक्त कंठ से स्वीकार किया है।

पंजाबमें दमननीति का ज़ोर।

बङ्गाल आदि प्रान्तों के विषय में थोड़ा सा हाल हम ऊपर लिख चुके हैं। सरकार की दमननीति के क्या फल प्रगट हुए, इस पर भी हम थोड़ा सा प्रकाश डाल चुके हैं। अब हम थोड़ा सा हाल उस अभागे पंजाब का लिखते हैं, जो दमननीति का घर सा रहा है।

सन् १६१५ के आरम्भमें पंजाब के दक्षिण पश्चीमीय प्रान्तों में अशान्ति और अराजकता के चिन्ह दिखने लगे। कुछ ग्रामों में लूटमार भी हुई। कहा जाता है कि यह सब अशान्ति और गड़बड़ युद्ध के कारण थी। इस सम्बन्ध में कोई ४००० मनुष्य गिरफ्तार किये गये। ८०० को अपने अपने अपराध के मान से सज़ाएँ हुई। शेष प्रमाण के अभाव के कारण छोड़ दिये गये।

सन् १६१५ के आरम्भ में और सन् १६१५ के अन्त में पंजाब में कुछ डाके गिरे। दुर्भाग्य से ख़ून जैसे कुछ घृणित अपराध भी हुए। कहा जाता है कि ये सब बातें अमेरिका आदि देशों से लौटे हुए कुछ लोगों की प्रेरणा से हुई। इन लोगों ने विदेशों में जो भयङ्कर अपमान सहे थे, उनसे उनका खून गर्म हो रहा था। इन लोगों को केनेडा आदि देशोंमें घुसने की इजाजत नहीं मिली थी। इससे उन्हें वापस लौटना पड़ा। भारत के पश्चिमीय किनारेकेग्राम बजबज में इन लौटे हुए मनुष्यों और सरकार के बीच मुठभेड़ होगई। ये किनारे पर उतर कर अपने देश पञ्जाब में जाया चाहते थे। सरकार ने इनकी स्वतन्त्र गति विधि को नियन्त्रण करना चाहा। इनमें से कुछ लोग कलकत्ता जाया चाहते थे। उन्हें वहाँ जाने से रोका। इन लोगों ने अपने पास छुपे तौर से शस्त्र छिपा रखे थे। पुलिस और इनके बीच एक छोटी सी लड़ाई हो गई। दोनों ओर से लोग हताहत हुए। इसके कुछ समय बाद सरकार ने एक क़ानून बनाया जिसके द्वारा उसने अपने अफ़सरों को ये अधिकार दिये कि वे ब्रिटिश भारत के किसी आदमी को बिना मुक़द्मा चलाये, केवल शान्ति भङ्ग करने के सन्देह पर नज़रबन्द कर

सकते हैं। इस कानून के अनुसार कैनेडा और अमेरिका से लौटे हुए हजारों आदमी नजरबन्द किये गये। इनमें कुछ आदमी तो सख्त पहरे में रखे गये। कुछ लोगों ने भारत के क्रान्तिकारक दलसे गुप्त रूपसे लिखा पढी करना शुरू किया। कहा जाता है कि इस प्रकार भारतव्यापी षड्यन्त्र की सृष्टि की गई। सरकार को अपने गुप्तचरों के द्वारा इसका पता लग गया। इसके लिये खास अदालत बैठाई गई। इस अदालत के सामने जो गवाहियां हुईं, उनसे यह मालूम होता है कि इसका रूप बहुत व्यापक था। पहले दल (batch) के मुकद्दमे के लिये जो खास अदालत बैठाई गई थी, दो अँग्रेज और एक भारतीय जज थे। उपरोक्त कानून के अनुसार यह अदालत बैठाई गई थी। इसका निर्णयही अन्तिम निर्णय था। इसपर अपील नहीं थी। अदालत ने निर्णय किया कि यह षड् यन्त्र राज्य विद्रोहात्मक था। अगर इसका समय पर पता न चला होता तो भयङ्कर परिणाम होता। इस अदालत की कुल कार्रवाई गुप्त रखी जाती थी। इसमें ६१ आदमियों पर अभियोग चलाया गया। इसमें २७ को आजन्म कालेपानी का और २४ को मृत्युदण्ड हुआ। ८ मनुष्यों को अपराध के मान से भिन्न भिन्न प्रकार की सजाएँ हुई। चार दोष मुक्त किये गये। इन सजाओं से देश में सनसनी छा गई। देश के समाचार पत्रों ने इन सजाओं को अत्यन्त सख्त बतलाया। इसके जो रहस्य पीछे जाकर खुले। उनसे हृदय सहसा काँप जाता है।

इस प्रकार इस समय देश में चारों ओर कुछ न कुछ बेचैनी के चिन्ह दिखलाई पड रहे थे। दिल्ली षड्यन्त्र, लाहौर षड्यन्त्र आदि के मुकद्दमों में अभियुक्तों को कैसी कैसी भीषण सज़ाएँ दी गईं, उनके विषय में सोच विचार करने से हृदय

असह्य दुःख से व्याप्त हो जाता है !! कई होनहार नवयुवकों को खास अदालतों द्वारा भीषण सज़ायें मिलीं और उन बेचारों को अपील करने तक का अवसर नहीं दिया गया !! पंजाब का छोटा लाट ओडवायर राष्ट्रीय आन्दोलन का कट्टर शत्रु था और उसने समय समय पर राष्ट्रीय भावों को दबाने के लिये नीच से नीच और कड़े से कड़े उपायों का अवलम्बन किया। भाई परमानंद की धर्मपत्नी ने अपने पूज्य पति के छुटकारे के लिये श्रीमान् वाइसराय को जो पत्र भेजा था, उसमें उन्होंने दिखलाया था, कि परमानंदजी को कितने कमज़ोर और अधूरे सबूत पर इतनी भयङ्कर सज़ा हुई !! कहने की आवश्यकता नहीं कि दिल्ली और लाहौर के षड्यन्त्रों में कितनेही सुशिक्षित लोगों को फाँसियाँ हुई ? कितनों ही को आजन्म कालेपानी की सज़ा हुई ! कितनों ही को पाँच पाँच दस दस वर्ष की कठोर कारावास का दण्ड मिला।

देश ने इन भयानक सज़ाओं के समाचार को अत्यन्त दुःख के साथ सुना। क्यों न हो, रूस आदि कुछ अत्याचार पीड़ित देशों को छोड़कर राजनैतिक अपराधों के लिये इतनी भयानक सज़ायें कहीं नहीं सुनी गईं।

अब इससे भी आगे बढ़िये। हमारे हज़ारों नवयुवक केवल सन्देह के कारण नज़रबंद किये गये थे। उन पर न तो कानून मुक़द्दमाही चलाया गया और न उन्हें अपना अपराध ही बतलाया गया। सैंकड़ों नवयुवकों का होनहार जीवन, बिना किसी अपराध के इस तरह बरबाद किया गया। श्रीमान् सम्राट् की दया से युद्ध के पश्चात् इनका कहीं जाकर छुटकारा हुआ !! सुप्रसिद्ध देशभक्त श्रीयुत अर्जुनलालजी सेठी बिना किसी प्रकार के अपराध लगाये छः वर्ष तक जेल में सड़ाये गये !!

महायुद्ध का आरम्भ

भारत को रौलेट ऐक्ट का पुरस्कार

जब महायुद्ध शुरू हुआ था, जब ब्रिटिश साम्राज्य का अस्तित्व तक धोके में गिर गया था, जब ब्रिटिश साम्राज्य के सामने जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित हो रहा था, जब जर्मन सेना विजय पर विजय प्राप्त करती हुई फ्रान्स की रणभूमि में आगे बढ रही थी, तब इग्लैण्ड के स्वार्थी मन्त्रियोंने हम लोगों को सहायता पाने के लिये कैसे कैसे आशादायक और आश्वासन पूर्ण संदेशे भेजे थे इसका परिचय हमारे पाठकों को अवश्य होगा। हमें आश्वासन दिलाया गया था कि यह युद्ध मानवी स्वाधीनता की रक्षा के लिये-संसार में एक तन्त्रीयता और स्वेच्छाचार का नाश करने के लिये निर्बल और छोटे छोटे राष्ट्रों की प्रबल और साम्राज्य लोभी राष्ट्रों के अत्याचारों से रक्षा करने के लिये किया जा रहा है। इसकी विजय में हिन्दुस्थान का प्रकाशमय भविष्य गर्भित है। मतलब यह कि धर्म युद्ध के नाम पर, मानवी स्वाधीनता की रक्षा के नाम पर, हिन्दुस्थानियों को इस युद्ध में सहायता के लिये आह्वान किया गया था। बेचारे सीधे सादे भोले भाले निष्कपट हिन्दुस्तानियों ने इन स्वार्थी मन्त्रियों की दम पट्टी में आकर तन मन धन से ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता की। भारत ने इस महान् युद्ध में अपने दस लाख आदमी दिये। भूखों मरते हुए भारत ने अपनी कठिन कमाई के धन से कितने ही अर्ब रुपयों से ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता की और भी कई प्रकार की सहायता दी। भारतीय सेनाने फ्रांस के रण मैदान में पहुँच

कर जर्मनी की बढ़ती हुई सेना की गति को अपने अपूर्व शौर्य से रोका। भारतीय सेना इतनी बहादुरी से जंगे मैदान में लड़ी कि इंग्लेण्ड और फ्रांस के सेनापतियों और मुसद्दियों ने उसकी बड़ी तारीफ़ की। जनरल फ्रेन्च ने लिखा था—

"The Indian troops have fought with utmost steadfastness and gallentry, where ever they have been called upon" अर्थात् जब जब हिन्दुस्थानी सेना आव्हान की गई, तब तब वह बड़ी मर्दुमी और बहादुरी से लड़ी। लॉर्ड हालडेन (Lord Haldane) ने कहा था :—

"Indian soldiers are fighting for the liberties of humanity as much as we ourselves India has freely given her lives and treasure in humanities' great cause We have been thrown together in this mighty struggle and have been made to realise our oneness so producing relations between India and England which did not exist before. Our victory will be a victory for the Empire as a whole and could not fail to raise it"

अर्थात् हिन्दुस्थानी सिपाही मनुष्य जाति की स्वाधीनता के लिये उसी प्रकार लड़ रहे हैं, जैसे कि हम। हिन्दुस्थान ने मुक्त हस्त से मनुष्य जाति के इस महान हित में अपना प्राण और धन दिया। हम इस महायुद्ध में एक साथ कन्धे से कन्धा मिलाये हुए हैं। और इससे हमें एकता बोध होने लगी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हिन्दुस्थान और इंग्लैण्ड के बीच का सम्बन्ध इतना दृढ़ हो गया है जितना कि पहिले कभी नहीं हुआ था। हमारी विजय सारे साम्राज्य की विजय

होगी। भारत के तत्कालिक नायव स्टेट सेक्रेटरी मि० चार्ल्स रावर्ट ने हाउस ऑफ कामन्स में व्याख्यान देते हुए हिन्दुस्थान की वहादुर सेना की वडी तारीफ की थी और हिन्दुस्थान की न्यायोचित आकांक्षाओं की पूर्ति का अभिवचन दिया था। युद्ध के समय इग्लैण्ड के प्राय सव मुसद्दियों ने हिन्दुस्थान द्वारा की गई युद्ध की सेवाओं की वडी प्रशसा की थी और इस आशय के आश्वासन दिये गये थे कि विजय होने पर हिन्दुस्थान में नवयुग का प्रारम्भ किया जायगा। हिन्दुस्थान की न्यायोचित आकांक्षाओं को सफल करने की चेष्टाएँ की जायँगी। जिन उदार तत्वों के लिये ब्रिटिश राष्ट्र ने युद्ध में पैर रखा है उन तत्वों का व्यवहार हिन्दुस्थान के लिये भी किया जायगा। हमारे पास स्थान नहीं है कि उन सवके वचनों को हम यहा दुहरायें। इग्लैण्ड के प्राय सव समाचार पत्रों ने हिन्दुस्थान की युद्ध में की गई अमूल्य सेवाओं की तारीफ करते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य देने का ऐलान किया था। पर वे सव मीठी मीठी वातें तव तक होती रहीं जव तक की हिन्दुस्थान की सहायता की आवश्यकता रही जव तक कि युद्ध में विजय नहीं मिलगई। ज्योंहीं युद्ध में विजय मिली कि ब्रिटिश मुसद्दियों के दृष्टि विन्दु में वडा अन्तर पड गया। मनुष्य जाति को स्वाधीन वनाने के वजाय मनुष्य जाति को गुलाम वनाने के विचार सोचे जाने लगे। कमजोर दिल प्रेसिडेन्ट विलसन के चौदह तत्व ताक में रख दिये गये। पराधीन मनुष्य जाति ने यूरोप के इन कूट नीतिज्ञों (Diplomats) से वडा धोखा खाया। कई स्वाधीन जातियों की स्वाधीनता नाश करने के प्रयत्न किये जाने लगे। ससार की स्वाधीनता को हडप करने वाला प्रवल राष्ट्रों का एक सघ

बना, जिसे 'League of nations' कहते हैं। इसने संसार में स्थायी शान्ति स्थापित करने के बजाय संसार में आग भड़कादी। राष्ट्र संघ के इस रूपने गोरे राष्ट्रों के हृदय का, उनकी असलियत का परिचय दिया। स्वभाग्य निर्णय का तत्व केवल उन्हीं राष्ट्रों पर लगाया गया है जो प्रबल थे या जिन पर यह तत्व लगाने से विजयी मित्र राष्ट्रों का स्वार्थ साधन होता था। शेष सब राष्ट्रों के भाग्य का फैसला इन विजयी गोरे राष्ट्रों ने अपने हाथ में रखा। दूसरों का "स्वभाग्य निर्णय" ये खुद करने लगे। ससार को इनसे बडा धोखा हुआ। ससार की स्वाधीनता को ये पेरों-तले कुचलने लगे। तुर्की के टुकड़े २ कर डाले गये। मेसोपोटेमियाँ और अन्य कई देशों के ये अपने आप बिना उन राष्ट्रों की सम्मति के रक्षक बन बैठे। मिश्र और भी ज़्यादा पराधीनता की बेड़ी में फस दिया गया। जर्मनी और आस्ट्रिया की जो दशा की गई वह सब पर प्रकट है। अब हिन्दुस्थान को लीजिये। युद्ध के समय हिन्स्थान को जो बडे बड़े आश्वासन दिये गये, वे पानी के बुलबुले की तरह सिद्ध हुए। हिन्दुस्थान को रिफार्म ऐक्ट का ज़रासा टुकडा देकर संतुष्ट करना चाहा पर हिन्दुस्थान पर इस का कुछ असर नहीं हुआ। क्योंकि हिन्दुस्थान ने देखा इस ऐक्ट में कुछ गुंजायश नहीं है। हाँ, इसमें थोडे से अधिकार हिन्दुस्थानियों को दिये गये हैं पर वे नाकुछ के बराबर हैं। भारत सरकार के अधिकार और भी अधिक स्वतन्त्र हो गये हैं। इससे भारतवासियों को वे अधिकार नहीं मिले जिससे वे देश को कुछ व्यावहारिक लाभ पहुचा सकें। अगर आप इस ऐक्ट को ध्यान पूर्वक पढेंगे तो आपको यह बिलकुल थोथे चने सा मालूम होगा। इस ऐक्ट से भारत की आशाओं पर

पानी फिर गया । उसे घोर रुप से निराश होना पड़ा । इस तरफ तो भारत को इससे निराशा होही रही थी और उधर सरकार भारत को उसकी सेवाओं का बदला बड़े ही उदार ढङ्ग से देने को उतारु हुई । पाठक जानते हैं कि भारत राजभक्त है । भारतवासियों की रग रग में राजभक्ति के भाव भरे हुए हैं । उसके संस्कार राजभक्ति के हैं । पर अधिकारियों की दमन नीति के कारण और पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण कुछ जोशीले नवयुवकोंने कुछ ऐसे कार्य कर डाले थे कि भारतवासियों की अहिंसात्मक प्रवृत्ति के खिलाफ थे । हम इन इने गिने नवयुवकों के कुछ हिंसात्मक कार्यों की तीव्र निंदा करते हैं, पर साथ ही में यह कहते हैं कि इनके इन कार्यों के जिम्मेदार जितने ये नवयुवक नहीं हैं, उतनी वह स्वेच्छाचारी नौकर-शाही है, जिसने भारतवर्ष की आकाँक्षाओं को दबाने के लिये विविध प्रकार की दमन नीतियों का अवलम्बन किया, जिसने भारतवासियों के उठते हुए भावों को दबाने के लिये अमानुषिक उपायों का अवलम्बन किया । इससे कुछ नौज वानों का खून उबल पड़ा और कुछ विक्षिप्त मस्तिष्क नवयुवक उपद्रवी साधनों का अवलम्बन करने लगे । नौकरशाही जैसे जैसे अधिक कड़े उपायों का अवलम्बन करने लगी वैसे वैसे ये भाव जोर पकड़ने लगे । भारत की नौकरशाही ने इन उपद्रवों के मूल कारण पर विचार न कर दमननीति से इन्हें दबाना चाहा । पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उस इसमें यथेष्ट सफलता प्राप्त नहीं हुई । भारत सरकार ने सैकड़ों नवयुवकों का डिफेन्स ऑफ इन्डिया ऐक्ट का सहारा लेकर नजरबन्द किये । इतनाही नहीं उसने जस्टिस रॉलेट की अध्यक्षता में एक कमिशन इसलिये बैठाया कि वह भारत के

इन उपद्रवों की जाँच करे और उन्हें मिटाने के लिये ज़ोरदार उपायों की योजना करे। रोलेट कमीशन ने खुलेतौर से जाँच करने के बजाय सब जाँच गुप्तरूप से की। उसने अपनी रिपोर्ट और सूचनायें प्रकाशित कीं। इस पर भारत में बड़ा आन्दोलन उठा। भारत समझ गया कि रॉलेट कमीशन की इन सूचनाओं के अनुसार ऐक्ट बन जायगा। और यह भारत की नागरिक स्वाधीनता का बड़ा घातक होगा। देश में आग भड़क उठी। दिल्ली काँग्रेस में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी ने अपने भाषण में सरकार को सावधान किया कि वह रोलेट कमीशन की सूचना के अनुसार ऐक्ट बनाने के खतरे से बचे। कई समाजों में प्रस्ताव पास किये गये और समाचार पत्रों में बड़े ज़ोर से लिखा गया कि रोलेट कमिटी की रिपोर्ट की सिफ़ारिशों के आधार पर लोगों की बची खुची स्वतन्त्रता छीनने के लिये क़ानून बनाना ठीक नहीं होगा। माननीय मिस्टर दादा साहेब खापर्डे ने सन् १९१८ के सितम्बर में व्यवस्थापिका सभा में प्रस्ताव किया कि अभी रोलेट कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार काम न किया जाय और उसमें जो बातें दी हुई हैं उनकी तथा खुफिया पुलिस की कार्रवाइयों की जाँच के लिये सरकारी और गैर सरकारी मेम्बरों की एक कमेटी बनाई जावे। पर खापर्डे महोदय का यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। इसके पहिले भी खापर्डे महोदय ने कौंसिल में यह प्रश्न किया था कि रोलेट कमेटी के सामने गवाही देनेवालों के नाम बतलाये जावें, और उसकी रिपोर्ट का जो परिशिष्ट प्रकाशित नहीं किया गया है वह कौंसिल के मेम्बरों को दिखाया जाय, पर सरकार की ओर से इसका साफ़ इन्कारी जवाब मिला। खुशी की बात है कि कौंसिल

के कई माडरेट मेम्बरों ने भी इस प्रस्ताव को असामयिक बतलाया था। सारे देश में रौलेट कमिटी की सूचनाओं का एक स्वर से विरोध हुआ था। चारों ओर से इसके विरोध की आवाज़ सुनाई देती थी। पर भारत की स्वेच्छा-चारी नौकरशाही ने लोकमत की रत्तीभर पर्वाह न कर रौलेट कमिटी की सिफ़ारिशों के आधार पर क़ानून बनाने का निश्चय कर लिया और उसी के फल स्वरूप सरकार ने दो बिल तैयार कर प्रकाशित किये। सन् १९१९ की ७ फरवरी को ये दोनों बिल कौंसिल में पेश किये गये।

कौंसिल में सब के सब निर्वाचित भारतीय सदस्यों ने एक स्वरसे इनका विरोध किया। बाबू सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, सर गंगाधर चिटनवीस, डाक्टर तेज बहादुर सप्रू, मि० शफ़ी जैसे सरकार के हिमायती और नर्मदल के नेताओं ने भी इस बिल का घोर विरोध किया। माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय और माननीय मि० श्री निवास शास्त्री ने तो इस बिल की इतनी धज्जियाँ उड़ाईं कि पूछिये मत। उन्होंने बड़ी योग्यता और दृढ़ता के साथ इसके विनाशक रूप को दर्शाकर इसकी अनुपयोगिता सिद्ध की। उन्होंने दिखलाया कि भारत की नागरिक स्वाधीनता किस प्रकार इन बिलों द्वारा नष्ट की गई है और किस प्रकार इन बिलों के क़ानून के रूप में परिणत हो जाने से भले और निर्दोष आदमियों तक को आफ़त में गिरने का अंदेशा रहेगा। उन्हों ने यह दिखलाया कि इस वक्त बिल के पास करने की कोई आवश्यकता नहीं। उन्होंने साफ़ साफ़ सङ्केत कर दिया था कि इन बिलों के पास हो जाने से हिन्दुस्थान में भीषण अग्नि ज्वाला चेत उठेगी जिसे बुझाना मुश्किल हो जायगा। मगर अफ़सोस है कि नौकरशाही ने एक न सुनी। उसने भारत

के मत का बुरी तरह से अनादर किया! उसने यह दिखला दिया कि किस प्रकार स्वेच्छाचारी नौकरशाही राष्ट्र के मत का अनादर कर मनमानी कार्रवाई करने पर उतारू हो जाती है। कौंसिल तो एक फार्स है। उसमें सरकारी मेम्बरों ही की संख्या अबतक अधिक थी। नौकरशाही ने चुने हुए प्रजा प्रतिनिधियों की राय की अवहेलना कर सरकारी सदस्यों की अधिक सम्मतियाँ प्राप्त कर उन बिलों को क़ानून का रूप दे दिया। इस पर देश में सनसनी छा गई। देश को मालूम हो गया कि उसी के राज्य कारोबार में उसके पुत्रों की राय की कोई क़दर नहीं है। इस सनसनी में एक ज्योतिर्मय और महान तेजस्वी आत्मा गाँधी जी ने प्रकट किया कि रालेट बिल अन्याय पूर्ण है, न्याय और स्वाधीनता का हरण करने वाला है। लोगों के प्रारम्भिक स्वत्वों का जिन पर कि जाति की रक्षा अवलम्बित है, घातक है। इसलिये अगर इन बिलों ने कानून का रूप धारण कर लिया तो हम इन क़ानूनों को मानने से Civilly इन्कार करेंगे और इनके अतिरिक्त आगे मुकर्रर की जाने वाली कमेटी के बतलाये हुए अन्य कानूनों की भी शान्ति के साथ अवज्ञा करेंगे। हम विश्वास से कहते हैं कि इस युद्ध (Struggle) में हम सत्य का अनुकरण करेंगे और किसी मनुष्य की जान माल और जिस्म पर इज़ा पहुँचाने से बरी रहेंगे।

सत्याग्रह का आरम्भ

महात्मा गाँधी ने उपरोक्त आशय की सत्याग्रह की घोषणा कर दी। सत्याग्रह के दिव्य तत्वों के विषय में हमारे बहुत

से पाठक जानते ही होंगे। अतः उनके विषय में यहाँ अधिक लिखना अनावश्यक है। सत्याग्रह का मूलार्थ सत्य का धारण करना है। अतः इसे सत्य बल भी कह सकते हैं। महात्मा गाँधी ने इसे आत्म-बल और प्रेम-बल भी कहा है। यह दिव्य अस्त्र महात्मा गाँधी के मतानुसार पाशविक बलका मुक़ाबला करने के लिये अमोघ अस्त्र है। बड़ी २ शक्तियां इस दिव्य और ईश्वरीय शक्ति के सामने सिर झुकाती हैं। सत्याग्रह विशुद्ध अहिंसात्मक है। उसमें अशुद्धता का नामोनिशान तक नहीं है। महात्मा गाँधी ने इसी अहिंसात्मक और प्रेम बल के द्वारा रौलेट ऐक्ट के खिलाफ़ आन्दोलन उठाया। इससे पाठक इस आन्दोलन के निर्दोष और अहिंसात्मक स्वरूप को समझ सकते हैं। महात्मा गाँधी ने जनता को बार बार पाशविक बल का उपयोग न करने को कहा था। उन्होंने सत्याग्रह का जो प्रोग्राम निश्चित किया था वह बिलकुल निर्दोष और अहिंसात्मक था। महात्मा गाँधी ने घोषणा की कि रौलेट ऐक्ट के खिलाफ़ में देश शान्ति के साथ अपना विरोध करे। इसके लिये ६ अप्रेल को सारे देश में हड़ताल रहे। लोग उपवास करें। इसके अनुसार उस दिन सारे देश में हड़ताल रही। सारे देश में ६ अप्रेल को मातम का दिन मनाया गया। इसी प्रकार पंजाब ने भी एक दिल से इस दिन रौलेट ऐक्ट के लिये मातम मनाया। इस दिन सारे पंजाब में हड़ताल थी। पंजाब के प्रायः सब नर नारी इस मातम में अन्तःकरण पूर्वक सम्मिलित हुए थे। हिन्दू और मुसलमानों में इस दिन आश्चर्य कारक एकता देखी गई थी। चहुं ओर इस दिन रौलेट ऐक्ट के खिलाफ़ सभायें हो रही थीं; जिनमें लाखों मनुष्य सम्मिलित होते थे। बड़ाही

अपूर्व दृश्य था। सैकड़ों वर्षों में ऐसा अवसर न आया होगा जिससे देश तन मन से मिल गया हो। इस दिन जिधर देश में देखिये उधर ही रॉलेट ऐक्ट के ख़िलाफ़ शान्त लहर चलती हुई दिखलाई देती है। पंजाब के स्वेच्छाचारी शासक सर माइकेल ओडायर से जनता की यह आश्चर्य्य कारक एकता नहीं देखी गई। हिन्दू और मुसलमानों के अपूर्व सम्मेलन को देख कर वह मन ही मन जल भुनकर ख़ाक हो गया। उसने इस राष्ट्रीय एकता को ब्रिटिश शासन के लिये ख़तर नाक समझा। उसने हड़ताल आदि शान्तिमय विरोधी शस्त्रों को ब्रिटिश राज्य के ख़िलाफ़ एक ज़बरदस्त षड़यन्त्र माना। वह इस आन्दोलन के सत्यानाश करने का उपाय सोचने लगा। माईकेल ओडवायर शिक्षित जनता का तो पूरा दुश्मन था उसने समय समय पर शिक्षित जनता के प्रति अपना ज़हर उगला है। वह हिन्दुस्तानियों की न्यायोचित आकांक्षाओं का कट्टर शत्रु था। उसने रिक्रूट भरती करते समय पंजाब की जनता पर अमानुषिक अत्याचार किये थे। उसने पंजाब की राष्ट्रीय भावनाओं को दबाने में जिस प्रकार के राक्षसी उपायों का अवलम्बन किया था, वे एक दम ही घृणा करने योग्य हैं। सर माइकेल ओडवायर अगर शैतान का साक्षात अवतार कहा जाय तो हमारी राय में कुछ अतिशयोक्ति न होगी। उसने पंजाब जैसे राजभक्त और युद्ध में सबसे अधिक मदद देने वाले प्रान्त पर जैसे राक्षसी अत्याचार किये उससे अंग्रेज़ जाति के इतिहास में उसने एक बड़ा भारी काला धब्बा लगाया। ख़ैर अब हम पंजाब में किये गये अत्याचारों का संक्षिप्त रूप से सिल सिलेवार वर्णन करते हैं। इससे पाठकों को स्थिति का अच्छा ज्ञान हो जायगा। इस सम्बन्ध में हमारा ख़ास आधार कांग्रेस सब कमेटी की रिपोर्ट रहेगी।

अमृतसर में अत्याचार

जल्यानवाला बाग़ की भयंकर क़त्ल ।

डायर पिशाच के रूपमें।
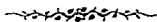
अमृतसर पंजाब का एक प्रधान नगर है। वीर सिक्खोंका यह तीर्थ स्थान है। सिक्खों का सुप्रसिद्ध सुनहरी मंदिर यहां पर है। पंजाब में यह व्यापार का ख़ास केन्द्र है। इन सब बातों की वजह से इस नगर में भिन्न भिन्न उद्देशों को लेकर सैकड़ों प्रवासी आते हैं। जब हिन्दू सम्वत् शुरु होता है तब (चैत्र मास) यहां एक भारी मेला लगता है, जिसमें हज़ारों आदमी आते हैं। इस नगरने भी ६ अप्रेल को सम्पूर्ण हड़ताल की थी। इस में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि सब जातियों ने बड़े उत्साह से हिस्सा लिया था। इस नगर में हज़ारों नर नारियों ने मातम मनाया था। इस दिन किसी प्रकार का बखेड़ा न हुआ। जनता ने बड़ी शान्ति से काम लिया।

इसके बाद क्या हुआ ? ६ अप्रेल के दिन रामनवमी का त्यौहार था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रामनवमी हिन्दुओं का धार्मिक त्यौहार है, पर इस बक्त इस त्यौहार का उपयोग हिन्दू मुसलमानों की एकता के अपूर्व प्रदर्शन में किया गया। मुसलमानों ने भी हार्दिक भाव से अपने हिन्दू भाइयों के साथ इस त्यौहार को मनाया। अमृतसर के सुप्रसिद्ध नेता डॉक्टर किचलू और डॉक्टर सत्यपाल ने हिन्दू मुसल

मानों के भ्रातृ भाव बढ़ाने में बड़ा काम किया। इस दि
भी ये दोनों देश नेता हिन्दू मुसलमानों की एकता संगठित
करने का कार्य कर रहे थे। अमृतसर में इन दोनों महानुभावों
ने नयी जान फूँक दी। डॉक्टर किचलू मुसलमान बेरिस्टर है
और सत्याग्रह के पहिले जब तक ये बेरिस्टरी करते थे, इनकी
खूब चली। यह मुनस्टर विश्वविद्यालय के पी० एच० डी०
हैं। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट हैं। हिन्दू मुसलमानों
की एकता में भारत का प्रकाशमय भविष्य देखने वालों में से
आप एक हैं। आपके साथी डॉक्टर सत्यपाल खत्री जाति
के हैं। आपको यद्धन में एक वर्ष तक किंग्ज़ कमीशन मिलता
रहा। आपकी युद्ध सेवाओं की बड़ा तारीफ़ हुई थी आप
डॉक्टर किचलू के सहयोगी हैं। आप दोनों महाशयों ने रौले
ऐक्ट के ख़िलाफ आन्दोलन में बड़ा भाग लिया। आप दोनों ने
सत्याग्रह की प्रतिज्ञा ली थी। इन बातों से आप दोनों ब
लोक प्रिय हो गये। जनता आपको बड़े भक्ति भाव से देखन
लगी। आप लोगों के व्याख्यान सुनने के लिये अमृतसर की
जनता का विशाल समूह उमड़ पड़ता था। ये दोनों महा
नुभाव अमृतसर की जनता के लिये आदर्श स्वरूप हो गये थे
२६ मार्च सन् १६१६ को पंजाब सरकार ने आज्ञा निकाल
कर डॉक्टर सत्यपाल को सार्वजनिक व्याख्यान देने की मनाई
करदी। ये अमृतसर में नजरबन्द (Interned) भी कर दि
गये। जैसा कि हम ऊपर एक वक्त कह चुके हैं कि
भारतवर्ष में कुछ प्रान्तों में ग़लती से ३० मार्च को भी हड़ताल
की गई थी। इस दिन अमृतसर में भी हड़ताल थी। इस
समय रौलेट ऐक्ट का विरोध करने के लिये जो सभा
हुई थी उसमें सरकारी हिसाब के मुताबिक भी ३० या

हजार मनुष्यों से ज़्यादा की भीड़ थी। इस सभा की सब कार्रवाई बड़ी शान्ति से सम्पन्न हुई। इसमें जिन २ वक्ताओं के व्याख्यान हुए, उन सब ने इस आन्दोलन के शान्तिमय स्वरूप का उल्लेख किया। उदाहरण के लिये डॉक्टर किचलू ने अपने व्याख्यान को समाप्त करते हुए कहा था:—

"आप लोगों को चाहिये कि आप राष्ट्रीय हित के लिये देश माता की वेदी पर अपने स्वार्थों की बलि दे दें। आपके सामने महात्मा गान्धी का संदेशा पढ़ा गया है, सब देश वासियों को विरोध के लिये तय्यार हो जाना चाहिये। इस का मतलब यह नहीं है कि इस पवित्र नगर में खून की नदियाँ बहें। हमारा विरोध बिलकुल शान्तिमय होना चाहिये। आप अपनी विवेक की आज्ञा पालन करने के लिये तैयार हो जाइये। इसके लिये अगर आपको जेल जाना पड़े, या नज़र बन्द होना पड़े तो इसकी पर्वाह मत कीजिये। किसी को इजा और दुख मत पहुँचाइये। घर को शान्ति से जाइये। इस बाग़ में घूमिये। पुलिस के आदमी अथवा किसी विश्वासघातक के प्रति कटु वचन मत बोलिये, जिससे कि उसको दुःख हो और आगे चल कर शान्ति भङ्ग होने का अवसर आवे।"

उपरोक्त वाक्यों से पाठकों को उक्त नेता के मनोभावों का पता लग सकता है। आपको यह ज्ञात हो सकता है कि डॉक्टर किचलू का उद्देश्य कितना पवित्र और अहिंसात्मक था। पर पंजाब के तत्कालिक लाट् बहादुर ओडवायर साहब को तो भारत में उड़नेवाली हवा तक में राजविद्रोह और उत्पात के परमाणु दिखलाई पड़ते थे। हड़ताल की अपूर्व सफलता से उनका बचा खुचा खून भी सूख गया। वे इस शान्तिमय आन्दोलन में भयङ्कर उत्पात के

चीज देखने लगे। आपने तत्काल डॉक्टर सत्यपाल की तरह डॉक्टर किचलू को भी सार्वजनिक व्याख्यान न देने की तथा अमृतसर म्युनिसिपेलिटी की हद से बाहर न जाने की तथा किसी समाचार पत्र में परोक्ष वा अपरोक्ष रूप से लेख लिखने की मनाई कर दी। पण्डित कोटमल, स्वामी अभयानंद, और पंडित दीनानाथ के लिये भी जनाब बहादुर ओडवायर साहब की तरफ से ऐसे ही हुक्म निकले। इन आज्ञाओं के कारण जनता के चित्त पर बहुत बुरा असर हुआ। यद्यपि भारत वर्ष की जनता शान्ति प्रिय है, पर मनुष्य स्वभाव से यह बाहर नहीं। किसी स्वाधीनता विरोधक अथवा अपमान जनक आज्ञा से अन्यों की तरह नहीं तो कुछ न्यूनाधिक रूप से उसके चित पर असर होना साहजिक है। पर इस वक्त भी जनता ने अविचल शान्ति से काम लिया। उसने अपनी ओर से शान्ति भङ्ग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। ६ अप्रेल को अमृतसर में महात्मा गाँधी जी के आदेशानुसार सम्पूर्ण हडताल हुई। इस दिन जो सभा हुई उसमें तो जनता मानों समुद्र की तरह उमड पडी। अमृतसर के इतिहास में उसने ऐसा अपूर्व दृश्य और उत्साह कभी न देखा होगा, जितना कि ६ अप्रेल को या उसके बाद में होने वाली सभाओं में देखा गया। इन सभाओं की मनोवृत्तियों को सूक्ष्म परीक्षण करने से मालूम होता था मानों राष्ट्रकी आत्मा में अब जागृति के चिन्ह दिखाई देने लगे हैं। ६ अप्रेल की सभा में सरकारी अन्दाज से ५०००० मनुष्य थे। मि० बदरुल इस्मालखाँ ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। इस सभा में सरकार से प्रार्थना की गई थी कि ये डॉक्टर किचलू और सत्यपाल के बारे में जो हुक्म निकले हैं उन्हें रद करदे। इस सभामें कितने नर्म भाषण

हुए थे यह बात नीचे लिखे हुए ऊद्धृत अंशों से मालूम होगी।

उनके (डॉक्टर किचलू और सत्यपाल) खिलाफ़ केवल यही दोष है कि उन्होंने रौलेट पेक्ट का सच्चा स्वरूप जनता को समझाया । प्रेसिडेन्ट ने अपने भाषण के अन्त में कहा था–

"गत रविवार के दिन से भी आज की सभा अधिक सफलता और अपूर्व समारोह के साथ हुई। अपने विचारों को प्रकट करने का आपका उद्देश सफल हुआ है। इस वक्त लोगों को अपने मनोविकारों को तेज नहीं करना चाहिये। शान्ति से काम लेना चाहिये। महात्मा गांधी का उपदेश है कि इस युद्ध में हम शान्ति से दु:ख और कष्ट सहें, और अपने आप को उपद्रवमय साधनों का तथा कटुता का व्यवहार करने से रोकें। सत्य की आखिरकार विजय होगी। झूठको हार मानना होगा। अगर आप मनकी शान्ति को बनाये रखेंगे धीरज और सहन शीलता से काम लेंगे तो इस सभा का विशाल प्रभाव होगा। पर अगर थोड़ा भी उत्पात होगया, अगर दो आदमी भी शान्ति छोडकर आपस में लडपडे तो इसका बुरा परिणाम होगा। इसलिये आप महाशयों से प्रार्थना है कि आप बडी शान्ति के साथ बिना किसी जुलूस के इस सभा से लौटें।"

९ अप्रेल सन् १९१९ के दिन जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, रामनवमी का त्यौहार था। इस दिन नेता गण हिन्दू और मुसलमानों का भ्रातृभाव और भी दृढ़ रूप में देखना चाहते थे।। यद्यपि रामनवमी धार्मिक त्यौहार है पर मुसलमानों के हिस्सा लेने से इसे राष्ट्रीय महत्व भी प्राप्त हो गया। इस दिन बडा आलिशान जुलूस निकला। जुलूस के साथ हजारों हिन्दू और मुसलमान थे। डॉक्टर किचलू

और डॉक्टर सत्यपाल ने भी जुदे जुदे स्थानों से इस दर्श-नीय जुलूस को देखा था। अपने इन दो नेताओं का दर्शन कर जनता आनंद से उछल पड़ती थी, और जय घोष से आकाश को गुंजा देती थी। अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर ने भी इस विशाल जुलूस को देखा था। उन्होंने भी अपने कानों से जनता को " सम्राट् की जय " करते हुए सुना था। यह जुलूस शान्ति पूर्वक निकल गया। किसी प्रकार का उत्पात नहीं हुआ।

सर मायकेल ओडवायर जैसे और और प्रजा द्रोही शासक के बजाय अगर उस समय पंजाब में कोई सहृदय और उदार अन्तः करण का शासक होता तो वह अपने प्रान्त में राष्ट्रीय आत्मा की इस जागृति को देखकर अवश्य प्रसन्न होता। पर वहाँ तो थे जनाब बहादुर सर माइकेल ओडवायर उन्हें यह बात कब पसन्द होने वाली थी। वे इस राष्ट्रीय समारोह को देखकर आग बबूला हो गये। उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे सोचने लगे कि मेरे कड़े हुक्मों से लोगों का नर्म होना तो दूर रहा वे अधिक साहसी होते जाते हैं। इसलिये उसी समय जब कि समारोह शान्ति पूर्वक हो रहा था, उन्होंने डॉक्टर किचलू और डॉक्टर सत्यपाल को निर्वासन (Deportation) की आज्ञा दी। अमृतसर के डिप्टी कमि-श्नर ने इन दोनों देश भक्तों को बुलाकर यह हुक्म उन्हें दे दिया। इसके बाद वे मोटर में बैठाकर किसी अनिश्चित स्थान में भेज दिये गये। यह ख़बर बिजली की तरह सारे शहर में फैल गई। लोगों पर मानों वज्र गिर पड़ा। तत्काल लोगों का समूह इकट्ठा होने लगा। यह समूह शोक मग्न लोगों का था। इकट्ठे होने वाले सब लोग प्रायः नंगे सिर

और नंगे पैर थे। इनके हाथ में शस्त्रों की तो बात ही क्या पर लकड़ियां भी नहीं थीं। लोगों का यह समूह डिप्टी कमिश्नर साहब के बंगले पर अपने प्रिय नेताओं को छोडने की प्रार्थना करने जा रहा था। यह झुंड अमृतसर की खास खास सडकों पर से होता हुआ तथा नेशनल बैंक, टाउन हाल, और क्रिश्चियन हाल की इमारतों के पाससे गुज़रता हुआ डिप्टी कमिश्नर साहब के बंगले पर पहुंचना चाहता था। इस वक्त तक इस झुन्ड ने बड़ी शान्ति से काम लिया पर आगे जाकर फ़ौजी (Picket) के द्वारा रेल्वे पुल के पास यह झुन्ड आगे बढ़ने से रोक दिया गया। झुंड में के लोगों ने कहा कि हम डिप्टी कमिश्नर के पास फ़र्याद करने जा रहे हैं। हमें जाने दीजिये। क्यों रोक रहे हैं? पर इनकी एक न सुनी। यह समूह जबरदस्ती आगे बढ़ने लगा। ज्योंही यह आगे बढ़ने लगा कि फ़ौजी सिपाहियों ने इस पर गोलियाँ चलादीं। इस समूह के कुछ आदमी मारे गये और कुछ जखमी हुए। अब तो यह समूह जो बिलकुल शान्ति धारण किये हुए था अशान्त हो गया। यह क्रोध से बावला सा हो गया। यहाँ यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि फ़ौजी सिपाहियों ने गोलियाँ चलाकर एक शान्तिमय समूह को अशान्तिमय उपद्रवी समूह में परिणत कर दिया। मिलिटरी के इस दया हीन बर्ताव से यह समूह आपे से बाहर होगया। ज्योंहीं यह ख़बर शहर में पहुंची कि फ़ौज ने लोगों के शान्तिमय झुंड पर गोलियाँ चलाई और कितने ही आदमी मरगये, त्योंहीं अन्य लोगों के समूह के समूह भी उस झुंड में आ मिले। गोलियों से मारे गये तथा घायल लोगोंको देखकर शहर निवासियों की शान्ति भङ्ग हुई। ये बड़े मस्त हुए

थोड़ेही देर में एक बड़ा भारी झुंड फिर रेलवे पुलकी ओर चला इस वक्त यह झुंड लकड़ियाँ आदि लिये हुए था। इस वक्त रेलवे की दो पुलों पर फौजी पहरा बैठा हुआ था। इसी बीच में वकील लोग यह हुल्लड़ सुनकर बाहर आये। और उन्होंने शान्ति स्थापित करने के कार्य में डिप्टी कमिश्नर को अपने आप हो कर सहायता देने का वचन दिया। उन्होंने डिप्टी कमिश्नर से कहा कि इस कार्य में हम आपकी सहायता करने के लिये तैयार हैं। डिप्टी कमिश्नर ने इन लोगों को शान्ति स्थापित करने के लिये बीच में गिरने की आज्ञा देदी। इन वकीलों से अमृतसर पोलिस के डेप्युटी पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट मि० पोमर ने कहा कि एक बड़ा भारी झुण्ड रेलवे यार्ड की तरफ़ गया है। इस पर कुछ वकील रेलवे यार्ड की तरफ़ गये और कुछ पुल के पास ही बने रहे। वकीलों ने जाकर रेलवे यार्ड के पास के झुंड को समझा बुझा कर बिखेर दिया। पर रेलवे पुल के पास स्थिति कुछ बेढब हो गई। वहां के झुँड को मिस्टर सलेरिया और मि० मक़बूल महम्मद शान्तिपूर्वक बिखर जाने के लिये समझा रहे थे और साथही में वे अधिकारियों से गोलियां न चलाने के लिये प्रार्थना कर रहे थे। सफलता के कुछ चिन्ह दिखाई देने लगे थे कि झुँड में से कुछ लोगों ने फ़ौज पर पत्थर फेंके। इस पर फ़ौज ने तुरन्त गोलियां चला दीं। इससे झुँड में के बीस आदमी मर गये और बहुत से घायल हुए। झुंड को समझाने वाले उक्त दोनों सज्जन गोलियों की मार से करीब करीब बच गये। फौजी अफ़सर ने इस बात पर दुःख प्रकट किया कि उक्त दोनों सज्जनों के झुँड में होते हुए गोलियां चला दीं। मिस्टर मक़बूल महम्मद सिव्हिल हास्पिटल में गये और डॉक्टर धनपतराय को बुला लाये। पर मिस्टर प्लोमर

ने उक्त डॉक्टर साहब को यह कह कर लौटा दिया कि लोग अपना प्रबन्ध आप कर लेंगे। कुछ घायल डॉक्टर केदारनाथ के मकान पर लाये गये। डॉक्टर केदारनाथ ज़नाने अस्पताल के पास ही रहते हैं। कहा जाता है कि मिसेस एसडेन नाम्नी एक अँग्रेज़ महिला घायलों को देखकर हंसी और कहने लगी कि हिन्दू और मुसलमानों को उनके योग्य पुरस्कार मिला। इसपर लोगों को बड़ा क्रोध आया और वे ज़बरदस्ती अस्पताल में घुसकर मिसेस एसडन को ढूंढने लगे। पर इस वक्त मिसेस एसडन को मिसेस बेंजामिन ने छुपा रखा था। इससे वह इस झुँड के पंजे से बच गई। क्रोध से पागल हुए झुँड ने एलायन्स बेन्क पर हमला किया और जब उसके मैनेजर मिस्टर थामसन ने झुँड पर रिव्हाल्वर से गोली चलाई तो वह और भी पागल हो गया और उसने मिस्टर थामसन को मार डाला। इतनाही नहीं उनके शरीर को बाहर फेंककर उसे बेंक के सामान से जला दिया। सर्जन्ट रोलेण्ड को जनता के क्रुद्ध हुए झुँड ने रिगोपुल के पास मार डाला। टाउन हॉल पोस्ट आफ़िस और मिशन हाल जला दिये गये। भगतनवाला स्टेशन का एक हिस्सा भी जला दिया गया। चारटर्ड बेंकपर भी हमला किया गया। पर उसे विशेष नुक्सान नहीं पहुँचा। उक्त बेंक के हिन्दुस्तानी नौकरों ने स्थिति को बचा लिया। मिस शेरवुड नामक अँग्रेज़ महिला पर जो सायकल पर चढ़ कर जा रही थीं, क्रूरता पूर्वक हमला किया गया। पर एक विद्यार्थी के पिता ने उसकी इस आफ़त से रक्षा की। इस झुँड में निःसन्देह कुछ बदमाश थे जो मौक़ा देखकर लूट खसोट से अपना मतलब बनाना चाहते थे। यहां हम यह भी कह देना चाहते हैं कि बेंक का कुछ माल पुलिस के लोगों के पाससे

भी बरामद हुआ। १० अप्रेल के पांच बजे के पहिले पहिले लूट खसोट आदि नाशक कार्य का अन्त हो गया था।

यहां यह कह देना आवश्यक है कि अमृतसर के प्रिय नेताओं का निर्वासन का समाचार सुनकर अमृतसर का जनता को क्रोध आ रहा था। क्योंकि यह निर्वासन बिलकुल अन्याय पूर्ण था। जनता का यह क्रोध फ़ौज के गोलियाँ चलाने से और भी अधिक हो गया। जलती आग में घी डालने की कहावत चरितार्थ हुई। पर यहां यह तो कहना ही पड़ेगा कि अधिकारियों ने अपने सहानुभूति हीन बर्ताव से जनता को उकसित होने का मौक़ा दिया। जनता शान्ति से कार्य कर रही थी कि उस पर गोलियाँ चलाई गई। साथही में हम जनता की ज़्यादतियों की भी निंदा किये बिना नहीं रह सकते। उन्होंने कुछ निर्दोष अँग्रेज़ों को जान से मारने का तथा एक अबला स्त्री पर हमला करने का पाप किया। महात्मा गांधी ने अधिकारियों के भीषण अत्याचारों के साथ साथ अमृतसर की कांग्रेस में जनता द्वारा की गई ज़्यादतियों की भी तीव्र निंदा की और इस विषय का प्रस्ताव पास करवाया।

इन अपराधों के लिये अगर हमारे अधिकारीगण न्याय बुद्धि से काम लेते और अपराधियों को उचित दण्ड देते तो हमें कोई एतराज़ नहीं था। पर दुःख की बात है कि अधिकारियों के मन में बदला लेने की कुत्सित बुद्धि घुस गई। वे न केवल अपराधियों ही को, पर हज़ारों निरपराधियों को ऐसी क्रूर निर्लज्ज और अपमान जनक सज़ा देने में उतारू हो गये जिसे देखकर साक्षात शैतान को भी शर्म आजावे। उन्होंने भय का वैसा भयानक साम्राज्य स्थापित करना चाहा जिससे कोई भी हिन्दुस्तानी किसी भी अँग्रेज़ के सामने आंख उठा कर भी न

सके। एक जिम्मेदार फौजी अफसर ने तो यहाँ तक कह
ा कि एक अँग्रेज के बराबर १००० हिन्दुस्तानियों की
ी है। इसका मतलब यह है कि प्रति अँग्रेज की जान के
े १००० हिन्दुस्तानियों को ससार से उठा दिया जाय तो
ई हानि नहीं। कुछ अफसर सारे अमृतसर नगर को मशीन
न से उड़ा देने की स्कीमें सोचने लगे। पर पीछे जाकर ये
ताव रोकने पड़े। क्योंकि यह सोचा गया कि सिक्खों के
हरी मंदिर को बिना चोट पहुँचाये नगर पर गोलाबारी
ीं की जा सकती। और जहाँ सिक्खों के मन्दिर को चोट
ुची कि धर्म के नाम पर मरने वाले सिक्खों में बड़ी अशान्ति
ा जायगी और ऐसा बलवा मच जायगा जिसे सभालना भी
ठिन हो जायगा। यद्यपि कुछ बुद्धिमानों की राय मानकर
थानीय अधिकारियों ने नगर पर गोलाबारी करने के प्रस्ताव
ा गिरा दिया पर बदला लेने की आग उनमें ज्यों की त्यों
ुलगती रही। ११ अप्रैल को बदला लेने की नीति का अवल
बन कर नगर की बिजली और जल का सम्बन्ध तोड़ दिया।
बेजली के बिना तो काम चल सकता है पर जल के बिना
नता की कैसी दुर्दशा हुई होगी इसे उसका भगवान ही
जानता है। जब तक मार्शल ला आरम्भ नहीं हुआ तब तक
गर में से जल और बिजली का सम्बन्ध तोड़ दिया गया। ११
प्रप्रैल के सुबह १० तारीख को फौज की गोलियों से मरे हुए
लोगों के शवों को अन्त्येष्टि क्रिया के लिये स्मशान में ले जाना
था। ज्योंही अधिकारियों ने यह सुना कि शवों के साथ हजारों
आदमी जाने वाले हैं त्योंही डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट ने यह हुक्म
जारी किया —

, The troops have orders to restore order in

Amritsar and to use all force nccessary. No gatherings of persons nor processions of any sort will be allowed. All gatherings should be fired on. Respectable persons should keep indoars untill order is restored. Dead may be carried out for burial or burning by parties of not more than eight" अर्थात् फ़ौजों को हुक्म है कि वे सब आवश्यक शक्ति लगाकर अमृतसर में शान्ति स्थापित करे। लोगों को झुंड बनाने की या किसी प्रकार के जुलूस निकालने की मुमानियत है। अगर लोग इकट्ठे होकर झुंड बनावेंगे तो उनपर गोलियां चलाई जावेंगी। जब तक शान्ति स्थापित न हो तब तक भले आदमी घर के अन्दर रहें। मृत मनुष्यों के शव के साथ स्मशान या कबरस्तान में आठ आठ आदमियों से ज़्यादा न जावें।" इस हुक्म से अमृतसर के लोगों के दिल में सख़्त चोट लगी। नगर के कुछ सुप्रतिष्ठित सज्जन डिप्टी कमिश्नर से मिले। और उन्होंने बड़ी मुश्किल से इस आज्ञा में कुछ संशोधन करवा लिया। जहां पहले शव के साथ जाने के लिये केवल आठ आदमियों की आज्ञा थी, वहाँ इस संशोधन के अनुसार, कुछ बेढ़ब शर्तों को लेते हुए २००० आदमियों की आज्ञा हो गई।

बात यह है कि अधिकारियों में बदला लेने का भाव विष से भी अधिक तीव्र हो रहा था। उनकी मनोवृत्तियां बड़ी कलुषित हो रही थीं। वे मौक़ा ही देख रहे थे कि ज़रा सा कारण मिला कि गोलियां चलाई जावें। लोगों ने अधिकारियों की आज्ञा का पालन किया। और उन्होंने अधिकारियों को ज़रासा भी मौक़ा न दिया जिससे उन्हें गोली चलाने का बहाना मिल जाये। जालंधर से अमृतसर को सैनिक सहायता आ पहुँची।

शाम को जालंधर का कमांडिंग आफ़िसर जनरल डायर भी आ पहुँचा। डिप्टी कमिश्नर ने नगर का शासन उक्त जनरल डायर को सौंप दिया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि डिप्टी कमिश्नर का यह काम कानून के खिलाफ़ था। बेकानूनी जमाव (unlawfull assembly) को भङ्ग करने के लिये ज़ाप्ता फ़ौजदारी (Criminal procedure) के अनुसार डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट को यह अधिकार है कि वह सैनिक सहायता ले। पर सैनिक अधिकार में नगर का शासन देने की बात कहीं नहीं है। अस्तु हम इस विषय पर अधिक लिखने के लिये असमर्थ हैं। कानून के विशारदों का यह काम है और उन्होंने इस विषय पर अच्छा प्रकाश भी डाला है।

१२ अप्रेल सन् १९१९ को जनरल डायर अपनी फ़ौज के साथ शहर में घूमा और उसने कोई एक दर्जन आदमियों को इस शक में गिरफ़्तार किया कि उन्होंने दङ्गे में हिस्सा लिया है। इस पर भी लोगों ने किसी तरह का विरोध या क्रोध प्रकट नहीं किया। तारीख १२ तक इस प्रकार की कोई घोषणा शहर में नहीं की गई थी कि यह शहर मार्शल ला के अन्दर आ गया है और इस पर अब मुल्की अधिकारियों की बजाय फ़ौजी अधिकारियों का शासन रहेगा। १३ तारीख को सुबह के वक्त जनरल डायर, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, तहसीलदार और कुछ पुलिस अफ़सरों के साथ शहर के कुछ हिस्सों में घूमा और उसने कुछ स्थानों पर यह घोषणा करवाई:——

(१) आम लोगों को सूचित किया जाता है कि अमृतसर का कोई निवासी निज के या किराये के वाहन (convey ance) में निम्न लिखित अफ़सरों से पास प्राप्त किये बिना शहर से बाहर न निकले।

(अ) अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर।
(ब) मि० जे० एफ० रेहिल पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट अमृतसर
(स) मि० वेकेट असिस्टेन्ट कमिश्नर अमृतसर
इनके अतिरिक्त और ६ अफ़सरों की सही थी।

(२) शहर में रहने वाला कोई भी पुरुष रात के आठ बजे के बाद घर छोड़कर बाहर न निकले। अगर कोई आदमी आठ बजे के बाद सड़क पर मिलेगा तो वह गोली से मार दिया जायगा। कोई भी ऐसा जुलुस या जमाव जिसमें चार आदमी होंगे बेकानून समझा जावेगा और वह आवश्यकता पड़ने पर शस्त्रों की शक्ति से बिखेर दिया जायगा।

इस घोषणा पत्र की जानकारी नगर में बहुत कम लोगों को हुई। जनरल डायर ने भी हंटर कमेटी के सामने जो गवाही दी, उससे भी प्रगट होता है कि घोषणा पत्र का ज्ञान अधिकांश लोगों को न होने पाया। ऐसी दशा में लोग अगर कोई सभा करते तो इसमें उन बेचारों का क्या दोष है। इसके अलावा त्योहार की वजह से हज़ारों लोग बाहर से आये हुए थे, जिन्हें इस घोषणा का तनिक भी ज्ञान नहीं था। इसके अलावा एक लड़का टिन का डिब्बा बजा कर जल्याँवाले बाग़ में सभा होने की घोषणा कर रहा था। इसे किसीने नहीं रोका, क्योंकि जनरल डायर और उसके साथी तो भारतवासियों के खून के प्यासे थे। वे मौक़ा ही देख रहे थे कि हमें क़त्ले आम का थोड़ा सा भी बहाना मिल जावे। बेचारे लोगों को यह ख़याल भी नहीं था कि हमारे साथ ऐसा सुलूक किया जावेगा। जल्यान वाले बाग़ में लोग जमने लगे। उनमें अधिकांश लोग ऐसे थे जिन्हें जनरल डायर के फ़रमान का कुछ भी इल्म नहीं था। छोटे छोटे बच्चे जोकि उक्त बाग़ के पास खेल रहे थे, जल्यान

वाले बाग़ की सभा में जा बैठे। कोई पचीस हज़ार आदमियों का जमाव इकट्ठा होगया। शहर से आये हुए सैकड़ों आदमी भी उसमें मौजूद थे। खुद पंजाब सरकार अपनी रिपोर्ट में प्रकाशित करती है:—

"There were a considerable number of peasants present at the Jalianwalla Bagh meeting of the 13th but they were therefar other than the political reasons? " अर्थात् जल्यानवाले बाग़ में की सभा में बहुत बड़ी तादाद में किसान लोग भी जमा हुए थे, पर उनके जमा होने के कारण राजनैतिक न होकर कुछ और ही थे।

जब से जनरल डायर अमृतसर आया तभी से वह अपनी फ़ौज सगठित करने में लगा हुआ था, क्योंकि उसके जिस्म में बदला लेने की आग जोर से धधक रही था। तारीख १३ को १२। बारह बजे के अन्दाज पर डायर को जल्यानवाले बाग़ में सभा होने की इत्तला मिली। वह आग बबूला हो गया। वह अपनी फ़ौज को इकट्ठा कर सङ्गठित करने लगा। इस कायर हत्यारे जनरल को यह भी शर्म नहीं आई कि बिचारी निःशस्त्र जनता पर गोली चलाने से उसकी क्या बहादुरी प्रगट होगी। इसमें तो वह दुनियाँ की आँखों में महा कायर और नीच समझा जायगा। कोई चार बजे के अन्दाज में अमृतसर के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० रेहिल जनरल डायर के पास आये और जनरल से जल्यानवाले बाग़ की सभा का हाल कहा। जनरल अपनी सशस्त्र फौज लेकर (जिसमें ४० गुरखा जो Kurkris से सुसज्जित थे, २५ गुरखा और पचीस सिक्ख जिनके पास राइफलें थीं) जल्यानवाले बाग़ की तरफ रवाना हुआ। वह ऐसी तैयारी से रवाना हुआ,

मानो वह किसी सशस्त्र परम प्रबल शत्रु से लड़ने जारहा हो। हमें तो इस कायर डायर को जनरल या सिपाही कहते भी लज्जा आती है। यह पाँच बजे के अन्दाज पर उक्त बाग के पास पहुँचता है और सैनिक व्यूह की ऐसी रचना करता है, मानों इसे जर्मनों से युद्ध करना हो। इस हत्यारे जनरल ने वहाँ पहुंच कर निःशस्त्र प्रजाकी किस क्रूरता से हत्या की, इसका उल्लेख हम उसी के शब्दों में नीचे लिखते हैं —

हंटर कमेटी के सामने इससे जो सवाल जवाब हुए, उनका अनुवाद हम ज्यों का त्यों नीचे प्रकाशित करते हैं।

लार्ड हंटर—मैं समझता हूँ तुम जल्यानवाले बाग में जाने वाले तंग रास्ते से घुसे?

जनरल—हां।

लार्ड हंटरः—शायद तुमने अपनी मोटर गाडियां पीछे छोड़ दीं?

जनरल—हां

लार्ड हंटर—kurkris से सुसज्जित गुरखा लोग तुम्हारे साथ थे कि वे पीछे छोड दिये गये थे?

जनरल—वे बाग में साथ आये थे।

लार्ड हंटरः—तब तुम्हारे साथ ४० तो गुरखा थे और पचीस पचीस आदमियों के सशस्त्र दो कालम थे?

जनरल—हां

लार्ड हंटर—जब तुम बाग में घुसे तब तुमने क्या किया?

जनरल—मैंने गोलियां चलाना शुरू की।

लार्ड हंटरः—क्या एक दम?

जनरल—हां, एकदम, मैंने ३० सेकण्ड (आध मिनट) में झट पट विचार कर गोलियां चलाने का हुक्म दे दिया।

लार्ड हंटरः—बाग़ में जमा हुआ समूह क्या कर रहा था ?

जनरलः—वहां लोग सभा कर रहे थे। बीचमें एक उठे हुए ऊंचे स्थान पर एक आदमी खड़ा था। वह अपने हाथ, घुमाता हुआ दीख पड़ता था। वह व्याख्यान दे रहा था।

लार्ड हंटरः—क्या उस सभा में उस आदमी के व्याख्यान देने के अतिरिक्त और भी कुछ हो रहा था ?

जनरलः—नहीं, मैं इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देख सका।

लार्ड हंटरः—जब तुम इस भुंड को बिखेरने लगे तो क्या उस वक्त वह भुंड कुछ करने को उतारू हुआ ?

जनरलः—नहीं साहब, लोग इधर उधर भागने लगे।

लार्ड हंटरः—उस समय तक मार्शल ला जारी नहीं हुआ था। अतएव क्या तुमने इस जोखिम भरे (Serious step) काम को करने के पहिले डिप्टी कमिश्नर से, जो कि मुल्की अधिकारी थे और जिन पर नगर की शान्ति का जिम्मा था, सलाह लेना ठीक नहीं समझा।

जनरलः—वहां उस समय डिप्टी कमिश्नर नहीं थे, जिनसे कि मैं सलाह लेता। मैंने इस सम्बन्ध में इसके आगे किसीसे सलाह लेना मुनासिब भी नहीं समझा।

लार्ड हंटरः—गोलियां चलाने से क्या तुम्हारा यह अभिप्राय था कि तुम झुण्ड को बिखेर दो ?

जनरलः—नहीं साहब, मैं तब तक गोलियां चलाने वाला था जब तक कि भुंड बिखर न जाय।

लार्ड हंटरः—क्या तुम्हारे गोलियां चलाते ही भुंड बिखरने लग गया ?

जनरलः—जी हां तुरन्त।

लार्ड हंटरः—क्या फिर भी तुम गोलियां चलाते ही रहे ?

जनरलः—हां।

लार्ड हंटरः—जब तुमने भुंड के बिखरने के चिन्ह देख लिये, तब फिर तुमने गोलियां चलाना बंद क्यों नहीं किया ?

जनरलः—मैंने अपना यह कर्तव्य समझा कि जब तक भुंड पूरी तरह न बिखर जाय, तब तक गोलियां चलाता रहूँ। अगर मैं थोड़ी देर तक गोलियां चला कर बंद रह जाता तो मेरा गोलियां चलाना न चलाना बराबर हो जाता।

लार्ड हंटरः—तुम कितनी देर तक गोलियां चलाते रहे ?

जनरलः—दस मिनिट तक।

लार्ड हंटरः—क्या सभा में बैठे हुए लोगों के पास लकड़ियां थीं ?

जनरलः—मैं नहीं कह सकता कि उनके पास लकड़ियां थीं। मेरा अनुमान है कि थोड़े लोगों के पास लकड़ियां होंगी।

लार्ड हंटरः—आप ने यह ख़याल किस मुद्दे पर कर लिया, कि अगर तुम लोगों को बाग़ छोड़ने का हुक्म देते, तो तुम्हारे गोली चलाये सिवा और वही लगातार कितने ही देर तक चलाये सिवाय नहीं छोड़ते ?

जनरलः—हां, मेरा ख़याल है कि यह बिलकुल सम्भव था कि बिना गोली चलाये सिवाय भी मैं भुंड को बिखेर देता।

लार्ड हंटरः—तुमने इसी उपाय का क्यों नहीं अवलम्बन किया ?

जनरलः—वे सब वापस लौट कर आते और मेरी तरफ़ हंसते, और इस तरह मैंने अपने आपको बेवकूफ़ बनाया होता।

लार्ड हंटरः—क्या भुंड बहुत ही ज़्यादा (Dense) था।

जनरलः—हाँ बहुत ही ज़्यादा (Dense) था।

लार्ड हंटर— क्या तुमने घायलों की कुछ सहायता की?

जनरल—नहीं साहब वहां मैंने कुछ सहायता नहीं की। अगर लोग मुझसे बाद में कहते तो मैं कुछ करता। उस वक्त सहायता करने का मेरा काम नहीं था। यह डाक्टरों का काम है।

यहाँ हमने लार्ड हंटर के साथ डायर के जो प्रश्नोत्तर हुए हैं, उन्हीं को दिये हैं। हंटर कमेटी के और सदस्यों के प्रश्नों के उत्तर में डायर ने जो बातें कही हैं उनसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सर सेटलवाड के प्रश्नों का उत्तर देते हुए डायर ने कहा था, कि तंग रास्ता होने के कारण मैं अपनी आरमर कार को भीतर न ले जा सका। अगर रास्ता चौड़ा होता तो मैं उसे भीतर ले जाता और मशीन गन से लोगों पर गोले बर साता। मैं लोगों को पूरी सजा देता। मैं उन्हें ऐसा सबक सिखाता कि वे देखते रह जाते। डायर की गवाही से उसकी राक्षसी करतूत यहीं तक पूरी नहीं होती। जहाँ लोगों का झुंड अधिक डट कर बैठा था वहीं लक्ष्यकर इस राक्षस ने गोलियाँ चलाईं। जब लोगों के झुंड के झुंड भगने लगे तो इस पिशाच ने लक्ष्य करके भगते हुए झुंडों पर गोलियां दागीं। यह दुष्ट तब तक गोलिया चलाता रहा जब तक कि इसके पास का गोला बारूद समाप्त न हो गया। अगर इसके पास अधिक गोला बारूद होता तो न मालुम यह पचीस हजार आदमियों में से एक भी आदमी को जिन्दा छोड़ता या नहीं। इस निर्दई ने भगते हुए मनुष्यों और बच्चों तक पर, दिवाल पर चढ़कर भगने वाले भयभीत मनुष्यों पर, दनादन गोलियां चलाई। मदन जैसे कई सुकुमार बच्चे इस हत्यारे के

शिकार बने। कोई १५००० निर्दोष और निःशस्त्र मनुष्यों की जिस प्रकार हत्या की, वह हृदय दहला देने वाली है। संसार में आज तक जो महा भयानक हत्याकाण्ड हुए हैं उनमें जल्यानवाले बाग़ का हत्याकाण्ड बहुत ऊंचा रहेगा। मि० सी० एफ़० एन्ड्रूज ने इस हत्याकाण्ड की तुलना ग्लेन्को के हत्याकान्ड से की है। आश्चर्य यह है कि पंजाब के तत्कालिक ले० गवर्नर सर माइकेल ओडवायर ने जनरल डायर के इस पाशविक हत्याकाण्ड को पसन्द किया और उसके पास तार भेजा कि लेफ़्टिनेंट गवर्नर तुम्हारे कार्य को पसन्द करते हैं।

१४ अप्रैल को कोई दो बजे के अन्दाज पर स्थानीय प्रतिष्ठित सज्जनों तथा म्युनिसिपल कमिश्नरों आदि की कोतवाली में सभा की गई और उनके सामने कमिश्नर ने निम्न लिखित आशय का व्याख्यान दिया.—

"तुम लोग युद्ध चाहते हो या शान्ति। हम हर तरह से तैयार हैं। सरकार सब तरह से शक्तिशाली है। सरकार ने जर्मनी पर विजय प्राप्त की है और वह हर तरह मुस्तैद है। आज जनरल हुक्म देंगे। शहर उनके तावे में है। मैं कुछ नहीं कर सकता। तुम्हें उनका हुक्म मानना पड़ेगा।" इतना कह कर कमिश्नर साहब चले गये। इसके बाद जनरल डायर अपने साथियों के साथ आये। वह और उसके साथी क्रोध से आग बबूला हो रहे थे। उसने उर्दू में एक छोटा सा भाषण दिया जिसका आशय यह है—

"तुम लोग अच्छी तरह जानते हो कि मैं सिपाही हूँ। तुम युद्ध चाहते हो या शान्ति। अगर तुम युद्ध चाहते हो तो उसके लिये तैयार हो जाओ। अगर तुम शान्ति चाहते हो तो मेरा हुक्म मानो और दुकानें खोल दो। अगर ऐसा नहीं करोगे तो

में गोली मार दूंगा। मेरे लिये फ्रान्स का रण मैदान और अमृतसर एकसाही है। मैं फौजी आदमी हूँ और सीधे रास्ते जाने वाला हूँ। अगर तुम युद्ध चाहते हो तो साफ साफ कह दो। अगर तुम शान्ति चाहते हो तो दुकानें खोल दो। तुम लोग सरकार के खिलाफ बोलते हो। जर्मनी और बंगाल में जिन लोगों ने शिक्षा पाई है वे राजद्रोह की बातें करते हैं। मैं इन सब की रिपोर्ट करूंगा। मेरे हुक्म मानो। मैं और कुछ नहीं चाहता। मैंने ३० वर्ष तक फौज में नौकरी की है। मैं हिन्दुस्तानी और सिक्ख सिपाही को खूब समझे हूँ। तुम्हें शान्ति रखना होगा। अगर तुम दुकानें नहीं खोलोगे तो जबरदस्ती खुलवाई जायेंगी। राइफलों का उपयोग किया जायगा। तुम मुझे बदमाशों का पता बताओ। मैं उन्हें गोली से मार दूंगा। मेरा हुक्म मानो और दुकानें खोल दो। अगर युद्ध चाहते हो तो वैसा कहो।"

इसके बाद डिप्टी कमिश्नर साहब बोले। "अँग्रेज़ों को मार कर तुमने बहुत बुरा किया है। इसका बदला तुमसे और तुम्हारे बच्चों से लिया जायगा।"

१५ अप्रेल को सब दुकानें खुल गई। लोगों को आशा होने लगी कि अब मार्शल ला उठा लिया जायगा और मुल्की शासन शुरू कर दिया जायगा। पर लोगों की यह आशा घोर निराशा में परिणत हुई। अधिकारियों की क्रोध ज्वाला अब भी शान्त नहीं हुई थी। ९ जून तक मार्शल ला का कठोर एवं निर्दय शासन बना रहा। अमृतसर के लोगों को हर प्रकार का पाशविक कष्ट दिया जाने लगा। उनका अपमान किया जाने लगा। इसके कुछ नमूने देखिये।

(१) जिस सड़क पर मिस शेरवुड पर हमला किया गया

ा वह गली लोगों को कोड़े मारने के लिये तथा उन्हें पेट के ल रेंगने के लिये काम में लाई गई।

(२) हर एक आदमी न केवल अँगरेज़ अफ़सरों ही से पर हर एक अँग्रेज़ से सलाम करने पर बाध्य किया गया।

(३) छोटे छोटे अपराधों पर भी खुले आम कोड़ों की कड़ी सज़ा दी जाने लगी।

(४) सब वकील बिना किसी कारण के स्पेशल कान्स्टेबल बनाये गये और उनसे मामूली कुलियों का.सा काम लिया जाने लगा।

(५) बिना किसी अपराध ही के बहुत से लोग गिरफ़्तार किये जाने लगे और हवालात में रखे जाने लगे। उनके साथ अमानुषिक बर्ताव किया जाने लगा। उन्हें भयङ्कर यातनाएँ दी जाने लगी।

(६) असाधारण अदालतें (Special Tribunels) नियुक्त की गईं। इनमें जैसा न्याय होता था, वह हमारे पाठकों पर प्रगट ही है।

अब हम इन बातों का कुछ खुलासा करना चाहते हैं। जनरल ने क्रालिंग आर्डर याने पेट के बल रेंगने का हुक्म फ़रमाया था। जिस गली में मिस शेरवुड पर हमला किया गया था, उस गली में आने जाने वाले हिन्दुस्तानियों को पेट के बल रेंग कर जाना पड़ता था। दिखलाने में तो जनरल डायर का यह हुक्म था कि दोनों हाथ और घुटने टेक कर उस गली में से आवागमन किया जाय पर इसका अमल दूसरी तरह से होता था। उक्त गली में रहने वाले मनुष्यों को उस गली में से होकर आना जाना पड़ता था तो कीड़ों की तरह उनको पेट के बल रेंगना पड़ता था। इस गली की

लम्बाई १५० गज थी। किसी किसी मनुष्य को इतने लंबे फासले तक पेट के बल रेंगकर जाना पड़ता था। यह गली बड़ी घिनौनी (Dirty) थी। कहीं कहीं मैला भी पड़ा रहता था ऐसी हालत में हमारे भाइयों को उसमेंसे पेट रगड़कर गुजरना पड़ता था। क्या इस अपमान का कुछ ठिकाना है ?

बड़े बड़े सुप्रतिष्ठित सज्जनों को इस प्रकार पेट के बल रेंग कर उस गली में से गुजरना पड़ा। जिनके मकान उस गली में थे और आने जाने के लिये दूसरा रास्ता नहीं था, उनके वास्ते किसी जरूरी काम के अर्थ बाहर जाने के लिये पेट के बल रेंगने के सिवाय दूसरा चारा ही नहीं था। यह मुसीबत यहीं तक पूरी नहीं होती थी। कई रेंगने वालों को सिपाहियों के बूटों की ठोकरें और घुस्से भी खाने पड़ते थे। कांग्रेस सब कमेटी के सामने अमृतसर के अफीम ठेकेदार लाला रैलेराम ने जो गवाही दी, वह इस प्रकार है —

इस गली में एक जैन मन्दिर है जिसमें उस समय कुछ जैन साधु रहते थे। लाला रैलेराम का मकान उक्त मन्दिर के पास था। जब वह अपनी दुकान पर जाता था तब उसे पेट के बल रेंग कर जाना पड़ता था। वह कहता है मैं पेट के बल रेंग कर गली से जा रहा था कि उन्होंने बूटों से मुझे ठोकरें मारी और संगीनों के ठोसे (Blows) दिये उस दिन भोजन करने तक के लिये मैं घर नहीं गया पूरे आठ दिन तक एक भी भंगी टट्टी साफ करने के लिये नहीं आया। पानी भरने के लिये भी इन दिनों कोई नहीं आता था।" लाला गणपतराय अपनी गवाही में कहते हैं कि उन लोगों को भी जो जैन मंदिर में पूजा करने के लिए जाते थे पेट के बल रेंग कर जाना पड़ता था। लाला देवीदास बैंकर अपनी गवाही

में कथन करते हैं कि "मैंने इस गली से हाथ पैरों के बल जाना चाहा, पर मुझे संगीन दिखाया गया और मैं पेट के बल, चलने को विवश किया गया।" कहानचन्द नामक एक मनुष्य जो बीस वर्ष से अन्धा है, पेट के बल गिंडोले की तरह चलाया गया और ऊपर से ठोकरों से भी पीटा गया। इस प्रकार पचासों निर्दोष आदमियों की दुर्गति हुई और घोर अपमान किया गया। अब दूसरे राक्षसी और पाशविक अत्याचारों को देखिये।

इसी गली में आम रास्ते पर एक मंच बनाया गया था, जहां बेचारे कई अभागे हिन्दुस्तानी भाई नंगे कर कोड़ों से पीटे जाते थे। पाठक, आप यह न सोचिये कि ये बेचारे किसी अपराध के कारण पीटे गये थे, नहीं, अगर कोई फ़ौजी अफ़सर या अंगरेज़ से सलाम करने में गलती करता तो कभी कभी उस अभागे को सरे-आम यह भीषण यन्त्रणा सहनी पड़ती थी मियां फिरोज़ुद्दीन ऑनरेरी मजिस्ट्रेट ने कांग्रेस-जाँच-सब कमेटी के सामने गवाही देते हुये कहा था:—

"मि० प्लोमर और जनरल को सलाम करते समय अगर कोई खड़े नहीं होते तो उन्हें कोड़ों की सजा मिलती। इससे लोग इतने भयभीत हो गये थे कि बहुतसे तो सारे दिन खड़े रहते जिससे कि उनसे किसी प्रकार की गलती होने न पावे और उन्हें ऐसी सजा न भुगतना पड़े।"

कोड़ों की सजा (Flogging) केवल घोर अपमान जनक ही नहीं थी किन्तु यह अत्यन्त निर्दयता और पाशविकता से भी भरी हुई थी। जिन लोगों को यह सजा दी जाती थी उनके हाथ टिकटिकी से बाँध दिये जाते और फिर उन्हें नंगे कर उनके जिस्म पर भर ताकत कोड़े पड़ते। हर एक के

तीस तीस कोड़े उड़ते । सुन्दरसिंह नामक एक आदमी चौथे कोड़े के बाद बेहोश हो गया। उसके मुँह में एक सिपाही ने जल छिड़का जिससे उसे फिर होश आ गया। फिर उसके कोड़े उड़ने लगे। वह बिलकुल बेहोश हो गया। उसकी बेहोशी की इन दुष्टों ने कुछ परवाह न की और जब तक तीस का नम्बर पूरा न हुआ उसके कोड़े पड़ते ही गये। उसके बुरी तरह खून बहने लगा। जब वह मंच से उतारा गया तब वह बिलकुल बेहोश था। दूसरे लड़कों को भी इसी पाशविक निर्दयता से कोड़ों से पीटा। बेहोश हो जाने पर भी-खून के बहते रहने पर भी, इन अभागों को वे राक्षस कोड़ों से भूँडते रहते थे। यह निर्दयता-यह पाशविक दुष्टता-यहीं तक पूरी न हुई। अगर कोड़ों की इस निर्दय मार से कोई इतना निर्बल और निःसत्व हो जाता कि वह चल नहीं सकता तो पुलिस उसे घसीट कर ले जाती। कहाँ तक इस राक्षसी निर्दयता की, भयङ्कर कहानी कहें हमारी तो लेखनी कांपने लगती है और आँखों के सामने काले पीले आने लगते हैं। कई अभागे इस क्रूर निर्दयता से बचने के लिए सैनिक अफसरों से प्रार्थना करते, दण्ड देने पर उतारू होते और जेल की सजा भुगतने के लिए तैयार हो जाते पर ये राक्षस इनकी एक न सुनते और इनके नंगे बदन पर सरे आम इतने कोड़े लगाते कि ये बेहोश हो जाते थे और उनके खून बहने लगता था। ठंडे जल से इन्हें होश में लाकर फिर कोड़े लगाये जाते। कई दुबले पतले लड़कों को भी इसी राक्षसी तरह से पीटा गया। जब जनरल डायर से पूछा गया कि सरे आम यह कोड़ों की सजा क्यों दी गई, तब वह दुष्ट क्या जवाब देता है कि "अरानकों पर अच्छा प्रभाव जमाने के लिए।" दूसरा साहब

कर्नल फ्रेन्क जानसन हंटर कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहता है कि कोड़ों की यह सज़ा तो सबसे अधिक दयालुता पूर्ण है। इसने कहा कि जेल की सज़ा से तो कोड़ों की सज़ा अच्छी है क्योंकि जेल तो बहुत आराम की जगह है।

कहाँ तक कहा जावे भयङ्कर अत्याचर किये गये। कहीं कहीं तो लोगों के गुदा द्वार में पत्थर तक ठोके गये। श्रीमती सरोजनी नायडू के "यंग इन्डिया" में प्रकाशित एक पत्र से मालूम होता है कि कई भारतीय स्त्रियों को वस्त्रहीन कर उनके साथ ऐसा लज्जा दायक व्यवहार किया गया कि जिससे शैतान भी सहम जावे। लोगों से झूठी गवाहियाँ दिलाने के लिये उन पर घोर अत्याचार किये गये। एक उदाहरण लीजिये। सेठ गुलम-हम्मद नाम का एक काँच का व्यापारी २० तारीख को गिरफ्तार हो गया। उससे झूठी गवाही देने के लिये कहा गया। इन्स्पेक्टर जवाहिरलाल ने उसकी दाढ़ी पकड़ कर ऐसे ज़ोरसे थप्पड़ मारी कि उसके होश उड़ गये। उससे कहा गया कि इस प्रकार की झूंठी गवाही दे। "डाक्टर सत्यपाल और डाक्टर किचलू ने ६ तारीख को हड़ताल करने के लिये मुझे उसकाया उन्हों ने मुझसे कहा कि अंग्रेज़ों को देश से निकालने के लिये वे बम का उपयोग करेंगे"। सेठ गुल महम्मद ने इस प्रकार की भयंकर और झूठी गवाही देने से इनकार किया। इस पर कुछ कान्स्टेबल उसे अफ़सर की टेबल से कुछ दूर ले गये और उन्हों ने उसे जवाहिरलाल के कहे मुताबिक झूठी गवाही देने के लिये बहुत कुछ समझाया, पर उसने फिर भी ऐसा करने से इनकार किया। इस पर उन कान्स्टेबलों ने खटिया के पाये के नीचे उसका हाथ रखा और उस खटिया पर आठ आदमी बैठ गये। जब उसके हाथ में बहुत दर्द होने लगा तब यह

बुरी तरह चिल्लाने लगा, और कहने लगा मेरा हाथ छोड़ दो जो कुछ कहोगे मैं करने के लिये तैयार हूँ। इसके बाद उक्त कान्स्टेबल उसे जवाहिरलाल के पास ले गये, वहाँ उसने फिर वैसी झूँठी गवाही देने को साफ़ इनकार कर दिया। अतएव वह एक बद कोठरी में रक्खा गया। दो दिन तक वह बेतों से, थप्पड़ों से खूब पीटा गया। उसे यहाँ तक धमकी दी कि अगर वह ऐसी गवाही न देगा तो आरोपी बनाकर फाँसी पर लटका दिया जायगा। आठ दिन तक लगातार उस पर मार पड़ती रही। आठवें दिन बहुत तंग आकर वह झूठी गवाही देने को मंजूर हुआ। फिर वह मेजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किया गया, जहाँ उसने "असत्य बयान" जैसा उसे कहा गया था दिया। पर पीछे जाकर तारीख १६ जून को जब वह फौजी अदालत के सामने उपस्थित किया गया तब उसने सब पोल खोल दी। लाला रैलेराम से जो कि पेन्शनर हैं कहा गया कि मिस शेरवुड पर हमला करने वालों के नाम बताओ। उन्होंने जवाब दिया कि मैं कुछ नहीं जानता क्योंकि उस मौके पर मैं उपस्थित नहीं था। इस पर वे बेंतों से पीटे गये, और उनकी कुछ दाढ़ी उखाड़ली गई। कहाँ तक कहें झूठी गवाहियाँ दिलाने के लिये लोगों पर ऐसे ऐसे भयङ्कर अन्याचार किये गये, उन्हें ऐसी ऐसी महा भीषण यन्त्रणाएँ दी गई कि जिन्हें लिखते हुए भी हमारे शरीर को कँपकँपी छूट जाती है!

——.०:——

लाहौर में अत्याचार।

रॉलेट ऐक्ट के खिलाफ़ विरोध की ज्वाला जो सारे देश में फैल गई थी, मुमकिन नहीं कि उसका असर लाहोर पर न गिरे, मानवी स्वाधीनता का नाश करने वाले इस ऐक्ट से विरोध प्रगट करने के लिये ६ अप्रैल को सारे हिन्दुस्थान की तरह लाहोर ने भी मातम के रूप में हडताल की थी। लोगों ने अपना सब कारोबार बंद किया था। हजारों लोगोंने इस दिन महात्मा गांधी की आज्ञानुसार उपवास किया था। सैकडों नर नारी नंगे पैर नदी पर स्नान करने गये थे। वापस आते वक्त इन लोगों का एक भारी जुलूस बन गया था। जुलूस बडी शान्ति और पूर्ण व्यवस्था से निकला था। इस वक्त पुलिस ने भी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। पर जब यह जुलूस माल (Mall) की ओर जाने लगा, तब पुलिस ने इसे पोस्ट ऑफिस से परे जाने को रोका। पुलिस ने लाला दुनीचन्द, डाक्टर गोकुलचन्द आदि नेताओं की सहायता ली और उनके द्वारा जुलूस को वापिस लौटा दिया।

सर माइकेल ओडवायर किस प्रकार के शासक थे, इसका विवेचन कुछ न कुछ ऊपर आ चुका है। उन्हें किसी प्रकार का आन्दोलन पसन्द नहीं था। वे तो दिल में यह चाहते थे कि जो कुछ सरकार करे, चाहे अनुचित हो या उचित प्रजा उसे हाथ जोड कर मंजूर करे। जब वे प्रजा या सरकार के किसी कार्य के खिलाफ़ विरोध देखते थे तो आग बबूला हो जाते थे। उनके मिजाज़ का पारा ११२ डिग्री से भी अधिक

बढ जाता था । उन्होंने भीतर ही भीतर परोक्ष रीति से (Indirectly) बडी कोशिश की जिससे हडताल न हो। पर जब उन्हों ने देखा कि ६ अप्रेल को पजाब की राजधानी खास लाहोर में सम्पूर्ण हडताल है, तब तो उनको बेचैनी सी हो गई । उन्हों ने कहकर जता दिया कि इस हडताल कराने के अपराध का बदला नेताओं को अवश्य मिलेगा । कुछ भी हो तारीख ६ की शाम को लाहोर के ब्रडला हाल में जैसी अपूर्व सभा हुई, वैसी लाहोर में देखी नहीं गई। सैकडों नहीं हजारों मनुष्यों से उक्त हाल खचाखच भरा हुआ था। बडा ही चित्ताकर्षक दृश्य था । सर माइकेल ओडवायरने सी० आई० डी० के सुप्रिन्टेन्डेन्ट को इस सभा के लिए खास तोर से भेजा था । इस सभामें जो व्याख्यान हुए उन में रॉलेट ऐक्ट के खिलाफ यद्यपि जोरदार आवाज उठाई गई थी, पर उनमें राजद्रोहात्मक कुछ भी नहीं था । हम नहीं समझते कि उन व्याख्यानों में से किसी व्याख्यान के किसी अंश का ऐसा मतलब निकाला जा सकता है जिसमें बलवा करने का सङ्केत हो ।
यह सभा शान्ति पूर्वक हो गई । इस के बाद ७ और ८ अप्रेल के दिन भी शान्ति से बीत गये। ७ वीं अप्रेलको राम नवमीका त्योहार अमृतसर की तरह लाहोर में भी खूब धूम धाम और समारोह के साथ मनाया गया। यह त्योहार राष्ट्रीय त्योहार के रूप में परिणत कर डाला गया । इसके उपलक्ष्य में एक महान जुलूस निकाला गया जिसमें कई अफसर भी मौजूद थे १० तारीख तक भी शान्ति रही पर मालूम नहीं इन शान्ति के दिनों में भी सर माइकेल ओडवायर के दिल में शान्ति थी या नहीं । उन्हें जब मालूम हुआ कि डॉक्टर सत्यपाल ने महात्मा गाधी को सत्याग्रह का उपदेश देने के लिये अमृतसर

निमन्त्रित किया है और सन्यासी श्रद्धानन्द जी के निमन्त्रण को स्वीकार कर वे बम्बई से दिल्ली की ओर रवाना भी हो गये हैं, तो तुरन्त उन्हों ने श्रीमान् वाईसराय की मंजूरी ले कर उनका पंजाब प्रवेश रोक दिया, और पंजाब सीमा के भीतर के पहिले ही स्टेशन पर उन्हें गिरफ्तार कर बम्बई लौटा दिया। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी और नजरबन्दी की खबर सिविल मिलिटरी गजट के द्वारा प्रकाशित हुई। विद्युत वेग की तरह सारे शहर में यह खबर फैल गई। बिना किसी सङ्गठन ही के सारे शहर की दुकानें बन्द हो गई। कुछ नागरिक एक जुलूस बना कर माल (Mall) की तरफ जाने लगे। अनारकली तक पहुंचते पहुंचते तो इस जुलूस ने अत्यन्त विशाल रूप धारण कर लिया। हजारों लोग इसमें आ मिले। पर जनता जानती थी कि ६ अप्रेल को पुलिस ने जनता को माल (Mall) की तरफ जाने से रोका था। अतएव इस जुलूस के बहुत से लोग फॉरमन क्रिश्चियन कालेज के पास ठहर गये। तीनसो चारसो मनुष्यों में जिनमें कई विद्यार्थी भी शामिल थे माल की ओर गवर्नमेण्ट हाउस तक बढ़ने का और सरकार से महात्मा गान्धी जी की मुक्ति के सम्बन्ध में प्रार्थना करने का निश्चय किया। जब यह बात पुलिस के कानों तक पहुंची तो पुलिस का एक दल मौके पर पहुंचा और उसने लोगों के झुंड को घेर लिया। उसे आगे बढ़ने से पुलिस रोकने लगी। झुंड ने पुलिस की कुछ उपेक्षा की। इस पर गोली चलाने का हुकम दे दिया गया। दो या तीन आदमियों की जानें गई। कई आदमी जखमी हुए। झुन्ड पीछे हटने लगा। मृत और जखमी आदमियों को पुलिस उठाकर ले गई। घायलों के लिये डॉक्टरों की सहायता तक नहीं दी गई। इस झुन्ड का

पुलिस धकेलती २ अनारकली के रास्ते से लाहोरी दरवाजे तक ले आई। यहाँ आकर पुलिस इस झुन्ड को पूरी तरह से तितर बितर करना चाहती थी। इसी बीच में लाहोर के सुप्रसिद्ध नेता मौके पर आ पहुँचे। पुलिस ने उनको झुन्ड को बिखेर देने के लिये कहा। उन्हों ने अपनी ओर से पूरी तौर से कोशिश की, पर उनकी आवाज झुन्ड के सब मनुष्यों तक नहीं पहुँच पाती थी। अतएव उन्होंने एक ऊंची जगह पर खड़े होकर लोगों को समझाना शुरू किया। इसी बीच में पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट बहुत व्यग्र हो रहे थे। डिप्टी कमिश्नर साहब भी इसी मौके पर वहाँ आ पहुँचे। प० रामभजदत्त चौधरी डिप्टी कमिश्नर के पास गये और उनसे कुछ अवधि देने की प्रार्थना की जिससे कि वे झुन्ड को समझा बुझा सकें। डिप्टी कमिश्नर ने पंडितजी को केवल दो मिनट का समय दिया। पंडितजी ने कहा दो मिनट बहुत कम होते हैं। इतने थोड़े अर्से में मैं इतने बड़े झुन्ड को कैसे समझा सकूंगा। डिप्टी कमिश्नर मि० फैइसन्(Fyson) ने एक न सुनी और उन्होंने पंडितजी से साफ साफ कह दिया कि अगर दो मिनिट में झुन्ड नहीं बिखरा तो मैं गोली चलाने की आज्ञा दे दूंगा। बेचारे पंडितजी इतने थोड़े से अर्से में करही क्या सकते थे। उन्होंने झुन्ड को उपदेश देना शुरू किया। उन्हें आंशिक सफलता भी हुई। पर इतने ही में दो मिनट बीत चुके। डिप्टी कमिश्नर साहब तो अपने बचन के सच्चे थे। मजाल क्या कि दो के सवा दो मिनट भी हो जायँ। उन्होंने दो मिनट के पूरे होतेही गोली चलाने का हुक्म दे दिया। दनादन गोली चली। कुछ आदमी मरे और बहुत से घायल हुए। झुन्ड बिखर गया पर लोगों के

चित्त पर इसका बहुत ज़हरीला असर पड़ा। निःशस्त्र जनता पर गोली चलाने की आवश्यकता थी या नहीं, बिना गोली चलाये झुन्ड बिखर सकता था या नहीं आदि कई बातों पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे। यहाँ हम केवल मुख्य मुख्य घटनाओं को देना चाहते हैं।

जो लोग गोलियों से मरे अथवा घायल हुए उन्हें उनके कुटुम्बियों को सौंपने में भी अधिकारियों ने इनकार किया। इससे लोगों के चित्त को और भी बुरा मालूम हुआ। जलेपर नमक छिड़कने की कहावत चरितार्थ हुई। इससे ११ तारीख़ को भी लाहौर में सम्पूर्ण हड़ताल रही। नेताओं ने अधिकारियों से बड़ा अनुरोध किया कि मृतक और घायल उनके घरवालों को सौंप दिये जावें, पर उनकी एक नहीं सुनी गई। अधिकारी केवल हड़ताल तुड़वाने पर ज़ोर देते रहे। ११ अप्रेल को बादशाही मसजिद में एक बड़ी भारी सभा हुई जिसमें हड़ताल तुड़वाने का विचार किया गया। पर कुछ नतीजा नहीं निकला।

इसके बाद फिर नेताओं की और डिप्टी कमिश्नर साहब की मुलाक़ात हुई जिसमें नेताओं ने इस सम्बन्ध में एक और सभा करने की इच्छा प्रकट की और यह प्रार्थना की कि सभा के स्थान पर पुलिस न रखी जावे। मि० राममजदत्त जो चौधरी का कहना है कि डिप्टी कमिश्नर साहब ने यह बात स्वीकार करली। इसके अनुसार बादशाही मसजिद में बहुत भारी सभा हुई। पर इस सभा में भी कुछ निश्चय न होने पाया, और यह बिखर गई। लोग ज्योंहीं घर जाने लगे कि फ़ौज ने उन पर गोलियाँ चला दी। फ़ौज की ओर से यह कहा गया कि स्थिति ने हमें गोलियाँ चलाने के लिये मजबूर किया

क्योंकि झुँड बहुतही बेतहाशा (Defiant) हो गया था अगर यह बात सच है कि डिप्टी कमिश्नर मिस्टर फाईस (Feyson) ने फौज या पुलिस को सभा स्थान पर न रख का अभिवचन दिया था, तो यह कहा जा सकता है कि गोल चलाने की बात तो दूर रही पर वहाँ फौज की उपस्थिति ह अन्याय मूलक थी। इस वक्त भी कुछ आदमियों के प्राण गये इससे भी लोगों का क्रोध और भड़क गया, और नेताओं क लिये स्थिति सभालना महा दुस्साध्य कार्य हो गया। नेता गए आपस में मिलकर स्थिति पर विचार करने लगे। अधिकारियों का रुख दिन प्रति दिन ज्यादा कठोर होने लगा, यहाँ तक कि इस सम्बन्ध में कई नेताओं से मिलने तक में इनकार करने लगे। हड़ताल अबतक जारी ही थी। लोगों ने कई भोजनालय (free restaurants) खोल दिये जिनमें उन ग़रीब लोगों को मुफ्त भोजन मिल जावे जिन्हें हड़ताल आदि के कारण अनाज आदि न मिल सका हो। इनमें कई महानुभावों ने सहर्ष चन्दा दिया था। होते होते १५ तारीख हो गई। १६ तारीख को डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर ने लाला हरकिशन लाल, लाला दुनीचद, प० रामभजदत्त चौधरी आदि गणमान्य और सुप्रतिष्ठित नेताओं को बुलाया। किस लिये बुलाया, यह जानने के लिये हमारे पाठक अवश्य उत्सुक होंगे। ये महानुभाव मेल या कोई समझौता करने के लिये नहीं बुलाये गये। देश निकाले का हुक्म सुनाने के लिये बुलाये गये। तुरन्त इन्हें देश निकाले पर जाने का हुक्म हुआ। इनके देश निकाल के थोड़ ही अर्से बाद लाहौर में मार्शल ला (फ़ौजी शासन) शुरू कर दिया गया। डिप्टी कमिश्नर ने मार्शल ला जारी करने का कारण यह बतलाया कि इससे हड़ताल टूट जायगी। कर्नल

जॉनसन ने तो हंटर कमेटी के सामने यहां तक कहा कि अगर लोग दुकानें नहीं खोलते तो मैं उन दुकानों को फ़ौजी चार्ज में दे देता, और जबरदस्ती सामान बिकवा देता। दुकानें खोलने के लिये सूचना देदी गई थी, और कुछ व्यापारियों को घोर अपमान सहकर फ़ौजी दवाव के कारण दुकानें खोलनी पड़ी। हड़ताल जारी रखना उचित था या अनुचित, इस पर कुछ न कहकर यहाॅ इतना अवश्य कहना चाहिये कि हड़ताल करना या दुकानें बंद करना कोई फौजदारी गुनाह नहीं है, पर किसी से जबरदस्ती और शस्त्र शक्ति का डर बतला कर दुकानें खुलवाना दर असल फौजदारी गुनाह है। क्या सरकार भी इस बात को अस्वीकार कर सकती है कि अपनी तकलीफों को दूर करने के लिये शस्त्र उठाने या अन्य कोई पाशविक उपाय स्वीकार करने के बजाय शान्ति-मय हड़ताल करना हजार दर्जे अच्छा है।

कर्नल जॉनसन ने हंटर कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा कि लाहौर में फ़ौजी शासन शुरू करने की इसलिये आवश्यकता थी कि जिससे बलवे की आग पंजाब के अन्य जिलों में न फैलने पावे। पर हम नहीं समझते कि उक्त कर्नल ने लाहौर में " बलवा " सिद्ध करने के लिये कोई दृढ़ प्रमाण दिया हो। लाहोर में लोगों के द्वारा कोई अत्याचार(Violence) नहीं किया गया। किसी के जान माल पर हमला नहीं किया गया। हां, बादशाही मसजिद के सामने कुछ लोग खुफिया पुलिस के एक अफ़सर से खराब ढङ्ग से पेश आये। इतनी खफीफ बात पर ही अगर फौजी शासन शुरू कर दिया जायगा तो उसका मूल्य ही क्या रहेगा। यह प्रति दिन की वस्तु हो जायगी फिर तो अगर किसी बदमाश ने जहाॅ किसी पुलिस वाले को

आदमियों को सजा दी। जेलखाने की सजा, बड़े बड़े जुर्माने की सजा के अतिरिक्त इन कोर्टों से ८०० कोड़ों का हुक्म हुआ। यह सजा ६६ आदमियों में विभक्त की गई। ज्यादा से ज्यादा तीस और कम से कम पांच कोड़े तक एक एक आदमी को लगाये गये। इन लोगों के तब तक सरे आम कोड़े लगते रहे जब तक कि सरे आम कोड़े न लगाने का ऊपर से हुक्म न आगया। बिलकुल खफीफ कारणों पर कोड़ों की यह महा कठोर सजा दी जाती थी। इस के पहिले डाक्टरों से यह परीक्षा तक नहीं करवाई जाती थी कि कौन मनुष्य कितने कोड़े बरदाश्त कर सकता है। इतना ही नहीं जस्टिस रैंकिन के प्रश्न के उत्तर में कर्नल ने साफ शब्दों में यह कहा था कि कोड़ों की सजा सब सजाओं में सबसे अधिक दयालुता पूर्ण है। जेल तो असाधारण रूप से सुभीते का स्थान है। सेन्ट्रल जेल में अच्छी तरह से खाने को मिलता है। अगर सब आदमियों को जेल दी जाती तो मुझे डर है, जेल ठसाठस भरजाती। एक दूसरी जगह पर इस कर्नल ने कहा कि "कोड़े लगाने की सजा का मूल्य १००० सोलजरों के बराबर है।" पाठक फौजी शासन के अधिकारियों के दिमाग कितने चढ़े हुए थे और उनकी मानसिक स्थिति कितनी कलुषित हो रही थी, इसका अन्दाज़ा कर्नल के उपरोक्त वाक्यों से कर सकते हैं।

इसने कई बड़े बड़े प्रतिष्ठित और गण्यमान्य लोगों को गिरफ्तार कर उनकी ऐसी ऐसी दुर्दशा की कि जिससे इसकी पाशविक वृत्ति का और मार्शल लॉ की भयङ्कर स्थिति का पता लगता है। मि० मनोहरलाल एम० ए० ने कांग्रेस की जाच कमेटी के सामने जो बयान दिये हैं, वे पढ़ने लायक हैं।

इसके सिवा इस कर्नल ने लोगों को दुख देने का एक नया उपाय निकाला। जिन्हें यह कर्नल भले आदमी नहीं समझता

था उनके घरके दरवाज़े पर नोटिस चिपकवा देता और घर वालों को यह सूचना कर देता कि इस नोटिस की रक्षा के तुम लोग जिम्मेदार हो। अगर नोटिस में किसी प्रकार की फूट टूट हुई तो इसके ज़िम्मेदार घरवाले समझे जाकर उन्हें कठोर दण्ड दिया जायगा। इसका मतलब यह हुआ कि चौबीस घण्टे घरवाले उस नोटिस की रखवाली किया करें। कुछ कॉलेजों के भवनों पर भी उसने ऐसे ही नोटिस चिपकवा दिये थे और उनके लिये विद्यार्थियों को और सारे के सारे स्टाफ़ को जिम्मेदार कर दिया था। सनातन धर्म कॉलेज पर भी इस प्रकार का एक नोटिस लगाया गया था। इसमें तो सन्देह नहीं, कि वह किसी एक मनुष्य ने फाड़ डाला होगा, पर बहादुर कर्नल ने इसके लिये उस कॉलेज के ५०० विद्यार्थियों को और प्राय. सब प्रोफ़ेसरों को गिरफ़्तार कर लिया। इतनाही नहीं, इन विद्यार्थियों और प्रोफ़ेसरों को फ़ौज की निगरानी में फ़ोर्ट तक (जोकि उक्त कालेज से तीन मील के फ़ासले पर है) जाने पर मजबूर किया। इस वक्त गरमी की कड़ी मौसिम थी और सूर्य भगवान अत्यन्त प्रखरता के साथ तप रहे थे। ऐसी स्थिति में सिर पर बिस्तर लेकर इन ५०० विद्यार्थियों को और सब प्रोफ़ेसरों को फोर्ट तक जाना पड़ा था और दो दिन तक वहां हिरासत में रहना पड़ा था। मज़ा यह कि हंटर कमेटी के सामने जब इस कर्नल से पूछा गया था कि क्या तुम्हारा यह कृत्य न्यायपूर्ण था, तब इसने बड़ी अकड़ के साथ कहा था "जी हाँ, बिलकुल न्याययुक्त था।" इतनाही नहीं इसने यहां तक कहा था कि अगर मौक़ा पड़ा तो मैं फिर भी ऐसाही करूंगा। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि कर्नल ने यह उत्तर तब दिया था जब इस बातको छः मास बीत चुके

आदमियों को सज़ा दी। जेलखाने की सज़ा, बड़े बड़े जुर्माने की सज़ा के अतिरिक्त इन कोर्टों से ८०० कोड़ों का हुक्म हुआ। यह सज़ा ६६ आदमियों में विभक्त की गई। ज्यादा से ज्यादा तीस और कम से कम पांच कोड़े तक एक एक आदमी को लगाये गये। इन लोगों के तब तक सरे आम कोड़े लगते रहे जब तक कि सरे आम कोड़े न लगाने का ऊपर से हुक्म न आगया। बिलकुल ख़फ़ीफ़ कारणों पर कोड़ों की यह महा कठोर सज़ा दी जाती थी। इस के पहिले डाक्टरों से यह परीक्षा तक नहीं करवाई जाती थी कि कौन मनुष्य कितने कोड़े बरदाश्त कर सकता है। इतनाही नहीं जस्टिस रैंकिन के प्रश्न के उत्तर में कर्नल ने साफ़ शब्दों में यह कहा था कि कोड़ों की सज़ा सब सज़ाओं में सबसे अधिक दयालुता पूर्ण है। जेल तो असाधारण रूप से सुभीते का स्थान है। सेन्ट्रल जेल में अच्छी तरह से खाने को मिलता है। अगर सब आदमियों को जेल दी जाती तो मुझे डर है, जेल ठसाठस भरजाती। एक दूसरी जगह पर इस कर्नल ने कहा कि "कोड़े लगाने की सज़ा का मूल्य १००० सोलजरों के बराबर है।" पाठक फ़ौजी शासन के अधिकारियों के दिमाग़ कितने चढ़े हुए थे और उनकी मानसिक स्थिति कितनी कलुषित हो रही थी, इसका अन्दाज़ा कर्नल के उपरोक्त वाक्यों से कर सकते हैं।

इसने कई बड़े बड़े प्रतिष्ठित और गणमान्य लोगों को गिरफ्तार कर उनकी ऐसी ऐसी दुर्दशा की कि जिससे इसकी पाशविक वृत्ति का, और मार्शल लॉ की भयङ्कर स्थिति का पता लगता है। मि० मनोहरलाल, एम० ए० ने कांग्रेस की जांच कमेटी के सामने जो बयान दिये हैं, वे पढ़ने लायक हैं।

इसके सिवा इस कर्नल ने लोगों को दुःख देने का एक नया ढंग निकाला। जिन्हें यह कर्नल भले आदमी नहीं समझता

निवासियों पर ज़रा ज़रा सी बात पर राक्षसी अत्याचार किये। जिन लोगों ने बड़ी शान्ति के साथ इसके कठोर शासन की आलोचना की, जिन लोगों ने जान कर या बेजान कर उसका जारी किया हुआ Curfew Order तोड़ा उन्हें पब्लिक के सामने इस दुष्ट ने कोड़ों की सज़ा दी। उसने एक नोटिस जारी किया जिसमें उसने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि अगर उसकी फौज पर कहीं से एक भी बम गिरा तो यह समझा जायगा कि उस स्थान से सौ गज़ की परिधि तक में रहने वाले सब लोगों ने इसे गिराया और वह इन सबों को हुक्म देगा कि वे अपने घरों को खाली कर दें। इसके बाद वह इस परिधि के सब मकानों को नष्ट भ्रष्ट (Demolish) कर देगा।

कर्नल जॉनसन ने शहर के कोई ८०० तांगे अपने कब्ज़े में कर लिये, और २०० तांगों को तो उसने तबतक अपने तावे में रखे जब तक कि फौजी शासन जारी रहा। हिन्दुस्तानियों की जितनी मोटर गाड़ियां थी, वे सब की सब उसने अपने कब्ज़े में लेली। उसने सब मुफ्त भोजनालय (लंगरखाने) बंद करवा दिये। अनाज के भाव नियमित कर दिये। जिन लोगों के पास बन्दूक आदि शस्त्र रखने के लायसेंस थे वे प्रायः सब रद्द कर दिये और सब लोगों की बन्दूकें प्रभृति शस्त्र जमा करवा लिये। उसने डिप्टी कमिश्नर के हुक्म को प्रोत्साहन दे कर बादशाही मसजिद बंद करवा दी और हुक्म दे दिया कि जब तक उसके ट्रस्टी यह मंजूर न करलें कि उसमें कोई हिन्दू पैर न रखने पायगा तबतक वह न खोली जा सकेगी।

उसने समरी कोर्ट्स (Summary Courts) खोलीं। उसने स्वयं २७७ आदमियों पर मुक़द्दमा चलाया जिनमें से २०१

थप्पड़ मारदी कि झट फौजी शासन शुरू कर दिया जायगा। कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला जिससे यह सिद्ध होता हो कि लाहौर के किसी नेता का सम्बन्ध किसी षड्यन्त्र (Conspiracy) या बाहरी संगठन (Organization) के साथ हो। यहां तक कि इस वक्त अमृतसर और लाहौर का भी कोई सम्बन्ध नहीं था। लाहौर के लोगों का वैयक्तिक हित शान्ति रखने में था, और वह उन्होंने रखी भी। लाहौर में फौजी भाव (Martial spirit) भी नहीं है, अतएव यह कहना पड़ेगा कि लाहौर में मार्शल ला का जारी करना न तो न्याययुक्त था और न उससे सिवाय भयङ्कर नुक़सान के किसी प्रकार का लाभ ही हुआ। लाहौर की राजभक्त प्रजा को यह भयङ्कर दण्ड व्यर्थ ही दिया गया।

लाहौर का फ़ौजी शासन ५ अप्रेल से लगा कर २६ मई तक कर्नल जानसन के हाथ में था। इसने इस वक्त जैसे जैसे अत्याचार किये उससे कलेजा कॉप जाता है। इसने लाहौर की राजभक्त जनता पर यह आरोप लगाया कि वह श्रीमान् सम्राट् के खिलाफ युद्ध करना चाहती थी। पर इस कर्नल ही ने हंटर कमेटी के सामने यह स्वीकार किया कि लोगों ने कभी शस्त्रों का उपयोग नहीं किया। जिनके पास शस्त्र थे उन्होंने न तो आपही उनका उपयोग किया और न दूसरों ही से करवाया। फिर हम नहीं समझते कि लाहौर की जनता क्या घास के तिनकों को लेकर श्रीमान् सम्राट् की महा प्रबल शक्ति के सामने युद्ध करती। यह बात हम भारतवासियों की मोटी बुद्धि में तो नहीं आ सकती। कर्नल जॉनसन जैसे प्रतिभाशाली मस्तिष्क ही इसकी व्याख्या कर सकते हैं। हमें दुःख है कि इस पशु कर्नल ने बिचारे निरपराध लाहौर

निवासियों पर ज़रा ज़रा सी बात पर राक्षसी अत्याचार किये। जिन लोगों ने बड़ी शान्ति के साथ इसके कठोर शासन की आलोचना की, जिन लोगों ने जान कर या बेजान कर उसका जारी किया हुआ Curfew Order तोड़ा उन्हें पब्लिक के सामने इस दुष्ट ने कोड़ों की सज़ा दी। उसने एक नोटिस जारी किया जिसमें उसने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि अगर उसकी फ़ौज पर कहीं से एक भी बम गिरा तो यह समझा जायगा कि उस स्थान के सौ गज़ की परिधि तक में रहने वाले सब लोगों ने इसे गिराया और यह इन सबों को हुक्म देगा कि वे अपने घरों को खाली कर दें। इसके बाद वह इस परिधि के सब मकानों को नष्ट भ्रष्ट (Demolish) कर देगा।

कर्नल जॉनसन ने शहर के कोई ८०० तांगे अपने कब्ज़े में कर लिये, और २०० तांगों को तो उसने तबतक अपने तावे में रखे जब तक कि फ़ौजी शासन जारी रहा। हिन्दुस्तानियों की जितनी मोटर गाड़ियां थीं, वे सब की सब उसने अपने कब्ज़े में लेलीं। उसने सब मुफ़्त भोजनालय (लंगरखाने) बंद करवा दिये। अनाज के भाव नियमित कर दिये। जिन लोगों के पास बन्दूक आदि शस्त्र रखने के लायसेन्स थे वे प्रायः सब रद्द कर दिये और सब लोगों की बन्दूकें प्रभृति शस्त्र जमा करवा लिये। उसने डिप्टी कमिश्नर के हुक्म को प्रोत्साहन दे कर बादशाही मसजिद बंद करवा दी और हुक्म दे दिया कि जब तक उसके ट्रस्टी यह मंज़ूर न करलें कि उसमें कोई हिन्दू पैर न रखने पायगा तबतक वह न खोली जा सकेगी।

उसने समरी कोर्ट स (Summary Courts) खोलीं। उसने स्वयं २७७ आदमियों पर मुक़द्दमा चलाया जिनमें से २०१

आदमियों को सज़ा दी। जेलखाने की सज़ा, बड़े बड़े जुर्माने की सज़ा के अतिरिक्त इन कोर्टों से ८०० कोड़ों का हुक्म हुआ। यह सज़ा ६६ आदमियों में विभक्त की गई। ज़्यादा से ज़्यादा तीस और कम से कम पांच कोड़े तक एक एक आदमी को लगाये गये। इन लोगों के तब तक सरे आम कोड़े लगते रहे जब तक कि सरे आम कोड़े न लगाने का ऊपर से हुक्म न आगया। बिलकुल ख़फ़ीफ़ कारणों पर कोड़ों की यह महा कठोर सज़ा दी जाती थी। इस के पहिले डाक्टरों से यह परीक्षा तक नहीं करवाई जाती थी कि कौन मनुष्य कितने कोड़े बरदाश्त कर सकता है। इतना ही नहीं जस्टिस रेंकिन के प्रश्न के उत्तर में कर्नल ने साफ़ शब्दों में यह कहा था कि कोड़ों की सज़ा सब सज़ाओं में सबसे अधिक दयालुता पूर्ण है। जेल तो असाधारण रूप से सुभीते का स्थान है। सेन्ट्रल जेल में अच्छी तरह से खाने को मिलता है। अगर सब आदमियों को जेल दी जाती तो मुझे डर है, जेल ठसाठस भरजाती। एक दूसरी जगह पर इस कर्नल ने कहा कि "कोड़े लगाने की सज़ा का मूल्य १००० सोलजरों के बराबर है।" पाठक फ़ौजी शासन के अधिकारियों के दिमाग़ कितने चढ़े हुए थे और उनकी मानसिक स्थिति कितनी कलुषित हो रही थी, इसका अन्दाज़ा कर्नल के उपरोक्त वाक्यों से कर सकते हैं।

इसने कई बड़े बड़े प्रतिष्ठित और गणमान्य लोगों को गिरफ़्तार कर उनकी ऐसी ऐसी दुर्दशा की कि जिससे इसकी पाशविक वृत्ति का, और मार्शल लॉ की भयङ्कर स्थिति का पता लगता है। मि० मनोहरलाल एम० ए० ने कांग्रेस की जांच कमेटी के सामने जो बयान दिये हैं, वे पढ़ने लायक हैं।

इसके सिवा, इस कर्नल ने लोगों को दुःख देने का एक नया उपाय निकाला। जिन्हें यह कर्नल भले आदमी नहीं समझता

था उनके घरके दरवाज़े पर नोटिस चिपकवा देता और घर वालों को यह सूचना कर देता कि इस नोटिस की रक्षा के तुम लोग ज़िम्मेदार हो। अगर नोटिस में किसी प्रकार की फूट टूट हुई तो इसके ज़िम्मेदार घरवाले समझे जाकर उन्हें कठोर दण्ड दिया जायगा। इसका मतलब यह हुआ कि चौबीस घण्टे घरवाले उस नोटिस की रखवाली किया करें। कुछ कॉलेजों के भवनों पर भी उसने वैसे ही नोटिस चिपकवा दिये थे और उनके लिये विद्यार्थियों को और सारे के सारे स्टाफ़ को ज़िम्मेदार कर दिया था। सनातन धर्म कॉलेज पर भी इस प्रकार का एक नोटिस लगाया गया था। इसमें तो सन्देह नहीं, कि वह किसी एक मनुष्य ने फाड़ डाला होगा; पर बहादुर कर्नल ने इसके लिये उस कॉलेज के ५०० विद्यार्थियों को और प्रायः सब प्रोफ़ेसरों को गिरफ़्तार कर लिया। इतनाही नहीं, इन विद्यार्थियों और प्रोफ़ेसरों को फ़ौज की निगरानी में फ़ोर्ट तक (जोकि उक्त कालेज से तीन मील के फ़ासले पर है) जाने पर मजबूर किया। इस वक्त गरमी की कड़ी मौसिम थी और सूर्य भगवान अत्यन्त प्रखरता के साथ तप रहे थे। ऐसी स्थिति में सिर पर बिस्तर लेकर इन ५०० विद्यार्थियों को और सब प्रोफ़ेसरों को फ़ोर्ट तक जाना पड़ा था और दो दिन तक वहां हिरासत में रहना पड़ा था। मज़ा यह कि हंटर कमेटी के सामने जब इस कर्नल से पूछा गया था कि क्या तुम्हारा यह कृत्य न्यायपूर्ण था, तब इसने बड़ी अकड़ के साथ कहा था "जी हाँ, बिलकुल न्याययुक्त था।" इतनाही नहीं, इसने यहां तक कहा था कि अगर मौक़ा पड़ा तो मैं फिर भी ऐसाही करूंगा। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि कर्नल ने यह उत्तर तब दिया था जब इस बातको छः मास बीत चुके

की दुर्घटना का हाल खूब बढ़ाकर कहा। इससे लोग बहुत उत्तेजित हो उठे। कुछ हलके दर्जे के लोग जमा होने लगे। वे स्टेशन की ओर बढे और उन्होंने स्टेशन को आग लगाने का प्रयत्न किया। लेम्प रूम में आग लगादी गई। पर इसी बीच में कसूर के कुछ नेता मौके पर आ पहुँचे और उन्होंने आग बुझा दी। इसके बाद लोगों का झुंड Signal Station की ओर गया जहाँ कि एक ट्रेन आकर खड़ी थी। झुंड ने यहाँ कुछ युरोपियनों पर धावा किया पर यहाँ भी मि० गुलाम मोहिउद्दीन प्रभृति नेताओं के आ पहुँचने पर इस झुंड का प्रयत्न सफल न हो सका। इसके बाद नेताओं ने इन युरोपियन लोगों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। ट्रेन यहां से आगे बढ़ी। दो युरोपियन सोलजर उसमें रह गये थे। इन सोलजरों ने समझा कि अब भगनेही में खैर है। वे ट्रेन से नीचे उतरे पर चारों ओर बावला झुंड मौजूद था। इन सोलजरों ने आत्मरक्षा के विशुद्ध भाव से गोलियाँ चलाई। अब तो झुंड आग बबूला होगया। अत्यन्त दुःख और लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि इस बावले झुंड ने उन बेचारे निरपराध सोलजरों को बड़ी निर्दयता से मार डाला। हम जीवदया के उज्ज्वल आदर्शों को सामने रखते हुए इस झुंड के घोर कृत्य को जोर के साथ धिक्कारते हैं, और मानते हैं कि इसने इन निरपराधों की हत्या कर पाशविक कार्य किया। निरपराधों के खून से मत्त होकर यह झुंड रेव्हेन्यू आफिसों की ओर बढ़ा और इन सब पर इसने आग लगा दी। अन्त में पुलिस ने गोलियां चलाकर इस झुंड को बिखेर दिया।

थोड़े ही घन्टों के बाद यह उमड़ा हुआ जनता का जोश शान्त होगया। इससे यह अनुमान करना गलत न होगा कि

जनता का यह जोश किसी आकस्मिकता से इतना बढ गया था। उसके पीछे किसी प्रकार का सुसङ्गठित षड्यन्त्र नहीं था। अधिकारियों ने बिना किसी तकलीफ के बहुत सी गिरफ्तारियाँ कर डाली। अब तक वहाँ के सब डिविजनल अफ़सर एक हिन्दुस्तानी थे। उनकी जगह पर मि० मार्सडन नामक एक अंग्रेज भेजे गये थे। १६ तारीख को वहाँ मार्शल ला जारी कर दिया गया था। मार्शल ला का शासन शुरू शुरू में कर्नल मकरे (Col Macrae) के जिम्मे किया गया। १६ तारीख से कसूर में धर पकड़ शुरू हुई। सारे शहर में मार्शल लॉ की घोषणा की गई। सब से पहिले कसूर के सुप्रसिद्ध वकील मि० धनपतराय गिरफ्तार किये गये। ४६ दिन तक ये बराबर जेल में रखे गये। बाद में ये छोड़ दिये गये। इन्हें यह तक नहीं बतलाया गया कि ये जेल में क्यों रखे गये थे। इसी दिन १६ आदमी और गिरफ्तार किये गये। इसके दूसरे दिन तीन और तीसरे दिन चार गिरफ्तारियाँ हुई। १८ अप्रेल को गिरफ्तारियों का नंबर बहुत बढ गया। इस दिन ४० गिरफ्तारियाँ हुई। सब मिलकर १७२ आदमी गिरफ्तार किये गये। इनमें ६७ छोड़ दिये गये। (Discharged) ५१ अपराधी ठहराये गये। आश्चर्य यह है कि गिरफ्तार किये गये लोगों में मि०गुलाम मोहुद्दीन और मौलवी अब्दुल कादिर प्रभृति वे सज्जन भी थे जिन्होंने स्टेशन पर मि० और मिसेस शेरबोर्न (Mr and-Mrs Sherbourne) की जान बचायी थी, और जिन्होंने जनता को अत्याचार करने से बहुत कुछ रोका था। बहुत से नेताओं के घर की बिना किसी प्रकार का कारण दिखलाये तलाशियाँ ली गई। १ मई सन् १९१९ को कसूर के सब लोग शनाख्त (Indentification) के लिये रेलवे स्टेशन पर जाने के लिये बाध्य

थे और पंजाब के भीषण अत्याचारों के लिये देश में हाहाकार मच चुका था ।

इसने सनातन धर्म कॉलेज की तरह लाहौर के दयानन्द एङ्गलो वैदिक कॉलेज, दयालसिंह कॉलेज और मेडिकल कॉलेज के साथ भी बहुत बुरा सुलूक किया । इसने येनकेन प्रकारेण विद्यार्थियों और प्रोफ़ेसरों को भीषण यन्त्रणाएँ देना शुरू की। इसने हुक्म जारी किया कि उक्त कालेजों के विद्यार्थी किसी निश्चित स्थान पर जाकर चार वक्त अपनी हाजरी लिखावें। बेचारे विद्यार्थियों को चारों वक्त मिलाकर प्रतिदिन १७ माइल का चक्कर काटना पड़ता था । इन अभागों को सूर्य की कड़ी से कड़ी धूप में जाना पड़ता था। इन पर इस समय कैसी बीतती होगी, इस बात को इनका भगवान ही जानता होगा ।

कर्नल ने कई निर्दोष विद्यार्थियों को कॉलेज और स्कूल से निकलवा दिये । कइयों को परीक्षा के लिये जाने से रुकवा दिये। कालेजों के प्रोफ़ेसरों और प्रिन्सिपलों को बुरी तरह से तंग किया । कई विद्यार्थियों को बुरी तरह पिटवाया। कहां तक कहें, इस कर्नल ने लाहौर में भयङ्कर आतङ्क का साम्राज्य (Reign of terror) स्थापित कर रखा था ।

इसने भयङ्कर अत्याचार किये । पाठक जानते हैं कि इस कर्नल का ऐसा हुक्म था कि चार आदमी से ज्यादा जमा होकर सड़क पर न घूमें । विचारे लोगों को यह खयाल न था कि यह हुक्म विवाह की बरात पर भी लागू है । लाहोर में नगर के किसी मोहल्ले में एक बरात निकल रही थी जिसमें दस से ज्यादा आदमी थे। सब बराती और दुलहा गिरफ्तार कर लिये गये और पुरोहित तथा बरातियों को कोड़ों की सज़ा मिली । इससे पाठक मार्शल लॉ में होनेवाले राक्षसी अत्याचारों

का पता लगा सकते हैं। लाहौर प्रभृति नगरों में जो फौजी अदालत बैठी थी, उसमें कई निर्दोष आदमियों को कैसी कैसी भयकर सजायें दी गई थी, उसका उल्लेख हम अगले किसी स्वतन्त्र अध्याय में करेंगे।

कसूर में अत्याचार।

लाहौर जिले में कसूर महत्वपूर्ण कसबा है। यह व्यापार का केंद्र है। यहां की जन सख्या २४००० है। ६ अप्रेल को यहां हडताल नहीं हुई थी। दस तारीख तक यहाँ कोई दुर्घटना नहीं हुई। ११ तारीख को महात्मा गान्धी को पकडे जाने का और डॉक्टर सत्यपाल और किचलू के गिरफ्तार होने का सवाद पहुँचा, इसलिये इस दिन यहाँ कुछ घन्टों के लिये हडताल रही। शाम के वक्त यहाँ सभा हुई। मामूली व्याख्यान हुए। उन में कोई बात ऐसी नहीं थी जो राजद्रोहात्मक हो। सब डिविजनल आफिसर मिस्टर मार्सडन ने हटर कमेटी के सामने यह कहा कि व्याख्याताओं ने ये जवाबदार भाषण दिये और रॉलेट ऐक्ट के मतलब को उसके उचित रूप में नहीं समझाया, इससे जनता में जोश उमड गया।

१२ अप्रेल को इस नगर में पूरी हडताल रही। हॉ, इस दिन लोगों का मिजाज ठीक वैसा नहीं था जैसा कि ११ तारीख को था। इस दिन यह कुछ बिगडा हुआ था। हटर कमेटी के सामने दी हुई कुछ गवाहों के बयानों से मालूम होता है कि यहाँ कुछ आदमी अमृतसर से आये और उन्होंने अमृ- त

असर नहीं रखी। कहा जाता है कि सर माइकेल ओड़वायर के हुक्म से ऐसा किया गया था। पीछे जाकर फांसी देने की ये टिकटिकिया (Gallows) पब्लिक रास्ते से हटा ली गई। गुजरानवाला प्रान्त में अठारह आदमियों को फाँसी हुई। और भी अधिक आदमी फाँसी पर लटकाये जाते, पर धन्यवाद देना चाहिये माननीय मि० मोतीलाल नेहरू को, जिन्होंने स्टेट सेक्रेटरी के पास तार पर तार भेज कर फाँसी की सज़ा रुकवाई। हमें दुःख है कि भारत के भूत पूर्व वाइसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने वार वार प्रार्थनायें करने पर भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। इससे बेचारे कई लोगों की जानें मुफ़्त में गईं।

गुजरानवाला में अत्याचार।

५ अप्रेल को रोलेट ऐक्ट के ख़िलाफ़ विरोध करने के लिए गुजरानवाला में एक महती सभा हुई। सब दलों के लोग इसमें आये थे। व्याख्यान भी बहुत नर्म हुए थे। इस दिन सुबह के वक्त स्थानीय डिप्टी कमिश्नर और पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने सभा के मुखियों को बुलाया और उन्हें बहुत डरा धमका कर सभा न करने का आदेश किया। पर इसमें अधिकारियों को सफलता नहीं हुई। ६ अप्रेल को गुजरानवाला में पूरी हड़ताल हुई। हड़ताल का सब कार्य्य बड़ी शान्ति से हो गया। इस बात का हमें हर्ष है कि स्वयं पंजाब सरकार ने भी इस बात को स्वीकार किया है। इसके बाद एक सप्ताह तक गुजरानवाले में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं हुआ। वहां पूर्ण शान्ति रही। पर जब

डॉक्टर सत्यपाल और किचलू के देश निकाले का-अमृतसर के भीषण हत्याकांड का-लाहोर के निरपराधियों पर गोली चलाये जाने का तथा महात्मा गांधी की गिरिफ़्तारी का सम्वाद पंहुचा, तब वहाँ की स्थिति में कुछ परिवर्तन हो गया। लोगों के भाव उत्तेजित हो गये। लोगों ने फिर हड़ताल करने का विचार किया। पर नेता लोग वहाँ के डिप्टी कमिश्नर कर्नल ओब्रायन के विचारों से परिचित थे। अतएव उन्हें यह डर होने लगा कि हड़ताल करने से शायद यहां भी वह दशा हो जो अमृतसर या लाहोर में हुई है। अतएव वे लोगों को हड़ताल न करने का उपदेश करने लगे। वे बहुत समय तक अपने इस प्रयत्न में सफल भी हुए। तारीख़ १२ को कर्नल ओब्रायन का वहाँ से तबादला हो गया और गुजरानवाले ज़िले के मजिस्ट्रेट और स्थानीय सम्मानित सज्जन डिविज़नल दरबार के लिए लाहौर चले गये। इसी बीच में विविध स्थानों की हड़तालों की, कसूर में होने वाले अत्याचारों की खबर गुजरानवाला पहुँची। इसके अतिरिक्त इस ज़िले के चूहाकना और संगला नामक दो महत्वपूर्ण ग्रामों में हड़ताल होने के समाचार भी पहुँचे। इन ग्रामों के कुछ लोग भी आये और वे गुजरानवाला के लोगों को ऐसे गम्भीर अवसर पर हड़ताल न करने के लिए उलाहना देने लगे। अब हड़ताल होने के चिन्ह दीखने लगे। नेताओं ने बड़ा प्रयत्न किया जिससे हड़ताल न हो, पर वे अपने प्रयत्न में विफल हुये। तारीख़ १४ को गुजरानवाला में पूरी हड़ताल हुई। यह बैसाखी का दूसरा दिन था, जिस दिन कि गुजरानवाला के बहुत से लोग वज़ीराबाद के मेले में जाते हैं। इसलिए इस दिन गुजरानवाला की स्टेशन पर बहुतही भीड़

थी। सैकडों आदमियों का झुंड स्टेशन पर जमा हो गया था। लाहौर ट्रेन सुबह स्टेशन पर आ पहुँची। सैकडों आदमी बैठने के लिए ट्रेन की तरफ दौडे। ट्रेन खचाखच भर गई उसमें तिल रखने की भी जगह नहीं रही। इससे बहुत से आदमी फुट बोर्ड पर खडे हो गये। इनमें कुछ लोग अमृतसर से भी आये हुए थे। उन्होंने लोगों को इस प्रकार से आनन्द मत्त होने से धिक्कारा। उन्होंने कहा कि तुम्हारे सैकडों भाइयों की जल्यानवाला बाग में कत्ल की गई है और तुम इस तरह आनन्द मना रहे हो। थोडे ही समय में जल्यान वाले बाग के भीषण हत्याकाड की खबर सैकडों लोगों के कानों तक पहुँच गई। ट्रेन स्टेशन से चली पर कुछ दूर जाकर फिर ठहर गई क्योंकि गार्ड यह नहीं चाहता था कि लोग इस प्रकार फुट बोर्ड पर खडे रह कर ट्रेन के साथ जावें। ट्रेन को ठहरी हुई समझ कर ट्रेन की तरफ लोगों का झुंड दौड पडा। जो लोग ट्रेन में बैठ चुके थे, वे भी उतर पडे। अभी तक कोई गडबड नहीं हुई थी पर इतनेही में किसी ने बदमाशी की। एक मरा हुआ गाय का बछडा उस रेल के पुल पर लटका दिया जो इञ्जन के पास ही था। इससे झुंड भडक उठा। अब उसने समझा कि हमारा दिल दुखाने के लिए शायद पुलिस ने यह काम किया है। वह क्रोध से बावला हो गया। वह पुल की ओर बढा और उसमें आग लगा दी। इसी बीच में स्थानीय नेताओं को इस दुःखदायक घटना की खबर मिली। वे अपनी शक्ति और प्रभाव का व्यय कर पुल की आग यथा शक्ति बुझाने लगे। इसी बीच में खबर मिली कि स्टेशन के दूसरी बाजू को काश्चीपुल के पास एक कत्ल किया हुआ सूअर का बच्चा लटकाया गया है। इस खबर ने

जलती हुई आग में घी की आहुति का काम दिया। यह क्रोधोन्मत्त भुंड कच कची खा कर पुलकी ओर बढने लगा। रास्ते में इसने तार तोड़ डाले। इस ओर तो ये घटनाएँ हो रही थी और उस ओर नगर में नेतागण आम सभा इस उद्देश से कर रहे थे कि जिससे लोगों का ध्यान इस ओर बट जावे और वे किसी प्रकार का उत्पात करने से बरी रह सकें। इस सभा में हिन्दू मुसलमानों की एकता और म्युनिसिपल चुनाव के विषय में व्याख्यान हो रहे थे। इसी बीच में सुनाया गया कि पुलिस ने काछीपुल के पास लोगों के झुंड पर गोलियां चलाई हैं और उसमें कुछ आदमी ज़खमी हुए हैं। थोड़ी ही देर में कुछ आदमी दो ज़खमी आदमियों को उठाकर सभा में ले आये। इन्हें देखकर सभा में बैठे हुए आदमियों का खून उबल पड़ा। उनकी आंखों से चिनगारियां निकलने लगी। नेताओं ने लोगों को शान्त करने का बहुत प्रयत्न किया। पर वे सफल मनोरथ नहीं हुए। सभा का कार्य आगे चलाना असम्भव होगया। सभा में बैठे हुए सब लोग बदला लेने की नियत से स्टेशन की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने तहसील, डाक बंगला, डिस्ट्रिक्ट कोर्ट, चर्च और रेलवे स्टेशन को आग लगा दी। बाद कोई डेढ बजे के अन्दाज़ पर लोग बिखर गये और इसके बाद सरकार की मिल्कियत को कोई नुक़सान नहीं पहुंचाया गया। कर्नल ओब्रायन ने भी हंटर कमेटी के सामने यह स्वीकार किया कि २ बजे जब मैं गुजरानवाला पहुँचा, तब भुंड अपना विनाशक कार्य कर चुका था और उस वक्त वह बिखर गया था।

पर गुजरानवाला के डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट ने लाहोर टेलिफोन देकर सहायता मांगी थी। कहाजाता है कि लाहौरमें लेफ्टिनेंट गवर्नर के पास ऐसी अफवाह भी पहुँची थी कि गुजरानवाला में

उनके विश्वसनीय कर्नल ओब्रायन मार डाले गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि ले०गवर्नर ने तीन वायुयान लाहौर भेजने का हुक्म दिया। ये वायुयान तीन बजे गुजरानवाला पहुंचे। उन्हों ने गुजरानवाला पर बम बरसाना और मशीनगनों से फ़ायर करना शुरू किया। कहा जाता है कि इन वायुयानों ने गुजरानवाला पर ३ बम डाले और मशीनगनों के १८० round किये। इनमें से एक बम खालसा हाई स्कूल के हॉस्टेल पर गिरा, जिससे एक विद्यार्थी और कुछ अन्य मनुष्य घायल हुए। दो बम एक मसजिद के पास गिरे। दूसरा वायुयान सवा तीन बजे पहुँचा। इसने मशीनगन से ७०० वार (round) किये। तीसरे वायुयान ने न तो बम ही गिराये और न बन्दूक या मशीनगन के वार किये। इनसे सब मिला कर ४० मनुष्य हताहत हुए, जिनमें १२ मर गये। मरे हुओं में एक स्त्री, एक बच्चा और कुछ लड़के भी थे। अन्य आस पास के गावों पर भी बम बरसाये गये थे।

यहां यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि इतने बम गिरने पर और वार (round) होने पर भी बहुत कम लोग मरे इससे क्या निष्कर्ष निकलता है। इससे यह ज़ाहिर होता है कि कहीं भी लोगों के झुंड जमा नहीं थे। अगर लोग झुंडों के रूप में जमा होते तो सैकड़ों आदमी मर जाते। लोग शान्ति से हमेशा की तरह अपना कारोबार कर रहे थे। हाँ, उन्होंने पहिले उत्पात किये थे, पर इस वक्त सर्वत्र शान्ति थी। ऐसी दशा में उचित यही था कि जिन लोगों ने वास्तव में अपराध किये थे, उन्हें गिरफ़्तार कर मुनासिब सज़ा मिल जाती। पर कतिपय लोगों की की गई ज़्यादतियों से रोष आकर सारे शहर पर बम बरसा कर निरपराध

मनुष्यों की हत्या करना, कहां तक उचित था और न्याययुक्त था इसका निर्णय खुद पाठक कर सकते हैं। बेचारे लोगों पर एकदम बम गिरने लगे। उन निर्दोषों के मन पर, जिन्होंने किसी प्रकार के उपद्रवों में हिस्सा नहीं लिया होगा, बम बरसाने का हुक्म देनेवाली नौकरशाही के प्रति क्या क्या ख़याल पैदा हुए होंगे, हम पाठकों ही पर इसकी कल्पना का भार छोड़ देते हैं। हमें आश्चर्य है कि जर्मनी अपने विरोध में युद्ध करनेवाले राष्ट्र के नगरों पर जब वायुयानों से गोले बरसाता था, तब हमारे अंग्रेज़ भाई कहते थे कि जर्मनी पिशाच है, वह निर्दोष और असैनिक जनता पर बम के गोले डाल कर मनुष्यजाति के ख़िलाफ़ भयङ्कर अपराध कर रही है पर हमें आश्चर्य है कि हंटर कमेटी ने इस बम वर्षा को अमानुषिक कृत्य या "मनुष्यजाति के ख़िलाफ़ अपराध" नहीं बतलाया। उसने इस कार्य की नाम मात्र के लिये निंदा कर इसका जिस तरह समर्थन किया है वह आधुनिक अंग्रेज़ नौकरशाही के मनका पता देनेवाली बात है। अगर जर्मन अंग्रेज़ों के प्रति कोई अत्याचार करते हैं, तो वे राक्षस और दस्यु कहे जाते हैं और उनसे भी भयङ्कर अत्याचार हम हिन्दुस्थानियों पर हो जाते हैं तो वे "निर्णय की भूल" में निकाल दिये जाते हैं. और निर्दोष हिन्दुस्तानियों की हत्या करनेवाले जनरल डायर को हिन्दुस्तान ही के ख़ज़ाने से पूरी पेन्शन दी जाती है। हिन्दुस्तान का इससे अधिक और क्या अपमान और मान-मर्दन हो सकता है?

केवल गुजरानवाला ही पर नहीं, पर आसपास के कई ग्रामों पर भी बिना किसी प्रकार की सूचना के बम बरसाये गये। सीमाप्रान्त के बाग़ी गाँवों को वायुयानों से बम बरसाने

के पहिले जो सुभिताएँ दी गई, वे भी गुजरानवाला नगर और उसके आस पास के गाँवों के लोगों को नहीं दी गईं।

यह जुल्म यहीं तक पूरा नहीं हुआ। १५ अप्रेल को सुबह के वक्त कर्नल ओब्रायन ने गुजरानवाला के अत्यन्त प्रतिष्ठित २२ सज्जनों को गिरफ्तार किया। इनमें वकील बैरिस्टर और व्यापारी सबही शामिल थे। इनमें कितने ही ऐसे सज्जन थे जिन्होंने इसके पहिले दिन ही अधिकारियों के शान्ति स्थापन करने में बडी सहायता की थी। पर इसकी कुछ पर्वाह नहीं की गई। ये लोग केवल इस बिना पर गिरफ्तार किये गये कि उन्होंने रोलेट ऐक्ट के खिलाफ आन्दोलन में भाग लिया था। ये लोग जहा जैसी स्थिति में मिले वहाँ वैसी ही स्थिति में तुरन्त गिरफ्तार कर लिये गये कोई कोई तो खुले बदन ही गिरफ्तार कर लिये गये, उन्हें कपडे पहिनने तक का अवसर नहीं दिया गया। इनके हथकडियाँ डाली गई। दो दो आदमी जोडे से हथकडियों में फाँदे गये। ये इसी हालत में बाजार में निकाले गये। स्टेशन पर इसी दशा में भेजे गये। वहा कडी धूप में खडे किये गये। कुछ समय के बाद एक जुलूस बनाया गया। इसमें ये कैदी बीच में रखे गये। इनके आस पास फौज और पुलिस इन्हें घेरे हुए थी, और ऊपर से वायुयान चक्कर लगा रहे थे। ये लोग कई जगह इसी रूप में दौडाये गये। कहाँ तक कहा जावे इन बेचारों की बुरी तरह मिट्टी पलीत की गई? इनके साथ पाशविक व्यवहार करने में कोई भी कसर नहीं रखी गई।

हमें यहाँ अत्यन्त लज्जा और खेद के साथ कहना पडता है कि फौजी शासन के अंग्रेज अफसरों की तरह हमारे हिन्दू कुलकलङ्क श्रीरामसूदन (जो कि शेखपुरा में सब डिव्हीजनल

अफसर थे) नाम के एक पैशाचिक वृत्ति के मनुष्य ने विना किसी कारण के कुछ ग्रामों पर गोलावारी करवा दी। इससे कितने ही हमारे भाई मर गये और कितनेही ज़ख़मी हुए। हम जितने ज़ोर के साथ जनरल डायर को नहीं धिक्कारते हैं उस से भी अधिक ज़ोर के साथ इस देशद्रोही राक्षस को धिक्कारते हैं जिसने अपने निर्दोष भाइयों पर गोले बरसाने का हुक्म दिया, और कई निर्दोष भाइयों की मुफ्त में जानें लीं। भारत के इतिहास में इस हिन्दुकुल कलङ्क का नाम धिक्कार के साथ लिखा जायगा।

हमने ऊपर तीन चार ग्रामों पर जो भीषण अत्याचार हुए हैं, उनका उल्लेख किया है। इसी प्रकार के अन्याय पंजाब के कई ग्रामों पर तथा नगरों पर हुए। उन सबका उल्लेख करने के लिये यहां स्थान नहीं है। पाठक इन भीषण अत्याचारों का अन्दाज़ा उपरोक्त वृतान्त ही से लगालें।

मार्शल लॉ पर एक दृष्टि

यहाँ हम यह विचार करना चाहते हैं कि क्या पंजाब में मार्शल लॉ का जारी किया जाना आवश्यक और न्याय युक्त था। हम मानते हैं कि प्रत्येक सरकार का शान्ति और सुव्यवस्था स्थापन करने का पूर्ण कर्तव्य है, हम मानते हैं कि किसी सरकार का यह कर्तव्य नहीं है कि यह खुले गदर (Open rebellion) को वे रोक टोक चलने दे। अतएव वैध कानून (Constitutional Law) का यह तत्व है कि जब देश पर

किसी विदेशी का हमला हो रहा हो और ऐसे समय यदि देश में खुला गदर हो जावे तो सरकार की मज़बूती (Stability) के लिये मुल्की कानून के बजाय फौजी कानून (Martial Law) शुरू कर दिया जाय। मार्शल लॉ और कुछ नहीं, वह केवल कानून का Negation है। अतएव जब देश में इतनी अधिक अशान्ति मच जावे और उसकी परिस्थिति यहाँ तक विपद ग्रस्त हो जावे कि उस देश की सरकार का अस्तित्व तक गम्भीर जोखिम में गिर जावे और लोगों की जान माल खतरे में गिर जावे, तब सरकार के लिये सब तरह से मजबूर हो कर मार्शल लॉ का आश्रय लेना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि जब साधारण कानून देश में शान्ति स्थापित करने में पूर्ण रूप से असफल हो जाय, तब ही इस फौजी कानून का आश्रय लेना न्याय सङ्गत है। फौजी कानून एक सुप्रसिद्ध आईन-विद्या विशारद के मतानुसार सरकार की वे कानूनी ताकत (illegal force) है, जो किसी विकट परिस्थिति में खुले गदर को दबाने के लिये उस दशा में काम में लाई जा सकती है जब साधारण कानून वैसा करने में असमर्थ हो जाते हैं। हिन्दुस्तान में गवर्नर जनरल को यह अधिकार है कि युद्ध या खुले गदर के समय वे फौजी कानून जारी कर सके। Bengal State offences Regulation (x of 1804) के अनुसार मार्शल ला जारी किया जा सकता है। पाठक, इस अधिकार के शब्द जो नीचे दिये जाते हैं, देख लें।

"The Governer general in council is hereby declared to be-empowered to suspend or direct any Public authority or officer to order the suspention of, wholly or partially the functions of

the ordinary Criminal courts of judicature, within any part of the British territories subject to the government of presidency of Fort William, and to establish martial Law therein for any period of time, while the British government in India shall be engaged in war with any Native or other power, as well as during the existence of open rebellian against the authority of government in any part of the territories afore said, and also to direct the immediate trial by courts martial of all persons owing allegience to the British government either in the consequence of their having been born or of being residents within its territories and under its protection, who shall be taken in arms in open hostility to the British government or in the act of opposing by force of arms the anthorities of of the same or the actual commission of any overt act of rebellian against the State, or in the act of openly aiding and abetting the enemies of the British government within any part of the said territories."

उपरोक्त क़ानूनी वाक्य से पाठकों को मालुम हुआ होगा कि ब्रिटिश भारत के किसी हिस्से में फ़ौजी कानून दो हालतों में जारी किया जा सकता है। जब ब्रिटिश सरकार किसी देशी या विदेशी शक्ति से युद्ध में लगी हुई हो या सरकार की हुकूमत के ख़िलाफ़ कोई खुला गदर हो रहा हो। इसका मतलब यहहै कि ज्योंही युद्ध बन्द हो जावे या खुले गदर का अस्तित्व मिट

जावे, त्योंही मार्शल ला उठा दिया जावे। यहां अब यह देखना है कि पंजाब में कई मास तक फ़ौजी कानून किस आधार पर जारी रखा गया। पहिले तो मार्शल लॉ का जारी करना ही कानून के ख़िलाफ़ था। क्या पंजाब में खुला गदर था? क्या पंजाब के लोग शस्त्र लेकर सरकार से युद्ध करने आये थे? अगर थोड़ी सी गड़बड़ या झुँड की ज़ियादती ही को मार्शल लॉ का कारण बतलाया जावे तो विलायत में तो ऐसी बातें कई दफ़ा होती हैं। वहाँ तो कई वक्त झुँड पार्लमेण्ट तक पर पत्थर फेंकता है। तब वहां मार्शल लॉ क्यों नहीं जारी किया जाता। हमें आश्चर्य है कि पंजाब में कई तो ऐसी जगह मार्शल ला जारी किया गया जहां अशान्ति का नामो निशान भी नहीं था। पंजाब के गुजरात नगर में जब मार्शल लॉ जारी करने का हुक्म आया तब वहां के डिप्टी कमिश्नर को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे यह समझने लगे कि क्या गुजरात देशमें मार्शल लॉ जारी किया जाने वाला है। दूसरी बात यह कि पंजाब के प्राय सब नगरों और ग्रामों में मार्शल लॉ तब जारी किया गया जब अशान्ति मिट गई थी। अतएव यह कहना पड़ेगा कि मार्शल लॉ का उस हालत में जारी किया जाना जबकि अशान्ति मिट चुकी थी बिलकुल अन्याय युक्त था। अशान्ति के मिट जाने के बाद कितनेही मास तक मार्शल लॉ क्यों जारी रखा गया। क्या सरकार की ओर का कोई कानूनी पण्डित इस पक्ष में कानून के मुताबिक़ सरकार का पक्ष समर्थन कर सकता है? हरगिज़ नहीं। पहिले तो ज़रासी अशान्ति और गड़बड़ को खुला गदर कहनाही हमारी आले दिमाग़ नौकरशाही की लियाक़त का पता देता है। दूसरे इस अशान्ति के मिट जाने पर भी मार्शल लॉ का जारी किया जाना नौकरशाही के हृदय

का पता देता है । हमें यहां साफ़ शब्दों में यह कहना पड़ेगा कि नोकरशाही ने इस वक्त कानून और सारासार के विचार को ताक में रखकर केवल बदला लेने की कलुषित वृत्ति से काम लिया था ।

हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इस मार्शल लॉ ने हमारे कई बंधुओं को बलि ली। मार्शल लॉ के पहिले जो हत्याकांड हुआ, और उसमें हमारे कई निर्दोष बन्धु जिस निर्दयता से मारे गये, उसका उल्लेख हम पहिले करही चुके हैं। मार्शल लॉ के जारी होने पर पंजाब के कई नगरों में असाधारण फौजी अदालतें बैठीं । इनमें कई जगह तो ये फौजी शासक लोग ही इन अदालतों के न्यायाधीश थे । इनके नादिरशाही इन्साफ पर अपील करने तक का हक नहीं रखा गया था । मार्शल लॉ की हद में बाहर से वकीलों के आने की सख्त मुमानियत थी । यहां तक कहाजावे, इन आरोपियों की दशा हर तरह निराश्रित करदी गई थी । खूनी से खूनी आदमी को जो कानूनी सुविधाएँ दी जाती हैं, वे भी इन अभागों को नहीं दी गईं । एक और बात ध्यान देने योग्य है । कानून की रू से इन फौजी अदालतों में उन्हीं का मुकदमा चल सकता है जिन्होंने मार्शल लॉ जारी किये जाने बाद कोई अपराध किये हों । पर जिन अभागों को इन अदालतों से सजा हुई उनमें प्राय वेही मनुष्य थे जिन्होंने मार्शल लॉ के पहिले सरकार की दृष्टि से अपराध किया था । ऐसी अवस्था में फौजी अदालतों में इनका न्याय होना नितान्त अन्याय मूलक था । प्रिवी कौंसिल के सामने इंग्लैण्ड के सुप्रख्यात् क़ानून विशारद बैरिस्टर सिमन महोदय ने इन मुद्दों को लेकर जिस योग्यता और गम्भीर विद्वता एवं क़ानून पटुता के साथ बहस की थी उसमें उन्होंने मार्शल

लॉ का जारी किया जाना और मार्शल लॉ के जारी होने के पहिले किये गये अपराधों का फौजी अदालत में विचार होना नितान्त अन्याय मूलक सिद्ध किया था। हमें खेद के साथ कहना पडता है कि प्रिव्ही कौंसिल ने इस सम्बन्ध में उचित, न्याय नहीं दिया। अबतक हमारा प्रिव्ही कौंसिल की न्याय प्रियता पर विश्वास था। पर इस घटना से वह उठ गया। अबतक हम यह समझे हुए थे कि प्रिव्ही कौंसिल में साम्राज्य सम्बन्धी स्वार्थ का विचार छोडकर न्याय किया जाता है। पर पजाब के मामलों से, हमें दुःख के साथ विचार त्यागना पडा। हां, हम भारतीय अदालतों की लीलायें वर्षो से देख रहे हैं। हम देख रहे हैं कि हमारे किसी भाई को जान से मार देने वाला गोरा केवल इस बिना पर थोडेसे नाममात्र केदण्ड पर छोड दिया जाता है कि इसके बूँट से हमारे जिस भाई की जान गई, उसकी तिल्ली बढी हुई थी। अभी तक हमने ऐसा एकभी उदाहरण नहीं देखा जिसमें किसी हिन्दुस्तानी के खून करनेवाले गोरे को फांसी की सजा हुई हो। हमारा विश्वास भारतीय न्यायालयों से तो उठही गया था। पर पजाब के मामले में प्रिव्ही कौंसिल से भी उठ गया। हमारा तो यकीन होगया कि कमजोरों के लिये, बूटों की ठोकरें खानेवालों के लिये, कहीं भी न्याय नहीं है। पता नहीं, ईश्वर के घरमें भी ऐसे लोगों के लिये न्याय होता है या नहीं।

मार्शल लॉ के समय में जो फौजी अदालतें बैठी थी उन्होंने तो इन्साफ करने में गजब किया। जिन लोगों ने रॉलेट ऐक्ट के खिलाफ व्याख्यान दिये, जिन लोगों ने नर्म भाषामें अपना विरोध प्रगट किया, उन लोगों पर राजद्रोह का मुकद्दमा चलाया गया और उन्हें न केवल आजन्म काले पानी ही की

सज़ा मिली, पर उनकी सब जायदाद जप्त करने का भी हुक्म हुआ। लाला हर किशनलाल, लाला दुनीचंद, पं० राम भजदत्त चौधरी आदि कई सुप्रतिष्ठित महाशय पर राज विद्रोह के मुक़दमे चलाकर उन्हें आजन्म काले पानी की सज़ा हुई। इतना ही नहीं, इसके साथ साथ उनकी सारी जायदाद जप्त करने की भी आज्ञा हुई। इन लोगों का अपराध क्या था? इससे अधिक कुछ नहीं कि उन्होंने रॉलेट ऐक्ट का विरोध करने के लिये सभाएं की थी और व्याख्यानों द्वारा लोगों को रॉलेट ऐक्ट की असलियत प्रकट की थी। इसी को फ़ौजी अदालत के कमिश्नरों ने राजद्रोह समझ कर इतनी भयङ्कर सज़ाएं देदी। बशीर महम्मद को तो फांसी की सज़ा का हुक्म हुआ। यद्यपि पीछे जाकर ये सब महानुभाव श्रीमान् सम्राट्के घोषणा-पत्र के अनुसार छोड़ दिये गये पर इससे इन फ़ौजी अदालतों का और उसमें बैठने वाले कमिश्नरों के दिल (Mentality) का पता लगता है। इन मुक़द्मों की प्रिव्ही कौंसिल में भी अपील हुई थी पर उसका जैसा नतीजा निकला वह हमारे पाठकों पर प्रकट ही है।

बड़े ही दुःख की बात है कि इन अदालतों द्वारा दी गई सज़ाएं कई लोगों पर अमल में भी आगईं। कई फांसी पर लटक चुके। अगर देशभक्त मोतीलाल नेहरू स्टेट सेक्रेटरी के पास तार नहीं देते और स्टेट सेक्रेटरी मि० मॉंटेग्यू हस्तक्षेप नहीं करते तो और भी कई अभागों को फांसी हो जाती। और सैकड़ों लोग कालेपानी भेजे जाते। पर पीछे जाकर कुछ लोग तो निर्दोष बतला कर छोड़े गये और कुछ श्रीमान् सम्राट् के घोषणा-पत्र में प्रकाशित दया दिखाकर छोड़े गये। इतने पर भी आज कई भाई इन फ़ौजी अदालतों के द्वारा दी गई सज़ाओं के

कारण जेलखाने तथा अन्डमान टापू में सड़ रहे हैं। हमें खेद है कि श्रीमान् सम्राट् के घोषणापत्र में प्रदर्शित दया के लाभ से हमारे बहुत से भाई वञ्चित रखे गये। यह हमारी नौकरशाही की कृपा का फल है।

पराधीनता से मुक्त होने का उपाय

असहयोग का अमोघ अस्त्र।
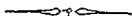
पंजाब के भीषण हत्याकाण्ड से सारे देश भर में सनसनी छा गई। देश का हृदय थर्रा उठा। उसे अपनी निःसहाय अवस्था पर महा दुःख होने लगा। वह समझने लगा कि सचमुच निर्बल के लिये संसार में कहीं स्थान नहीं। निर्बल सब जगह ठोकरें खाता है। भयङ्कर से भयङ्कर अपमान सहता है, लोग उसके जानमाल की पर्वाह नहीं करते। वह पशुओं की तरह गोलियों का शिकार बनता है, वह हाथ और पैरों के बल पर कीड़ों की तरह रेंगाया जाता है! दर असल पंजाब के मामले से सोये हुए भारत वासियों की जागृति हुई। उन्हें अपनी निर्बलता और निःसहाय अवस्था पर पश्चाताप होने लगा। कई दिन तक शान्तिप्रिय भारतवासी सोचते रहे कि हमें न्याय मिलेगा। पंजाब में अत्याचार करनेवाले अफ़सरों को उचित दण्ड मिलेंगे, ओडायर और डायर को सरकार की ओर से उनके पापकृत्यों का फल मिलेगा, इसी आशा पर अमृतसर की काँग्रेस में,

कुछ प्रभावशाली नेताओं का मत होते हुए भी सरकार के खिलाफ़ असहयोग का प्रस्ताव पास न हो सका। पर जब लोगों ने देखा कि सरकार उन दुष्टों को, जिन्होंने पंजाब में हमारे सैकड़ों भाई बहनों की हत्यायें कीं, उन नरपिशाचों को जिन्होंने हमारे छोटे छोटे मदन जैसे प्यारे बच्चों की जानें लीं; उन हिंसक दैत्यों को जिन्होंने हमारी कई महिलाओं की इज़्ज़त हतक करने में कोई कसर उठा न रखी, भारतीय खजाने से पेन्शन दे रही है, तब उनकी आंखें खुलीं। उनको विश्वास होने लगा कि वर्तमान सरकार से न्याय की आशा करना व्यर्थ है। ऐसी दशा में वर्तमान नौकरशाही क सहयाग करना पाप है,-इन्हीं सब बातों को सोच समझ कर

महात्मा गांधी ।

ने सन् १९२० की पहली अगस्त को सरकार से असहयोग करने की घोषणा की। महात्माजी ने ऐलान किया कि वर्तमान सरकार से अहिंसात्मक असहयोग (non-violent non-co-operation) किया जावे। इसके लिये आपने आज्ञा दी कि सब विद्यार्थी सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल और कालेज छोड़ दें। वकील अपनी वकालत त्याग दें। महात्मा गाँधी ने बतलाया कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने हमारे जीवन को बिगाड़ दिया। हमारी दासता की ज़िम्मेदारी वर्तमान शिक्षा पर बहुत कुछ पड़ती है। इसने हमें बेतरह ग़ुलाम बना दिया है। हमारे नवयुवक आज बुरी तरह से परावलम्बी हो रहे हैं। वर्तमान सरकार को जितनी सहायता आधुनिक शिक्षाप्राप्त लोगों से मिल रही है, उतनी अन्य किसी से नहीं मिल रही है, अतएव

आधुनिक घातक शिक्षा के बजाय विशुद्ध राष्ट्रीय शिक्षा का दिया जाना आवश्यक है। महात्मा गाँधी ने असहयोग, पर कई वक्त व्याख्यान दिये। हम नीचे उनका केवल एक व्याख्यान देकर 'असहयोग'-सम्बन्धी उनके विचारों को प्रकाशित करते हैं।

असहयोगपर म० गांधी का व्याख्यान।

मुसलमानों ने स्पष्ट शब्दों में, ईमान्दारी के साथ सरकार से कह दिया है कि यदि खिलाफत के मामले में जो वादे किये गये थे वे पूरे नहीं किये जाते और इस प्रश्न का निर्णय मुसलमानों की धार्मिक आवश्यकताओं के अनुसार नहीं होता तो मुसलमानों के लिये ब्रिटिश सम्बन्ध के प्रति राजभक्ति के भाव रखना असम्भव है। यदि किसी मुसलमान को एक ओर ब्रिटिश सम्बन्ध का आदर करना है, और दूसरी ओर अपने नबी और अपनी धर्म-पुस्तकों का आदर करना है, तो मुसलमान निःसङ्कोच अपने नबी और अपने धर्म की शरण लेंगे। अब हिन्दुस्तान के अन्य निवासियों का कर्त्तव्य है कि वे सोच लें कि वे अपने मुसलमान भाइयों के प्रति सच्चे पड़ोसी का सा बर्ताव करेंगे, या नहीं? यही मौका है कि हिन्दू लोग अपने उस भाईपन का, जिसकी दुहाई सालों से दी जा रही है, सच्चा सबूत दें। जब तक मुसलमानों की माग न्यायानुसार है और उस माग को पूरी करने के तरीके भी उसी तरह न्यायानुकूल हैं, तब तक हिन्दुओं का कर्त्तव्य है कि वे उनका साथ दें। हिन्दू मुसलमानों को इस समय युरोप की ईसाई रियासतों को यह साफ सुझा देना चाहिये कि दुर्बल होने पर भी भारत अपना आबरू की रक्षा कर सकता है। उसे अब भी अपने धर्म और अपने स्वाभिमान पर मरना मालूम है। यह

तो खिलाफत की बात है, अब पञ्जाब की सुनिए। गत १६० वर्षों में हिन्दुस्तान के हृदय को कभी ऐसी चोट नहीं लगी, जैसी इस पञ्जाब के मामले में लगी है। इतिहास में यह अत्याचार अपना सानी नहीं रखता। इस मामले में न्याय प्राप्त करने के लिये तरीके ढूँढ़ने होंगे। मि० माण्टेगु और हमारे वाइसराय, 'हाउस ऑफ कामन्स' और 'हाउस ऑफ लार्डस्' सभी हमारे भावों को जानते हैं। पर सभी ने अपने कामों से यह बात स्पष्ट कर दी है कि ये लोग अपने मन से न्याय करने को तय्यार नहीं। मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि जब तक हम लोगों को अंग्रेजों से बराबरी नहीं मिलती, जब तक हमारे स्वाभिमान की रक्षा नहीं होती, तब तक उनके साथ कोई सम्बन्ध, कोई मैत्री वा मेल जोल सम्भव नहीं। इसीलिये, मैं असहयोग के सुन्दर और अकाट्य साधन का पेश करता हूँ। कुछ लोगों का कथन है कि असहयोग अवैध है। मैं स्पष्ट कहता हूँ कि मैं असहयोग को अवैध नहीं मानता। मेरी धारणा है कि असहयोग वैध, न्यायानुकूल और धार्मिक है। असहयोग जन्म-सिद्ध अधिकार है और सर्वथा वैध है। एक ब्रिटिश साम्राज्य के भक्त ने ही विजयी विद्रोह को भी वैध बताया था। मैं हर तरह की अशाँति-कारी बातों को भारत के लिये बुरा समझता रहा हूँ। मेरे भाई शौकतअली को अशांत साधनों में विश्वास है, और यदि वे भारत को इस योग्य समझते तो साहस के साथ सच्चे वीर की तरह ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध तलवार खींचते। परन्तु भारत की दुर्बलता को देखते हुए मेरी क्षुद्र सहायता को स्वीकार करके, अशांति और द्वेष के भावों को भुलाने के लिये

वे तय्यार हुए हैं। अपने वचन को उन्हों ने ख़ूब निबाहा है। यदि दुर्भाग्य से, किसी दिन तलवार खींचने का समय आया तो वीर शौक़तअली तलवार खींचेंगे और मैं वन-वासी हो जाऊँगा। क्योंकि मेरा विश्वास है कि भारत का एक ख़ास उद्देश्य है, और भारत के प्राचीन ऋषियों ने यह बात खोज निकाली थी कि सच्चा न्याय शान्ति मूलक है, अशान्ति और हिंसा-मूलक नहीं। मेरा विश्वास है कि असहयोग दुर्बलता का द्योतक नहीं, बल्कि सच्चे बल का द्योतक है। अहिंसा-व्रत धारण करके शत्रु के समक्ष छाती खोल कर मरने वाले को मैं सबसे बड़ा वीर समझता हूँ। नौकरी छोड़ने, उपाधियाँ लौटाने, सरकारी स्कूलों से लड़के हटा लेने, वकालत छोड़ने, पुलिस की अथवा फ़ौज की नौकरी से इस्तीफ़े देने, सरकारी टैक्स न देने आदि जितने असहयोग के तरीके हैं,मैं उन सबको वैध मानता हूँ और मैंने स्वयं ये तमाम बातें की भी हैं। पर किसी ने उन्हें अवैध नहीं बताया। मेरा ख़याल है कि एक वैध राज्य के अन्दर, अपना अपमान सहना अवैध है, अपने धर्म की अवहेलना देखना अवैध है, पञ्जाब को पैरों तले कुचलनेवाली अन्यायी सरकार के साथ सहयोग अवैध है, असहयोग अवैध नहीं। मैं अंग्रेज़ों का विरोधी नहीं, मैं ब्रिटेन का विरोधी नहीं, मैं सरकार का विरोधी नहीं, पर मैं अन्याय का विरोधी हूँ। मैंने अमृतसर कांग्रेस के समय सरकार से सहयोग का प्रस्ताव किया था। आप लोगों में से बहुतों के समक्ष सहयोग के लिये हाथ जोड़े थे, क्योंकि मेरा विश्वास था कि सरकार न्याय करेगी, राजघोषणा द्वारा घोषित सहयोग में सत्यता होगी। पर मेरा यह विश्वास

नहीं रहा। ब्रिटिश मन्त्रियों ने उस विश्वास पर पानी फेर दिया। मैं सरकार का व्यर्थ विरोध करना नहीं चाहता। मैं सरकारी कामों को एकदम रोकना चाहता हूँ। मैं ऐसे असहयोग का पक्षपाती हूँ जो संसार की बड़ी से बड़ी सरकार का राजकाज बन्द करदे।

हमारे धर्मशास्त्र असहयोग की आज्ञा देते हैं। न्याय और अन्याय, सत्य और असत्य, धर्म और अधर्म के बीच सहयोग की आज्ञा शास्त्र में नहीं है। जब तक राज्य व्यवस्था तुम्हारी रक्षा करे, तब तक सहयोग करो। पर जब रक्षा के बजाय राज्य-व्यवस्था तुम्हारी इज्जत आबरू छीने, तब असहयोग ही धर्म है। मुझ से कहा गया कि विशेष कांग्रेस तक मुझे रुकना चाहिये था। मेरा अकेले का काम होता तो मैं रुकने को तय्यार था, पर यह एक धर्म धरोहर है। मुसलमानों ने अपनी आबरू थोड़ी देर के लिये मेरे हाथों में रख दी है। मैं उन्हें अपने अंतःकरण की आज्ञा न मान कर, रुकने के लिये नहीं कह सकता। ईश्वर न करे कि काँग्रेस असहयोग के विरुद्ध व्यवस्था दे। पर यदि ऐसा हुआ, तो क्या मैं अपने भाइयों को असहयोग की सलाह न दूँगा? अवश्य दूँगा, मुसलमान अपने प्रण से न हटेंगे। मैं उन्हें अकेले अपने धर्म की रक्षा के लिये डटे रहने की सलाह दूँगा। कांग्रेस से सहायता के लिये हम लोग विनती करेंगे, परन्तु वे प्रतिज्ञा कर चुके हैं। यदि हम लोग अपनी राय ही न देंगे तो, काँग्रेस क्या निर्णय करेगी? जिसके अतःकरण की ज्योति ने कर्त्तव्य पथ दिखा दिया है, उसका धर्म है कि अपनी स्पष्ट राय प्रकट करे।

कौंसिल के बहिष्कार का मैं सर्वथा समर्थन करता

हूँ। कौंसिल में आकर इस्तीफ़ा देने के जाल में मत फसिए। यह समस्या बड़ी कठिन हो जायगी। साधारण जनता इन गोल मोल तरीकों को न समझेगी। उसे स्पष्ट बात बतानी चाहिये। यदि इसलाम और पञ्जाब पर किये गये अत्याचार से हमें सचमुच चोट पहुँची है, तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम कौंसिलों का प्रलोभन भुला दें। हम न जायँगे तो नरम दल वाले घुस जायँगे यह बात मेरी समझ में नहीं आती। यदि मेरा अतःकरण कहता है कि कौंसिल में जाना अधर्म है, तो मुझे इससे क्या मतलब कि और लोग जाते हैं या नहीं। मैं न जाऊँगा। सचाई और ईमान्दारी यही कहती है।

वकालत छोड़ने का भी मैं पक्षपाती हूँ। वकीलों की मदद के बिना सरकारी कोई काम नहीं चल सकता। यदि वकीलों का विश्वास है कि सरकार अन्याय करती है, तो उनका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे वकालत छोड़ दें। यही नहीं, मुवक्किलों को अदालत जाने से रोकें, पञ्चायत करके स्वदेशी न्याय करें।

मा बाप का कर्त्तव्य है कि अपने बच्चों को सरकारी तथा सरकार से सहायता पाने वाले स्कूलों से हटा लें। यदि सचमुच उनके हृदय को चोट लगी है तो वे अवश्य ऐसा करेंगे। क्लर्क बनाने और सरकारी नौकर तय्यार करने में सरकारकी मदद न करने का यही तरीका है। असहयोग को मानते हुए तुम अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में नहीं रख सकते।

सरकार के दिये हुए ख़िताब वापस करना भी हमारा कर्त्तव्य है। जो सरकार न्याय पर स्थिर नहीं जिसके हाथों में हमारी आबरू सुरक्षित नहीं, उसके दिये हुए खिताब हम कैसे धारण कर सकेंगे? यदि मुसलमान ऐसा

न करेंगे तो असहयोग की सफलता इस बात पर निर्भर रह जायगी कि जन साधारण नेताओं की परवा न करें, असहयोग का अस्त्र धारण कर इस संग्राम को उसी प्रकार लड़ें, जिस प्रकार फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय जनता ने नेताओं को पीछे छोड़ कर गवर्नमेंट तक को अपने हाथों में कर लिया था और विजय का झण्डा लेकर आगे बढ़ी थी।

मैं क्रान्ति नहीं चाहता। मैं शान्ति चाहता हूँ। आज कलकी अवस्था सच्ची शान्ति की अवस्था नहीं है। शान्त असहयोग की सहायता से मैं सच्ची शान्ति की स्थापना करना चाहता हूँ। यदि आप लोग इस शान्ति पूर्ण और अजेय आन्दोलन के रहस्य को समझ लेंगे तो आप जान जायँगे कि विपक्षियों के तलवार उठाने पर भी आपको कड़े शब्दों तक के कहने की आवश्यकता नहीं। शायद मेरे शब्दों से आप समझते हों कि मैं सरकार को अन्यायी, अत्याचारी, असत्यता पूर्ण और नीच कह कर क्रोध प्रकट कर रहा हूँ। ऐसी बात नहीं है। मुझे क्रोध नहीं, स्नेह है। मैंने अपने सगे भाई से भी उनकी गलतियों की इसी तरह स्पष्ट निंदा की थी। क्रोध से नहीं, प्रेम से। मैं ब्रिटिश सम्बन्ध चाहता हूँ स्पष्ट आधार पर। यदि मुझे अंग्रेजों की बराबरी का दरजा नहीं मिलता और मेरे स्वाभिमान की रक्षा नहीं होती, तो मैं ब्रिटिश सम्बन्ध नहीं चाहता। यदि ब्रिटिश जाति को निकाल कर कुछ काल अशान्ति में रहना पड़े, तो इसे भी मैं सह्य समझता हूँ। परन्तु मैं ब्रिटिश जाति सरीखे बड़ी जाति से अन्याय पाना पसन्द नहीं करता। किसी दिन मि० माण्टेगू के बाद उसी पद पर प्रतिष्ठित होने वाले लोग असहयोग आन्दोलन के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा करने

के लिये, मेरी प्रशंसा करेंगे और मेरे कृतज्ञ होंगे। इसी लिये, मैं आप लोगों से अनुरोध करता हूँ कि इस धर्मयुद्ध में प्रवृत्त हो जाइए।

मैं निरा आदर्शवादी नहीं हूँ और न मुझे 'सतपन' का दावा है। मैं साधारण मनुष्य हूँ। मुझ में मनुष्योचित गुण दोष सभी हैं। पर मैंने दुनिया देखी है। मनुष्य पर जो जो आपत्तियाँ पड़ सकती हैं, मैंने झेली हैं। मेरी काफी कठिन परिक्षाएँ हुईहैं। हिन्दू धर्म के रहस्य को जान कर मैंने समझा है कि असहयोग सन्तों का ही नहीं, ससारियों का भी कर्त्तव्य है। यूरोप वाले जन साधारण को भी हिंसा शक्ति की उपासना की शिक्षा देते हैं, पर भारत के प्राचीन ऋषियों ने हिंसा की नहीं, कष्टसहन की 'तपस्या' की, शिक्षा दी है। विना कष्टसहन के हिंसा में भी सफलता नहीं। इसी लिए मेरे बन्धु शौकत अली ने मेरी प्रार्थना स्वीकार करके 'असहयोग' आन्दोलन का साथ दिया है। महायुद्ध के समय विलायत के स्कूल और कालेज बद होगये थे, दफ्तर बद हो गये थे, सब काम छोड़ कर लोग लड़ाई की छावनियों में पहुँचे थे। मैं तुमसे लड़ाई की छावनी में जाने के लिये नहीं कहता। जो घोर कष्ट इङ्गलेंड के निवासियों ने सहे थे, उनके लिए नहीं कहता। मैं केवल उस त्याग के लिए तय्यार होने को कहता हूँ जिसके बिना कोई लडाई नहीं जीती जा सकती। चाहे हिंसा की लड़ाई हो चाहे अहिंसा की, त्याग और तपस्या की सब जगह जरूरत है। भगवान तुमको यह बल दे। नेताओं को यह ज्ञान और साहस दे, हमारी जाति को वह सन्मार्ग दिखाए, जिसके द्वारा हम लोग इस महा यज्ञ में सफलता प्राप्त करें।

उपरोक्त व्याख्यान से पाठकों को असहयोग की साधारण कल्पना होगई होगी। असहयोग क्यों शुरू किया गया, असहयोग के क्या तत्व हैं और वे किस तरह अमल में लाये जाने चाहियें, इस बात का दिग्दर्शन उपरोक्त व्याख्यान से हो जायगा।

महात्माजी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि चाहे कोई मेरा साथ दे या न दे मैं असहयोग का अवश्य प्रचार करूँगा। महात्मा गाँधी को भारत एक अवतारी महापुरुष मानता है। वह उनसे स्वदेश उद्धार की पूरी आशा रखता है। भारत ने बड़े प्रेम से महात्मा गांधी की आवाज सुनी। हाँ, कुछ लोगों को असहयोग के कार्य्य क्रम के व्यावहारिक उपयोग में सन्देह होने लगा। इनमें देश के कुछ प्रतिष्ठित नेता भी शामिल थे। अतएव इस पर पूर्ण विचार करने के लिये कलकत्ते में विशेष कांग्रेस का अधिवेशन किया गया। इस में ख़ूब वादानुवाद हुआ। नरम दल के लोग इसमें शामिल नहीं हुए। राष्ट्रीय दल के बहुत नेताओं ने इसके कार्य्य क्रम पर अपना तीव्र मतभेद प्रकट किया। श्रद्धास्पद माननीय पण्डित मदन मोहन मालवी ने भी असहयोग के उक्त कार्य्यक्रम को अव्यवहार्य बतलाया। पर अन्त में महात्मा गाँधी की विजय हुई। बहुमत से महात्मा गाँधी का असहयोग वाला प्रस्ताव पास हो गया। इससे देश पर अपूर्व प्रभाव पड़ा। अच्छे अच्छे देश हितैषी लोगों ने कौन्सिलों में जाने से इन्कार कर दिया। अधिकाँश वोटर्स लोगों ने अपना मत नहीं दिया। जी हु ज़ूर करने वालों की बन आई। उन्हें कौन्सिलों में घुसने का मौका मिल गया। कौन्सिलें देश की प्रतिनिधि संस्थाएँ नहीं रहीं। इसी प्रकार विद्यार्थीगण सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों या

कॉलेजों को धड़ाधड़ छोड़ने लगे। कई स्कूल और कॉलेज खाली हो गये। कई स्थायी रूप से बन्द कर दिये गये! विद्यार्थी —संसार में बड़ी हलचल मचगई। यद्यपि कई विद्यार्थी स्कूल और कॉलेजों में वापस चले गये पर लोगों के चित्त पर यह नैतिक प्रभाव अवश्य हो गया कि आधुनिक शिक्षा विष तुल्य है जिसने हमारे प्यारे देश की यह ख़राबी की है।

उपाधी-धारियों पर महात्मा गांधी के इस दिव्य सन्देश का उतना दिव्य प्रभाव न पड़ा। हमें इसकी आशा भी नहीं थी। हमतो समझे हुए थे कि इन उपाधी-धारियों में अधिकांश लोग ख़ुशामद खोर और 'जी हुजूर' करनेवाले हैं। इनमें अधिकांश लोग ऐसे हैं, जिनकी प्रजा के साथ सहानुभूति नहीं। प्रजा भी उन्हें अच्छी निगाह से नहीं देखती। वह जानती है कि इनकी आत्मायें उच्च नहीं, गोराङ्ग प्रभुओं की भाव भक्ति से इनके पीछे ये दुमें लगी हैं। मतलब यह कि बहुत कम लोगों ने उपाधियां छोड़ीं। जिन लोगों ने इन्हें त्यागा उनमें वही लोग थे जिनमें देश के लिये कुछ भाव भरे थे। हां, देश पर इतना प्रभाव अवश्य हो गया कि वह इन उपाधियों को और उपाधी धारियों को बड़ी करुणा की दृष्टि से देखने लगा। उसे मालूम होने लगा कि इन बेचारों का जीवन भी घृणा का नहीं, पर दया का पात्र है !! सर, राय बहादुरी और खां बहादुर जनता के सामने मुँह दिखाने के नहीं रहे !! इन अभागों की दशा ये दशा हो गई !!

असहयोग का प्रवाह बहुत जोरशोर से चलने लगा। लोगों को यह विश्वास होगया कि वर्तमान परिस्थिति में देश की स्वाधीनता के लिये अहिंसात्मक असहयोग के समान ब्रह्मास्त्र दूसरा कोई नहीं है। देश की मानसिक स्थिति में अद्भुत क्रान्ति होने लगी। और इस क्रान्ति का रूप

नागपुर कांग्रेस

में दिखलाई देने लगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह कांग्रेस अपूर्व हुई। यह वास्तविक रुप से लोक प्रतिनिधि संस्था कही जा सकती थी। इस कांग्रेस में प्रतिनिधियों और दर्शकों की संख्या मिलाकर कोई पचीस हज़ार के लगभग थी। महाशय वेनस्पूर ने उक्त कांग्रेस के दृश्य को देखकर कहा कि मैंने अपने जीवन भर में लोगों की इतनी वृहत सभा नहीं देखी। संसार भर में यह एक अपूर्व कांग्रेस है।

इस कांग्रेस में अपूर्व उत्साह और जोश देखा गया। लोगों के असली भावों का चित्र इसमें स्पष्ट रूप से दिखलाई देता था। देश की दुःखी अवस्था से लोगों के हृदयों में कौन कौन सी लहरें बह रही हैं इसका चित्र इसमें दिखलाई देता था। स्वराज्य के लिये लोग कितने उत्सुक हैं इसका प्रतिबिम्ब इसमें झलकता था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कांग्रेस में कुछ संशोधन के साथ सर्व सम्मति से असहयोग का प्रस्ताव पास हो गया। इसके साथ साथ इसमें एक अत्यन्त महत्व का प्रस्ताव पास हुआ। यह कांग्रेस के विधान के विषय में था।

कांग्रेस का अबतक यह ध्येय रहा है कि "वैध उपायों के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना"। इस ध्येय में परिवर्तन हो गया। इस ध्येय परिवर्तन के सम्बन्ध में महात्मा गांधी और लाला लाजपतराय ने अपने व्याख्यानों में बहुत ही अच्छा खुलासा किया है। हमें अपने प्रिय पाठकों से ज़ोर से सिफ़ारिश करते हैं कि वे निम्न लिखित दोनों व्याख्यानों को खूब ध्यान पूर्वक पढ़ें। इन दोनों व्याख्यानों में

ध्येय परिवर्तन के साथ साथ और भी कई बातों पर बड़ा ही अच्छा प्रकाश डाला गया है—

कांग्रेसका उद्देश

महात्मा गान्धी का प्रस्ताव

मुझे जो प्रस्ताव पेश करना है वह इस प्रकार है—

"इंडियन नेशनल कांग्रेस का उद्देश हिन्दुस्तानियोंके लिये कुल उचित और शान्ति-पूर्ण उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना है।"

जहांतक मैं समझता हूँ इस प्रस्ताव के विरुद्ध दो आक्षेप किये जायँगे। पहला यह कि इस समय हम ब्रिटिशसम्बन्ध के तोड़ने का विचार नहीं कर सकते। मेरी रायमें यह कहना कि चाहे जो हो हम अँग्रेज़ोंका सम्बन्ध कभी नहीं छोड़ सकते, अपने राष्ट्रीय गौरव पर बट्टा लगाना है। हमपर जो घोर अत्याचार किये जा रहे हैं उनका दूर करना हर हिन्दुस्तानी का कर्त्तव्य है। अँग्रेजी सरकार न सिर्फ अन्याय को दूर करनेसे इनकार करती है बल्कि वह अपनी भूल माननेतकको भी तैयार नहीं है। जबतक बृटिश सरकारकी यह नीति कायम है तब तक हम यह नहीं कह सकते कि हम उसके साथ अपना सम्बन्ध रक्खेंगे। हमारे रास्ते में कितनी ही कठिनाइयां क्यों न आयें पर हमें संसार के हर देश तथा भारतवर्षके सामने साफ तौर से यह कह देना चाहिए कि अगर अँग्रेज़ लोग यह साधारण सा न्याय भी नहीं कर सकते तो सम्भव है कि हम बृटिश जातिसे सम्बन्ध त्याग दें। अगर अँग्रेजों का सम्बन्ध भारतवर्ष की उन्नति के लिये हो तो मैं कदापि उसे तोड़नेको नहीं कहता।

हां, यदि उस सम्बन्धसे हमारे राष्ट्रीय मानकी रक्षा नहीं होती तो उसे नष्ट कर देना हमारा धर्म है।

इस प्रस्ताव में दोनों दलोंके लिए गुँजाइश है। एक दल वह जो ख़याल करता है कि वृटिश सम्बन्ध क़ायम रखनेसे हम न सिर्फ़ अपना वल्कि अँग्रेज़ोंका भी सुधार कर सकते हैं। दूसरा दल वह जो मिस्टर एन्ड्रयूज़की भाँति यह कहता है कि अँग्रेज़ोंका सम्बन्ध रखनेसे भारतवर्षकी सब आशाओंपर पानी फिर जायगा! इसीलिये मिस्टर एन्ड्रयूज़का यह कहना है कि अँग्रेज़ोंसे हमें कोई सम्बन्ध न रखना चाहिये। उनसे बिलकुल स्वतन्त्र हो जाना चाहिये। कांग्रेस के इस उद्देशमें मि० एन्ड्रयूज़ जैसे मनुष्योंके लिये भी स्थान है। दूसरा उदाहरण मेरा और मेरे भाई शौक़तअली का है। अगर हम हमेशाके लिये इस सिद्धान्तको मान लें कि चाहे इन अत्याचारोंका इन्साफ़ हो या न हो, हमें, वृटिश साम्राज्यके अन्दर रहकर ही अपनी उन्नति करनी होगी तो इस सिद्धान्तमें मेरे लिए कोई स्थान नहीं है, पर मेरे इस प्रस्तावमें दोनों विचारवाले मनुष्योंके लिए स्थान है। अँग्रेज़ोंको भी इस बातका डर रहेगा कि यदि वे हमारे साथ न्याय नहीं करेंगे तो प्रत्येक भारतवासी वृटिश साम्राज्यसे सम्बन्ध त्यागनेकी कोशिश करेगा।

अब हमें यह विचारना है कि हम किन किन उपायों से अपना यह उद्देश प्राप्त कर सकते हैं।

मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि हमें कष्ट सहने पड़ेंगे और अनेक दुखोंका सामना करना पड़ेगा, किन्तु हमपर यह दोष नहीं लगना चाहिए कि हमने अपने हाथसे किसीका ख़ून बहाया। बल्कि हमें ऐसा करना चाहिये जिसमें भविष्यकी सन्तानें यह कहें कि हमने अत्याचार सहे, तकलीफ़ें उठाईं, अपना बलिदान

ध्येय परिवर्तन के साथ साथ और भी कई बातों पर बड़ा ही अच्छा प्रकाश डाला गया है—

कांग्रेसका उद्देश

महात्मा गान्धी का प्रस्ताव

मुझे जो प्रस्ताव पेश करना है वह इस प्रकार है—

"इंडियन नेशनल कांग्रेस का उद्देश हिन्दुस्तानियोंके लिये कुल उचित और शान्ति-पूर्ण उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना है।"

जहांतक मैं समझता हूँ इस प्रस्ताव के विरुद्ध दो आक्षेप किये जायँगे। पहला यह कि इस समय हम ब्रिटिशसम्बन्ध के तोड़ने का विचार नहीं कर सकते। मेरी रायमें यह कहना कि चाहे जो हो हम अँग्रेज़ोंका सम्बन्ध कभी नहीं छोड़ सकते, अपने राष्ट्रीय गौरव पर बट्टा लगाना है। हमपर जो घोर अत्याचार किये जा रहे हैं उनका दूर करना हर हिन्दुस्तानी का कर्त्तव्य है। अँग्रेज़ी सरकार न सिर्फ़ अन्याय को दूर करनेसे इनकार करती है बल्कि वह अपनी भूल माननेतकको भी तैयार नहीं है। जबतक बृटिश सरकारकी यह नीति क़ायम है तब तक हम यह नहीं कह सकते कि हम उसके साथ अपना सम्बन्ध रक्खेंगे। हमारे रास्ते में कितनी ही कठिनाइयां क्यों न आवें पर हमें संसार के हर देश तथा भारतवर्षके सामने साफ़ तौर से यह कह देना चाहिए कि अगर अँग्रेज़ लोग यह साधारण सा न्याय भी नहीं कर सकते तो सम्भव है कि हम बृटिश जातिसे सम्बन्ध त्याग दें। अगर अँग्रेज़ों का सम्बन्ध भारतवर्ष की उन्नति के लिये हो तो मैं कदापि उसे तोड़नेको नहीं कहता।"

हां, यदि उस सम्बन्धसे हमारे राष्ट्रीय मानकी रक्षा नहीं होती तो उसे नष्ट कर देना हमारा धर्म है।

इस प्रस्ताव में दोनों दलोंके लिए गुंजाइश है। एक दल वह जो ख़याल करता है कि बृटिश सम्बन्ध क़ायम रखनेसे हम न सिर्फ अपना वलिक अँग्रेज़ोंका भी सुधार कर सकते हैं। दूसरा दल वह जो मिस्टर एन्ड्रूयूज़की भाँति यह कहता है कि अँग्रेज़ोंका सम्बन्ध रखनेसे भारतवर्षकी सब आशाओंपर पानी फिर जायगा! इसीलिये मिस्टर एन्ड्रूयूज़का यह कहना है कि अँग्रेज़ोंसे हमें कोई सम्बन्ध न रखना चाहिये। उनसे बिलकुल स्वतन्त्र हो जाना चाहिये। काँग्रेस के इस उद्देशमें मि० एन्ड्रूयूज़ जैसे मनुष्योंके लिये भी स्थान है। दूसरा उदाहरण मेरा और मेरे भाई शौक़तअली का है। अगर हम हमेशाके लिये इस सिद्धान्तको मान लें कि चाहे इन अत्याचारोंका इन्साफ़ हो या न हो, हमें बृटिश साम्राज्यके अन्दर रहकर ही अपनी उन्नति करनी होगी तो इस सिद्धान्तमें मेरे लिए कोई स्थान नहीं है, पर मेरे इस प्रस्तावमें दोनों विचारवाले मनुष्योंके लिए स्थान है। अँग्रेज़ोंको भी इस बातका डर रहेगा कि यदि वे हमारे साथ न्याय नहीं करेंगे तो प्रत्येक भारतवासी बृटिश साम्राज्यसे सम्बन्ध त्यागनेकी कोशिश करेगा।

अब हमें यह विचारना है कि हम किन किन उपायों से अपना यह उद्देश प्राप्त कर सकते हैं।

मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि हमें कष्ट सहने पड़ेंगे और अनेक दुखोंका सामना करना पड़ेगा, किन्तु हमपर यह दोष नहीं लगना चाहिए कि हमने अपने हाथसे किसीका ख़ून बहाया। बल्कि हमें ऐसा करना चाहिये जिसमें भविष्यकी सन्तानें यह कहें कि हमने अत्याचार सहे, तकलीफ़ें उठाईं, अपना बलिदान

किया, पर दूसरोंका खून नहीं बहाया। अगर आपको कभी अपने देश भाई पर क्रोध आ जाय, चाहे वह कोई सरकारी नौकर हो या खुफ़िया पुलिस तो आप घूंसेके बदले घूँसेसे कभी काम न लें। क्योंकि जब आप ऐसा करेंगे तो आपके शान्ति-पूर्ण आन्दोलन का उद्देश नष्ट हो जायगा।

यह प्रस्ताव सिर्फ़ ताली बजानेसे सफल न होगा। मैं चाहता हूँ कि इस प्रस्तावको पास करनेके साथ ही साथ आपमें यह दृढ़ भाव पैदा हो कि हम जल्दसे जल्द स्वराज्य लेनेपर उतारू हैं। आप इस बात का भी निश्चय कर लें कि आप उपद्रव रहित शान्तिपूर्ण और उचित उपायोंसे स्वराज्य लेना चाहते हैं। आप यह जानते हैं कि हम वर्त्तमान सरकार से तलवारके ज़ोरसे नहीं लड़ सकते। हम उससे केवल 'आत्मिकबल" से लड़ सकते हैं। आत्मिकबल किसी सन्यासी या महात्माके ही हिस्से की चीज़ नहीं है, बल्कि उसपर प्रत्येक स्त्री पुरुषका अधिकार है। मैं अपने देशवासियोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे इस प्रस्तावको दृढ़ता और अटल निश्चयसे स्वीकार करें।

लाला लाजपतरायका समर्थन

कांग्रेसका जो उद्देश अबतक रहा है उससे हमारे वर्तमान इतिहासका बहुत बड़ा सम्बन्ध है। मैं उस इतिहास को थोड़े शब्दोंमें सुनाना चाहता हूँ।

आपमेंसे जिन लोगोंने इंडियन नेशनल कांग्रेसके इतिहासको ध्यान देकर पढ़ा है वे जानते हैं कि सन् १६०७ की सूरत कांग्रेसमें फूट किस तरह पैदा हुई थी। मैंने उस कांग्रेसकी कार्रवाइयोंमें भाग लिया था। और दुर्भाग्यसे मैं भी उन कारणोंमेंसे एक कारण समझा गया जिनकी बदौलत फूट हुई थी। इसलिए

में थोड़ा बहुत यह जानता हूं कि सूरत कांग्रेसमें फूटके कारण क्या थे? उस समय कांग्रेसके दो दलोंमें, जो तभीसे मॉडरेट और एक्सट्रीमिस्ट या नरम और गरमके नामसे पुकारे जाते हैं, सबसे बड़ा फर्क यह था कि कुछ एक्स्ट्रीमिस्टोंका विश्वास था कि कांग्रेसका उद्देश हिन्दुस्तान केलिये पूरी स्वतंत्रता हासिल करना है। वे बृटिश साम्राज्यके अन्दर रहकर स्वराज्य प्राप्तिके पक्षमें न थे। सूरतमें जो कुछ हुआ, बस उसकी जड़में यही बात थी। फूट होनेके बाद जब सूरतमें नरम दलवालोंने कांग्रेसको अपने कब्जेमें कर लिया तो कांग्रेसके उद्देशपर विचार करने और कांग्रेसकी नियमावली पास करनेके लिए हम कुछ लोग इलाहाबादमें सन् १६०८ के शुरूमें जमा हुए। जबसे यह नियमावली पास हुई है तभीसे कांग्रेसमें प्रतिनिधि होनेके लिए उसके उद्देशपर दस्तख़त करना ज़रूरी हो गया है। इलाहाबादकी जिस सभामें यह उद्देश पास हुआ था उसमें मैं मौजूद था। मैं उस समय भी कांग्रेसके इस उद्देशके विरुद्ध था, मैं कांग्रेसमें प्रतिनिधि होनेके लिये उसके उद्देश पर दस्तख़त करनेके भी ख़िलाफ़ था। मैंने इस उद्देशका विरोध उस समय क्यों किया था? यह मत समझिये कि मेरा उस समय यह विश्वास था कि पूर्ण स्वतंत्रता पाने या हिन्दुस्तानको अंगरेज़ी साम्राज्यसे बाहर निकालनेके सामान हमारे पास थे या ऐसी इच्छा भी हम लोगोंमें थी। पर मेरा यह ख़याल ज़रूर था कि अगर किसीका आदर्श यह है कि मैं अपनी मातृभूमिके लिये पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करूं तो हममेंसे किसीको यह हक़ नहीं है कि हम कांग्रेसके जलसेसे उसे अलग कर दें। एक ख़ास बात उस समय मेरे सामने यह थी कि जो कांग्रेस या सभा अपने उद्देश या सिद्धान्तों के कारण अरविन्द घोष जैसे योग्य स्वार्थत्यागी और देशभक्त मनुष्यको अपनेमें नहीं

शामिल होने देती वह हिन्दुस्तानमें जातीय सभा या नेशनल कांग्रेस कहलानेके योग्य नहीं हो सकती। मैं जानता था कि उस समय मेरे कुछ दोस्त कांग्रेसके मौजूदा उद्देश पर दस्तख़त करनेको तैयार न थे, पर उस समय देशमें जनताकी राय इतनी दूर तक जानेके पक्षमें न थी, इसलिये यह उद्देश पास हो गया और कांग्रेस ने उसे स्वीकार कर लिया।

अब उद्देशका बदलना बहुत ज़रूरी है।

तबसे लगभग १२ या १३ वर्ष बीत चुके हैं। इस बीचमें बहुत सी ऐसी घटनायें हुई हैं जिनकी वजहसे कांग्रेसका उद्देश बदलना बहुत ज़रूरी हो गया है। यह उद्देश जिस तरह इस साल बदला गया है, उससे अच्छी तरह कभी नहीं बदला जा सकता था। कलकत्तेको स्पेशल काँग्रेसमें असहयोगवाले प्रस्तावको पास करके जो नीति स्वीकार की गयी थी उसी नीतिके अनुसार यह परिवर्तन किया गया है। असहयोगवाले प्रस्तावको पास करनेके बाद आप कांग्रेसके जलसोंसे उन लोगोंको किसी तरह भी अलग नहीं कर सकते जो पुराने उद्देशपर दस्तख़त करनेके लिये तैयार नहीं हैं। इस समय भी कांग्रेसके अधिकतर मेम्बर या देशके अधिकतर विचारवान् मनुष्य यह कहनेको तैयार नहीं हैं कि हम फ़ौरन पूरी स्वतन्त्रता पानेके लिये उद्योग करेंगे या हम फ़ौरन इसके लिए युद्ध करना चाहते हैं। अब भी बहुत कम लोग ऐसे हैं जो यह कहनेको तैयार हों कि हम साम्राज्यके अन्दर न रहेंगे। अगर हम साफ़ लफ़्ज़ोंमें यह न ज़ाहिर कर दें कि देशके लोगोंके दिलोंमें बहुत बड़ा फेरफार हो गया है तो हमारी देशभक्ति, हमारी ईमानदारी, हमारी सचाई और हमारी साफ़गोईमें फ़र्क आवेगा। हम इस काँग्रेसमें इसलिए नहीं जमा

हुए हैं कि हम अपनी निजी राय ज़ाहिर करें, वल्कि इसलिए कि पुरानी प्रथाके अनुसार देशके सर्व साधारण लोगोंकी राय एक मन्तव्यके रूपमें प्रगट की जाय। अव देखिए, कांग्रेसके उद्देशमें जो परिवर्तन हुए हैं उनका मतलब क्या है। सिर्फ़ यह है कि अंग्रेज़ी जनता और अंग्रेज़ी सरकारको इस बातकी सूचना दे दी जाय कि यद्यपि इस समय हम प्रत्यक्ष रीतिसे अंग्रेज़ी साम्राज्यके वाहर नहीं जाना चाहते; तथापि यदि हम अंग्रेज़ी साम्राज्यमें रहेंगे तो किसीके गुलाम हो कर न रहेंगे, सिर्फ़ अपनी स्वतन्त्र इच्छासे ही रहेंगे।

अंगरेज़ोंके झूठे वादे

यहाँ इंगलिस्तानसे आये हुए हमारे कई मित्र उपस्थित हैं, जिनके लिए हमारे दिलमें बड़ी इज़्ज़त है। मैं यह चाहता हूँ कि वे इस कांग्रेसका यह संदेशा ले जाकर अंग्रेज़ लोगों को सुनायें कि अंगरेज़ जातिके साथ हमारी कोई शत्रुता नहीं है। पर साथ ही हम यह चाहते हैं कि वे अपनी सरकारसे जाकर कहें कि इस देशको इंगलिस्तानकी न्याय-प्रियतापर अव विल्कुल विश्वास नहीं है। मैं बड़े ज़ोरसे यह भी कहना चाहता हूं कि जबसे इंगलिस्तानकी सरकारने पंजावके मामलोंके वारेमें अपना यह पत्र भेजा है जिसमें उसने सर माइकल ऑडवायरकी प्रशंसा की है, तबसे अङ्गरेज़ोंकी बुद्धिमता और उनकी राजनीतिज्ञता परसे भी हमारा विश्वास उठ गया है। इंगलिस्तानकी सरकारके उस पत्रसे यह मालूम पड़ता है कि मानों उसकी राजनीतिज्ञताका दिवाला निकल गया है। न सिर्फ उसी समयसे वल्कि उसके पहिलेसे भी अंग्रेज़ोंकी राजनीतिज्ञता परसे हमारा विश्वास

शामिल होने देती वह हिन्दुस्तानमें जातीय सभा या नेशनल कांग्रेस कहलानेके योग्य नहीं हो सकती। मैं जानता था कि उस समय मेरे कुछ दोस्त कांग्रेसके मौजूदा उद्देश पर दस्तखत करनेको तैयार न थे, पर उस समय देशमें जनताकी राय इतनी दूर तक जानेके पक्षमें न थी, इसलिये वह उद्देश पास हो गया और कांग्रेस ने उसे स्वीकार कर लिया।

अब उद्देशका बदलना बहुत ज़रूरी है।

तबसे लगभग १२ या १३ वर्ष बीत चुके हैं। इस बीचमें बहुत सी ऐसी घटनाएं हुई हैं जिनकी वजहसे कांग्रेसका उद्देश बदलना बहुत जरूरी हो गया है। यह उद्देश जिस तरह इस साल बदला गया है, उससे अच्छी तरह कभी नहीं बदला जा सकता था। कलकत्तेकी स्पेशल काँग्रेसमें असहयोगवाले प्रस्ताव को पास करके जो नीति स्वीकार की गयी थी उसी नीतिके अनुसार यह परिवर्तन किया गया है। असहयोगवाले प्रस्तावको पास करनेके बाद आप कांग्रेसके जलसोंसे उन लोगोंको किसी तरह भी अलग नहीं कर सकते जो पुराने उद्देशपर दस्तखत करनेके लिये तैयार नहीं हैं। इस समय भी कांग्रेसके अधिकतर मेम्बर या देशके अधिकतर विचारवान् मनुष्य यह कहनेको तैयार नहीं हैं कि हम फौरन पूरी स्वतन्त्रता पानेके लिये उद्योग करेंगे या हम फौरन इसके लिए युद्ध करना चाहते हैं। अब भी बहुत कम लोग ऐसे हैं जो यह कहनेको तैयार हों कि हम साम्राज्यके अन्दर न रहेंगे। अगर हम साफ लफ्जोंमें यह न जाहिर कर दें कि देशके लोगोंके दिलोंमें बहुत बड़ा फेरफार हो गया है तो हमारी देशभक्ति, हमारी ईमानदारी, हमारी सचाई और हमारी साफगोईमें फर्क आवेगा। हम इस काँग्रेसमें इसलिए नहीं जमा

हुए हैं कि हम अपनी निजी राय ज़ाहिर करें, बल्कि इसलिए कि पुरानी प्रथाके अनुसार देशके सर्वसाधारण लोगोंकी राय एक मन्तव्यके रूपमें प्रगट की जाय। अब देखिए, कांग्रेसके उद्देशमें जो परिवर्तन हुए हैं उनका मतलब क्या है। सिर्फ़ यह है कि अंग्रेज़ी जनता और अंग्रेज़ी सरकारको इस बातकी सूचना दे दी जाय कि यद्यपि इस समय हम प्रत्यक्ष रीतिसे अंग्रेज़ी साम्राज्यके बाहर नहीं जाना चाहते; तथापि यदि हम अंग्रेज़ी साम्राज्यमें रहेंगे तो किसीके गुलाम हो कर न रहेंगे, सिर्फ़ अपनी स्वतन्त्र इच्छासे ही रहेंगे।

अंगरेज़ोंके झूठे वादे

यहाँ इंगलिस्तानसे आये हुए हमारे कई मित्र उपस्थित हैं, जिनके लिए हमारे दिलमें बड़ी इज़्ज़त है। मैं यह चाहता हूँ कि वे इस कांग्रेसका यह संदेशा ले जाकर अंग्रेज़ लोगों को सुनायें कि अंगरेज़ जातिके साथ हमारी कोई शत्रुता नहीं है। पर साथ ही हम यह चाहते हैं कि वे अपनी सरकारसे जाकर कहें कि इस देशको इंगलिस्तानकी न्याय-प्रियतापर अब बिल्कुल विश्वास नहीं है। मैं बड़े ज़ोरसे यह भी कहना चाहता हूं कि जबसे इंगलिस्तानकी सरकारने पंजाबके मामलोंके बारेमें अपना यह पत्र भेजा है जिसमें उसने सर माइकल ऑडवायरकी प्रशंसा की है, तबसे अङ्गरेज़ोंकी बुद्धिमता और उनकी राजनीतिज्ञता परसे भी हमारा विश्वास उठ गया है। इंगलिस्तानकी सरकारके उस पत्रसे यह मालूम पड़ता है कि मानों उसकी राजनीतिज्ञताका दिवाला निकल गया है। न सिर्फ़ उसी समयसे बल्कि उसके पहिलेसे भी अंग्रेज़ोंकी राजनीतिज्ञता परसे हमारा [illegible]

उठ चुका है। पर उस घटनासे अंग्रेज़ोंकी राजनीतिज्ञता, और अंग्रेज़ोंकी न्यायप्रियताके बारेमें हमारी जो राय थी उस पर मानों मुहर सी लग गयी है।

अभी उस दिन मैंने एक विलायतका तार पढ़ा था। हम गड़े मुर्दे नहीं उखाड़ना चाहते, पर हाल के इतिहासमें इस बातके काफ़ी उदाहरण मौजूद हैं कि अंग्रेज़ी सरकारने अपने वादे के खिलाफ़ किस तरह कार्रवाइयाँ की हैं। हमारे देशवासियों को यह अच्छी तरह याद होगा कि लॉर्ड कर्जनने महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र पर किस तरह से यह कह कर पानी फेर दिया कि महारानी की घोषणा का यह मतलब नहीं है जो उसके शब्दों से प्रगट होता है अर्थात् यह घोषणा तो अलंकारिक भाषा में लिखी हुई है (शर्म!) लॉर्ड कर्जन कोई गैर ज़िम्मेदार राजनीतिज्ञ न थे। वह हिन्दुस्तान के वाइसराय रह चुके हैं और आज कल वृटिश साम्राज्य के परराष्ट्र सचिव हैं।

इंगलिस्तानके प्रधान मंत्री

अब हम इंगलिस्तान के वर्त्तमानप्रधान मंत्री जनाब लॉयड जार्ज साहब बहादुर की तरफ़ आते हैं (शर्म!) अगर लॉर्ड सेलबोर्न यहाँ मौजूद होते तो मैं उनसे पूछता कि क्या आप इंगलिस्तान के वर्त्तमान मंत्रिमंडल में से एक भी मंत्री ऐसा बतला सकते हैं जिसके लफ़्ज़ों पर किसी बनिये के लफ़्ज़ों से ज़्यादा भरोसा किया जाय (एक आवाज़:—या किसी जुआरी के लफ़्ज़ोंसे) मिस्टर लॉयड जार्ज वृटिश साम्राज्य की शक्ति देश भक्ति, उदारता, और वीरता के मानों प्रतिनिधि-स्वरूप

हैं। पर हम आप सब जानते हैं कि उन्होंने किस तरह हिन्दुस्तानी मुसलमानों को धोखा दिया और किस तरह मुसलमानों के साथ किये गये वादों को तोड़ा। पर ताज्जुब की बात तो यह है कि वे यह भी कहते जा रहे हैं कि मैंने अपने वादे कभी नहीं तोड़े। (शर्म !) अगर कोई ईमानदार आदमी यह कहे कि भाई ! यह वादे तो मैंने जरूरत में पड़ कर किये थे, पर राजनीति में कोई नियम नहीं चल सकता इसलिए यह वादे बिना किसी हानि के तोड़े जा सकते हैं—तो मैं उसकी बात समझ सकता हूँ और उसकी ईमानदारी की क़दर कर सकता हूँ। पर उस आदमी की ईमानदारी के बारे में क्या कहा जा सकता है जो यह कहता है कि मैं तो अपने वादे पर डटा हूँ चाहे कुल दुनियाँ कह रही हो कि उसने अपना वादा तोड़ दिया है।

अब हम इंगलिस्तान के युद्ध मंत्री मिस्टर विन्सटन चर्चिल साहब बहादुर के बारे में यह दिखाना चाहते हैं कि सच और झूँठ का वह कितना ख़याल रखते हैं। क्या हम लोग मिस्टर विन्सटन चर्चिल के ऊपर विश्वास करने के लिये तैयार हैं, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि वे हिन्दुस्तान के वाइसराय होकर आने वाले हैं। (नहीं नहीं) क्या हम इंगलिस्तान के परराष्ट्र सचिव लार्ड कर्ज़न की बातों का विश्वास कर सकते हैं ? (नहीं, नहीं) क्या आप मिस्टर बालफ़ोर की बातों का भरोसा करेंगे (नहीं नहीं) क्या कोई भी मुझे बता सकता है कि इंगलिस्तान के मंत्रियों में से कोई भी ऐसा है जिस पर हम विश्वास कर सकें ? (नहीं नहीं एक आवाज़) लार्ड मिलनरपर। मेरे एक मित्र लार्ड मिलनर का नाम लेते (हँ हंसी) मिस्टर सत्यमूर्ति ने मिस्टर मान्टेगू का नाम लिया

है (नहीं नहीं कभी नहीं) (एक आवाज़—ओडायर) जैसी हालत है वैसी हालत में किसी अँग्रेज़ राजनीतिज्ञ के लिये यह आशा करना बिलकुल ये फ़ायदा है कि हिन्दुस्तान अब और ज़्यादा अँग्रेज़ी राजनीतिज्ञों के वादों पर भरोसा कर सकता है या उनकी बातों पर कुछ भी विश्वास कर सकता है।

उद्देश में परिवर्त्तन करना इङ्गलिस्तानको एक सूचना देना है

उद्देश में जो परिवर्त्तन हुआ है उसके, द्वारा हम अंग्रेजी जनता और अंग्रेज़ी सरकार को यह नोटिस (सूचना) देना चाहते हैं कि हमने अपनी यह राय बहुत सोच विचार कर क़ायम की है। अगर हम अपनी स्वतंत्र इच्छा से और अपने स्वतंत्र विचार से अंग्रेजी साम्राज्य के अन्दर रहने दिये जायँ तो हम अब भी उसके अन्दर बने रहने के खिलाफ़ नहीं हैं। पर किसी दबाव या डरसे नहीं। अगर हम अंग्रेज़ी जाति और अंग्रेज़ी सरकार को इस तरह की नोटिस साफ़ लफ़्ज़ों में न देंगे तो हम अपने देश के सामने झूठे साबित होंगे और अपने कर्त्तव्यों के करने में कभी सफल न होंगे।

अंग्रेज़ साम्राज्य को कुछ लोग एम्पायर (साम्राज्य) के और कुछ लोग कॉमनवेल्थ (प्रजातन्त्र साम्राज्य) के नाम से पुकारते हैं। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि अंग्रेज़ साम्राज्य प्रजातन्त्र साम्राज्य है ? (नहीं) (मिस्टर बोलफ़ोर्ड नाइट नहीं अभी नहीं) मिस्टर बोलफ़ोर्ड नाइट साहब कहते हैं कि "नहीं अभी नहीं।" बहुत अच्छा, तो अब देखिये कि वह बटिश साम्राज्य कहाँ है जिसमें हम बराबरी के हकदार हो सकते हैं (एक आवाज़—कहीं नहीं) मैं उस साम्राज्य में जो करोड़ों

आदमियों को गुलाम बनाये हुए है अपनी इच्छा से रहने की अपेक्षा गुलाम बने रहना ज्यादा पसन्द करूंगा। मैं इस तरह के साम्राज्यकी जिम्मेदारियों और अधिकारों में भाग नहीं लेना चाहता। मेरे बहुत से दोस्त जिनकी मेरे दिल में बहुत बड़ी इज्जत है और जिनकी पिछली सेवाओं के लिये देश बहुत इज्जतकी निगाह से उन्हें देखता है अब कांग्रेस में नहीं है। पर वे इस बात के लिये बड़े उत्सुक हैं कि भविष्य में इस साम्राज्य में साझीदार होनेका हक उन्हें मिल जाय। अगर वे उस साम्राज्य में साझीदार होना चाहते हैं जो करोड़ों आदमियों की आजादी छीनकर और न जाने कितने आदमियों का खून बहाकर खड़ा किया गया है तो वे खुशीसे उसमें शामिल हो सकते हैं। पर मैं तो ऐसे साम्राज्य में रहना पसन्द न करूंगा। कुछ लोग ऐसे साम्राज्यका नागरिक होना बड़ी इज्जत, अभिमान और खुशी की बात समझते हैं। पहली बात तो यह है कि यह साम्राज्य मुझे नागरिकोंके अधिकार और स्वत्व नहीं देता। लेकिन अगर मुझे इस साम्राज्य में नागरिकों के अधिकार मिल भी जायँ तो मैं इसके लिये शर्मिन्दा हूँगा। मुझे इसके लिए अभिमान कभी न होगा। इसलिए मैं इस विषयमें कुछ ज्यादा कहने की जरूरत नहीं समझता। मैं आप से कह देना चाहता हूँ कि देश की मौजूदा हालत में बिलकुल साफ बात कहनेकी बड़ी ही जरूरत है।

स्वराज्यकी प्राप्ति

मेरे कुछ मित्र कहते हैं कि "स्वराज्य" एक अस्पष्ट या अनिश्चित शब्द है। अगर ऐसा कहने से उनका यह मतलब

है कि "स्वराज्य' शब्द से यह साफ तौर पर जाहिर नहीं होता कि "साम्राज्य के अन्दर" अथवा "साम्राज्य के बाहर" तो मैं कहूँगा कि वे ठीक कहते हैं, क्योंकि स्वराज्य शब्द जान बूझ कर इसीलिए गोलमाल रक्खा गया है कि जिसमें हम जब तक चाहें तब तक इस साम्राज्य के अन्दर रहें और जब चाहें तब इसमेंसे निकल जायँ। स्वराज्य शब्द से दो माने कभी नहीं निकलते। हाँ, यह एक ऐसा शब्द है जिससे दो हालतें जाहिर होती हैं जिनमें से हम एक अपने लिए चुन सकते हैं। प्रस्ताव के पहले भाग में यह कहा गया है कि कांग्रेस का उद्देश केवल स्वराज्य प्राप्त करना है।

शान्ति और अहिंसा की आवश्यकता

प्रस्तावके दूसरे भाग में यह कहा गया है कि किन उपायों से यह उद्देश प्राप्त किया जाय। मेरे कुछ ऐसे मित्र यहाँ पर मौजूद हैं जिनके लिये मुझे बड़ी इज्जत है और जो यह कहते हैं कि अच्छा होता अगर उपायों के बारे में कुछ भी न कहा जाता। पर मैं उनके साथ सहमत नहीं हूँ। इसका कारण यह है कि मैं उन लोगों में से हूँ जो यह विश्वास करते हैं कि हर एक जाति को यह स्वाभाविक अधिकार है कि वह अवसर आने पर अत्याचारी और निरंकुश सरकार के विरुद्ध शस्त्र उठाकर बलवा कर दे। पर मुझे यह विश्वास है कि मौजूदा हालत में हम लोगों के पास न तो ऐसे जरिये हैं और न इस बात का पक्का इरादा है कि इस तरह का बलवा हम लोग कर सकें। मैं इस बात का विचार करना नहीं चाहता कि भविष्य में क्या होगा या क्या हो सकता है। पर मैं यह चाहता हूँ कि मेरे देशवासियों को इस बात में

कुछ भी सन्देह या शक न रहे कि "इंडियन नेशनल कांग्रेस" के अगुआ यह चाहते हैं कि जो उद्देश लोगों के सामने रक्खे गये हैं इनमें से किसी एक के भी प्राप्त करने के लिये वे मार पीट, धींगाधींगी या अशान्त उपायों से काम न लें। देश की मौजूदा हालत में जैसे भाव लोगोंमें फैल रहे हैं इन्हें नज़रमें रखते हुए हम यह ज़रूरी समझते हैं कि इस बात पर ज़ोर दिया जाय। क्योंकि लोगों का क्रोध भड़क उठा है, उनमें जोश पैदा हो गया है और अंग्रेज़ी सरकारकी करतूतों के ख़िलाफ़ लोगोंमें घृणाके भाव उत्पन्न हो गये हैं। इसीलिये हम शान्ति और अहिंसा पर इतना ज़ोर देते हैं और इनकी इतनी ज़रूरत समझते हैं। इस बात पर जितना ज़्यादा ज़ोर दिया जाय उतना थोड़ा है कि हम लोग जोश या क्रोध में आकर किसी आदमी के विरुद्ध किसी तरह की ज़बरदस्ती या धींगाधींगी करनेके सख़्त ख़िलाफ़ हैं और ऐसे काम को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। *(लालाजी का व्याख्यान समाप्त।)*

कांग्रेस के ध्येय परिवर्तन पर लालाजी के उपरोक्त व्याख्यान में बहुत ही अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस पर अब विशेष न लिख कर हम केवल इतनाही कहना चाहते हैं कि ध्येय परिवर्तनका प्रस्ताव पास होने से देश के राजनैतिक जीवन में एक प्रकार की क्रान्ति होगई! लोग यह बात अच्छी तरह समझ गये कि हम बिना किसी बाहरी शक्ति के सहारे भी अपना राज्य कारोबार आप कर सकते हैं! हमारी आँखों पर चिरकाल से एक लज्जाजनक भ्रम का पड़दा गिरा हुआ था, वह दूर होगया। हमें अपनी योग्यता में अपने आत्मविश्वासमें बड़ा प्रोत्साहन मिला। परावलम्बन के भावों से हमारे मानसिक संसार में जो औदासीन्य छाया हुआ था,

स्थिति असह्य है। देश के कल्याण के लिये इसे बदलना आवश्यक है। इन्हीं सब बातों को सोचकर महात्मा गाँधी विदेशी माल के बहिष्कार का आन्दोलन खूब ज़ोर शोर शुरू कर दिया है। आपने घोषणा की है कि १ अगस्त परम धामारूढ भगवान तिलक की पुण्य तिथि पर सारे देश में विदेशी कपड़ों का बहिष्कार हो। महात्माजी ने ऐलान किया है कि या तो विदेशी कपड़े जला दिये जावें या वे मेसोपोटामिया भेज दिये जावें। सारे देश में इस आन्दोलन के कारण सनसनी छाई हुई है और सब राष्ट्रीय नेता इस काम में महात्मा गाँधी के साथ हैं। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार जिस ज़ोर शोर के साथ हो रहा है उससे हमें आन्दोलन की सफलता में तनिक भी सन्देह नहीं है।

कहा जाता है कि अगर सरकार ने पंजाब और ख़िलाफ़त के विषय में न्याय नहीं किया तो महात्मा गाँधी आगामी अहमदाबाद कांग्रेस में स्वाधीनता की घोषणा कर सरकार को टेक्स न देने का ऐलान कर देंगे। राष्ट्र इसके लिये तैयार मालुम होता है। अब भारतवासियों की सच्ची अग्नि परीक्षा का समय आरहा है। उन्हें अत्यन्त शान्ति के साथ स। कष्टों को सहन करने के लिये तैय्यार हो जाना चाहिये और जब तक स्वराज्य प्राप्त न हो चैन न लेना चाहिये।

ठीक समय पर एक करोड़ के बजाय एक करोड़ पॉच लाख रुपये हो गये। सुनते हैं कि आगे चलकर यह रकम एक करोड़ पचीस लाख तक पहुँच गई।

चर्खे भी बीस लाख के ऊपर होगये। कॉग्रेस के सदस्य बनाने का प्रयत्न उतने ज़ोर से नहीं किया गया, तो भी लाखों सदस्य होगये। आशा की जाती है कि थोड़े दिनों में सदस्यों की सख्या भी एक करोड़ तक पहुंच जायगी।

विदेशी बहिष्कार

स्वदेशी के विषय में महात्मा गॉधी के विचारों पर यहां विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। आप स्वदेशी ही में स्वदेश का उद्धार समझते हैं। आपने कई वक्त इस प्रकार के विचार प्रकट किये हैं कि स्वराज्य की नींव स्वदेशी पर लगी हुई है। जब तक हम अपनी आवश्यकताओं को आप पूर्ति करने का सामर्थ्य प्राप्त न कर लेंगे तब तक समझना चाहिये कि हमें स्वराज्य प्राप्ति की पात्रता प्राप्त नहीं हुई। मतलब यह है कि शुरू से महात्मा गॉधी स्वदेशी को स्वराज्य का जीवन समझते हैं, पर अब तक आप केवल स्वदेशी प्रचार पर ज़ोर दे रहे थे, बहिष्कार पर नहीं। इतने दिन के अनुभव के बाद महात्माजी को ज्ञात हुआ कि बिना बहिष्कार के स्वदेशी प्रचार में यथेष्ट सफलता नहीं हो सकती। विदेशी कपड़ों की खरीदी में भूखा भारतवर्ष प्रतिवर्ष साठ करोड़ रुपया विदेशों को देता है। अपने घर में तो भारत भूखों मरता है और विदेशों को मालामाल करता है। यह

वह बहुत कुछ दूर हो गया। मतलब यह है कि काँग्रेस का ध्ये. परिवर्तन ऐसी वैसी घटना नहीं है। देश के राजनैतिक जीव पर इसका बहुत ही गहरा प्रभाव गिरा है।

नागपुर की काँग्रेस में सब राष्ट्रीय नेताओं का एक म होजाने से असहयोग के कार्य्य को बहुत उत्तेजन मिला। स नेता एक दिल से काम करने लगे। हम यहाँ यह भी कह देन आवश्यक समझते हैं कि मालेगाँव आदि कुछ स्थानों को छोड़ कर असहयोगियों ने 'अहिंसा' के आदर्श को सामने रखते हुए अपने सिद्धान्तों के प्रचार में बड़ी शान्ति से काम लिया। कुछ स्थानों में छोटे छोटे बच्चे कोड़ों की मार सहते हुए भी अपने इस दिव्य आदर्श से विचलित नहीं हुए।

बेजवाडे का नया प्रोग्राम।

बेजवाड़ा में जो राजनैतिक परिषद् हुई थी, उसमें महात्मा गांधी ने यह घोषित किया था कि शीघ्र स्वराज्य प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि पहली जुलाई सन १९२१ तक काँग्रेस के एक करोड़ सदस्य हो जावें, तिलक स्वराज्य फण्ड के लिये एक करोड़ रुपया इकट्ठा हो जावे और बीस लाख चर्खे चलने लगें। इस कार्य की पूर्ति के लिये देश में प्रयत्न किये जाने लगे। पहले पहल कई लोगों को सन्देह हुआ कि यह कार्य्यक्रम पूरा न हो सकेगा। पर इन लोगों को महात्मा गाँधी की अलौकिक आत्मिक शक्ति का कुछ ज्ञान नहीं था। आत्मिक शक्ति का यह प्रभाव है कि वह विश्व को बदल सकती है। उसके सामने एक करोड़ रुपयों की क्या बिसात?

ठीक समय पर एक करोड़ के बजाय एक करोड़ पाँच लाख रुपये हो गये। सुनते हैं कि आगे चलकर यह रकम एक करोड़ पचीस लाख तक पहुँच गई।

चर्खे भी बीस लाख के ऊपर होगये। कॉग्रेस के सदस्य बनाने का प्रयत्न उतने जोर से नहीं किया गया, तो भी लाखों सदस्य होगये। आशा की जाती है कि थोड़े दिनों में सदस्यों की सख्या भी एक करोड़ तक पहुच जायगी।

विदेशी बाहिष्कार

स्वदेशी के विषय में महात्मा गाँधी के विचारों पर यहां विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। आप स्वदेशी ही में स्वदेश का उद्धार समझते हैं। आपने कई वक्त इस प्रकार के विचार प्रकट किये हैं कि स्वराज्य की नींव स्वदेशी पर लगी हुई है। जब तक हम अपनी आवश्यकताओं की आप पूर्ति करने का सामर्थ्य प्राप्त न कर लेंगे तब तक समझना चाहिये कि हमें स्वराज्य प्राप्ति की पात्रता प्राप्त नहीं हुई। मतलब यह है कि शुरू से महात्मा गाँधी स्वदेशी को स्वराज्य का जीवन समझते हैं, पर अब तक आप केवल स्वदेशी प्रचार पर ज़ोर दे रहे थे, बहिष्कार पर नहीं। इतने दिन के अनुभव के बाद महात्माजी को ज्ञात हुआ कि बिना बहिष्कार के स्वदेशी प्रचार में यथेष्ठ सफलता नहीं हो सकती। विदेशी कपड़ों की खरीदी में भूखा भारतवर्ष प्रतिवर्ष साठ करोड़ रुपया विदेशों को देता है। अपने घर में तो भारत भूखों मरता है और विदेशों को मालामाल करता है। यह

स्थिति असह्य है। देश के कल्याण के लिये इसे बदलना आवश्यक है। इन्हीं सब बातों को सोचकर महात्मा गाँधी ने विदेशी माल के बहिष्कार का आन्दोलन खूब ज़ोर शोर से शुरू कर दिया है। आपने घोषणा की है कि १ अगस्त को परम श्रद्धास्पद भगवान तिलक की पुण्य तिथि पर सारे देश में विदेशी कपड़ों का बहिष्कार हो। महात्माजी ने ऐलान किया है कि या तो विदेशी कपड़े जला दिये जावें या वे मेसोपोटामिया भेज दिये जावें। सारे देश में इस आन्दोलन के कारण सनसनी छाई हुई है और सब राष्ट्रीय नेता इस काम में महात्मा गाँधी के साथ हैं। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार जिस ज़ोर शोर के साथ हो रहा है उससे हमें आन्दोलन की सफलता में तनिक भी सन्देह नहीं है।

कहा जाता है कि अगर सरकार ने पंजाब और खिलाफतके विषय में न्याय नहीं किया तो महात्मा गाँधी आगामी अहमदाबाद कांग्रेस में स्वाधीनता की घोषणा कर सरकार को टेक्स न देने का ऐलान कर देंगे। राष्ट्र इसके लिये तैयार मालुम होता है। अब भारतवासियों की सच्ची अग्नि परीक्षा का समय आरहा है। उन्हें अत्यन्त शान्ति के साथ सब कष्टों को सहन करने के लिये तैय्यार हो जाना चाहिये और जब तक स्वराज्य प्राप्त न हो चैन न लेना चाहिये।